कौमुदी

डॉ० रामकुमार वर्मा विशेषांक

हिन्दी-परिषद,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

डॉ० रामकुमार वर्मा

अनुक्रम

मूल्यांकन

संकलन

साहित्य के अनुरागी थे और कविता किया करते थे, छायावाद युग के वे एक प्रमुख, प्रकाश-स्तंभों में विकसित हुए । उनकी कविताओं से भी अधिक उनके गीतों में छायावादी भावना सौंदर्य-बोध तथा कला शिल्प का निखार मिलता है । डॉ० रामकुमार अब विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण कर रहे हैं और इस अवसर पर उनके सहयोगी तथा स्नेही छात्र उनको 'कौमुदी' का विशेषांक अपनी श्रद्धा के प्रतीक रूप में अर्पित कर रहे हैं, यह स्वाभाविक ही है। डा० रामकुमार मेरे अनन्य मित्रों में हैं। मैंने उन्हें अत्यंत सहृदय तथा स्नेही बंधु के रूप में पाया है । हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् तथा आलोचक होने के साथ ही वे अत्यंत उच्च-कोटि के कृतिकार भी हैं । अपनी कविताओं के अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी साहित्य को अपने एकांकियों से भी सर्वप्रकार सम्पन्न बनाया है । वे संभवतः हिन्दी के प्रथम एकांकीकार हैं, ऐसा अनेक लोगों का मत है और इसी आधार पर उनका जन्म दिवस 'एकांकी दिवस' के रूप में मनाया जाता है। वे इतने मृदु और मधुभाषी हैं और उनके सामान्य वार्तालाप में कविता का इतना अधिक पुट रहता है कि मैं प्रायः उनसे कहा करता हूँ कि आपकी वाणी की कुछ ऐसी सिद्धि है कि अगर आपकी बातें टेपरिकार्ड की जा सकती तो उनसे एक अच्छा खासा कला-संग्रह बन सकता ।

डॉ० रामकुमार जी के साथ मेरे अनेक स्नेह-सौहार्द के क्षण बीते हैं । उनके अवकाश ग्रहण करने के अवसर पर मैं उनके भविष्य जीवन के लिए अनेकानेक स्नेह भरी शुभ कामनाएँ उन्हें अर्पित करता हूँ। मुझे विश्वास है कि हिन्दी साहित्य को अभी उनसे बहुत कुछ मिलना है और वे अपनी अद्भुत प्रतिभा तथा एकान्त साधना से उत्तरोत्तर अनेक उच्च से उच्च सफलता के शिखरों को प्राप्त कर सकेंगे ।

सुमित्रानन्दन पन्त

विक्रम विश्वविद्यालय

उज्जैन

डॉ० रामकुमार वर्मा—यह नाम मेरे लिये कितना प्रिय है, कितना पुराना और फिर भी कितना नया, प्रतीत होता है कि हमने उनके मधुर और स्नेह भरे कंठ से उनका प्रथम गीत—"ये गजरे तारों वाले" काशी विश्वविद्यालय के कवि सम्मेलन में आज ही सुना है, घटना सन् १९२८–२९ की है जब वे भी प्रयाग में एम० ए० कक्षा में पढ़ते थे और मैं काशी विश्वविद्यालय में उनका समकक्ष था, इस गीत में कवि का भावोच्छ्वास और उसकी रूपात्मक योजना इतनी मोहक थी कि आज भी मैं इसे इनका एक श्रेष्ठ गीत मानता हूँ ।

३६ वर्ष बीत गये, पर प्रतीत होता है कि अभी अभी उन्होंने कविता लिखना आरंभ किया हो, अध्यापन कार्य में नियुक्त हुए हों । समय बीतते देर नहीं लगती पर रामकुमार वर्मा के व्यक्तित्व में एक ऐसी ताजगी है जो कभी बासी नहीं हुई और न होगी। डॉ० रामकुमार

वर्मा मेरे अत्यधिक आत्मीय और स्नेही मित्र रहे हैं। उन्होंने इस बीच बहुत कुछ लिखा। शिक्षा क्षेत्र में यश अर्जित किया। अपने स्वर और शब्द संधान द्वारा न जाने कितने सहृदयों को विमुग्ध किया। परन्तु ऐसा एक भी अवसर स्मरण नहीं आता जब उन्होंने मुझसे अपने संबंध में कुछ लिखने या कहने को कहा हो। उनके व्यक्तित्व में आत्म-विश्वास का गहरा पुट है और वे आत्म-प्रशंसा से दूर रहते हैं।

वे अपने विश्वासों के पक्के हैं। इसलिये कविता के जब नये दौर आये तब उन्होंने अपनी कविता पर से आस्था नहीं छोड़ी और नई पगडंडियों पर नहीं दौड़े। यह दृढ़ता आज के कवियों में दुर्लभ हो गई है।

उनकी भाषा, गद्य में या पद्य में, काफी परिष्कृत और आलंकारिक है। वे कभी भी सामान्य बोलचाल की भाषा के समीप नहीं आते। अपनी उच्च-स्तरीय भाषा से वे बहुत सुन्दर प्रभाव उत्पन्न करते हैं। उनकी भाषा की आलंकारिकता हिन्दी संसार में प्रसिद्ध है।

शिक्षक के रूप में डॉ० वर्मा ने वह ख्याति अर्जित की है जो किसी की भी स्पर्धा की हेतु बन सकती है। उनके विद्यार्थी न केवल उनके अध्यापन से आकृष्ट हुए हैं बल्कि उनके व्यक्तित्व की भी उन पर छाप पड़ी है, मैंने उन्हें अनेक बार श्रद्धालु विद्यार्थियों से घिरा हुआ पाया है। अध्यापक के लिये सब से बड़ी उपलब्धि कदाचित् यही है कि उसके शिष्य उस पर सच्ची श्रद्धा करें।

डॉ० रामकुमार वर्मा आदर्शवादी चिंतक और विचारक हैं। उनके साहित्य पर भावात्मक आदर्शवाद की छाया है। उनकी काव्य रचनाएँ भी इसी आदर्शवाद से अनुप्राणित है। वे साहित्य को मानव सभ्यता के उत्थान की एक प्रक्रिया मानते हैं। केवल यथा-तथ्य चित्रणों पर उनका विश्वास नहीं है। हम उन्हें छायावादी और मानवतावादी कवि के रूप में जानते आये हैं।

डॉ० रामकुमार वर्मा उन थोड़े से हिन्दी लेखकों. कवियों और शिक्षकों में हैं जो निरन्तर विकास-शील रहे हैं और जिन्होंने अपनी प्रौढ़ावस्था में पहुँच कर साहित्य का नेतृत्व किया है।

डॉ० वर्मा ६०—६२ के हो गये, मुझे विश्वास नहीं होता। अभी भी उनकी मुस्कान २५ वर्ष के नव-युवक का स्मरण कराती है। उनका स्वास्थ्य काफी अच्छा है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह निरन्तर अच्छा रहे और वे सुस्वास्थ्य-पूर्वक साहित्य और शिक्षा जगत में सक्रिय रहें और उनके अनुभवों का लाभ समाज और राष्ट्र के उच्चतर स्तरों पर मिलता रहे।

नन्ददुलारे वाजपेयी

२९ दिसम्बर, १९६५

उपकुलपति, विक्रम विश्वविद्यालय
उज्जैन

रविशंकर विश्वविद्यालय

रायपुर

यह जानकर खुशी हुई कि डॉ० रामकुमार वर्मा के अभिनन्दन में "कौमुदी" का एक अभिनन्दन अंक निकाला जारहा है। रामकुमार जी ने हिन्दी साहित्य की प्रचुर सेवा की है और उसके लिए उन्हें चारों ओर से प्रशंसा मिली है। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के विकास में और विशेषकर भारतीय हिन्दी परिषद् के परिवर्धन में उनका जो योगदान रहा है उसे मेरे ऐसे उनके सहयोगी कभी नहीं भूल सकते। मुझे आशा है कि वह आजीवन हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवा करते रहेंगे।

ईश्वर उन्हें दीर्घायु करे।

बाबूराम सक्सेना

उपकुलपति, रविशंकर विश्वविद्यालय
रायपुर

६ जनवरी, १९६६

आपका पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि डॉ० रामकुमार वर्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकनपरक "कौमुदी विशेषांक" प्रकाशित करने जा रहे हैं। डॉ० वर्मा मेरे मित्र हैं। उनके संबंध में कुछ लिखने की इच्छा भी है; पर अब इधर कुछ समय तक मेरे पास इतना अवकाश नहीं है कि कोई निबंध लिख सकूं। अतः विवशता के लिये क्षमा करें।

डॉ० रामकुमार वर्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व पर सम्पूर्ण सार-सामग्री संकलित कर आप साहित्य की सेवा करेंगे। मैं आप के इस कार्य की सफलता चाहता हूँ।

लक्ष्मीनारायण सुधांशु

एम० ए०, डी० लिट्०
अध्यक्ष, बिहार विधान सभा पटना

१२ नवंबर, १९६५

व्यक्तित्व
और
संस्मरण

डॉ० वर्मा के व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम

—डॉ० सियारामशरण प्रसाद एम०ए० पी-एच० डी०
अध्यक्ष—हिन्दी विभाग, रामेश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

●

प्रतिभा और व्यक्तित्व के धनी——डॉ० रामकुमार वर्मा हिन्दी के एसे गौरव स्तम्भ हैं, जिनके कृतित्व और व्यक्तित्व से प्रतिभा की दीप्त किरणें फूटती हैं। वे मात्र कृतिकार की दृष्टि से ही धनी नहीं अपितु व्यक्तित्व के भी महान् तथा धनी हैं। सच है, ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व सम्पन्न पुरुष से ही "साहित्यकार" का महत्त्व प्रतिष्ठित होता है, समाज के मध्य उसकी कीर्ति का प्रत्यूष उदित होता है। कोई फूल रूप के साथ यदि सुगन्ध से भी आवेष्ठित होता है तो उसका महत्त्व स्वतः द्विगुणित होता है। कलाकार भी इस सत्य का अपवाद नहीं होता।

डॉ० रामकुमार वर्मा में इस दृष्टि से अपूर्व सन्तुलन है। उनके कृतित्वकार रूप की दीप्ति और महत्ता के सम्मुख उनका व्यक्तित्व किंचित् मात्र भी कम प्रतीत नहीं होता। व्यक्तित्व का निखार कई महत्त्वपूर्ण गुणों, सन्तुलन पूर्ण समन्वय पर अवलम्बित रहता है। शारीरिक आकृति, संस्कार, प्रतिभा, आचरण व्यवहार, उपलब्धि आदि के समुचित सम्मिश्रण द्वारा ही व्यक्तित्व का महत्त्व प्रतिष्ठित हो पाता है। यहाँ हम डॉ० रामकुमार वर्मा के व्यक्तित्व का मूल्यांकन इसी कसौटी पर करेंगे। मनोविज्ञानवेत्ता आल पोट ने सही लिखा है——"व्यक्तित्व व्यक्ति के अन्दर उन मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है, जो वातावरण के प्रति होनेवाले उसके अपूर्व अभियोजनों का निर्णय करते हैं।"[१] "मनुष्य में अपनी सीमाओं, संवेगों और ग्रहणशील प्रक्रियानुरूप वैयक्तिकता रहती है।[२]"

बाह्याकृति——गेहुआ रंग, कसा हुआ स्फूर्तिवान शरीर, लम्बा कद, दीप्त ललाट, मुस्कानयुक्त अधर, गहराई में पैठने वाली तीक्ष्ण आँखें वर्मा जी के सौन्दर्यपूर्ण व्यक्तित्व के उपकरण हैं। उनके भाल की चमक किसी भी मिलने वाले व्यक्ति पर बिना छाप डाले नहीं रहती। और यह तेज उनके दृढ़ व्यक्तित्व, निष्ठायुक्त आचरण, धार्मिक मनोबल का

---

1. Personality is the dynamic organization within the individual of those psychophysical systems that determine his unique adjustment to his environment.

२. वृन्दावनलाल वर्मा : साहित्य और समीक्षा——लेखक डॉ० सियारामशरण प्रसाद, पृष्ठ——२८

परिचायक हैं। यद्यपि वर्मा जी आज ६२ वर्ष के हो चुके हैं, तथापि उनमें स्फूर्ति और शारीरिक गठन देखकर उनकी उम्र का सही अन्दाज लगाना कठिन हैं। लगता है जैसे वे ५० के करीब होंगे।[1]

फुलपैन्ट, कोट, नेकटाई या अन्य कोई वस्तु सभी में वर्मा जी समानरूप से बड़े आकर्षक लगते हैं।

बोलते समय वर्माजी अत्यन्त गम्भीर दीख पड़ने लगते हैं। लगता है, विद्वता की गहराई में पैठकर श्रोताओं पर अमृत की वर्षा कर रहे हों, परन्तु उस समय भी उनके अधरों पर प्रेम की मुस्कान अनजाने बिछी रहती हैं। इतनी विद्वत्ता, इतना सृजन, इतना मौलिक कृतित्व निर्माण फिर भी अहम् से दूर उनकी वाह्याकृति भी बड़ी भव्य और आकर्षक लगती है।

जन्म-शिक्षा––वर्मा जी का जन्म मध्य प्रदेश के सागर जिले के एक सम्पन्न परिवार में संवत् १९६२ विक्रमीय में हुआ। इनके पिता श्री लक्ष्मीप्रसाद सरकारी उच्च पद पर थे, अतएव स्थानान्तरण के फलस्वरूप उन्हें नौकरी में अनेकानेक जिलों में जाना पड़ा। इसका प्रभाव वर्मा जी के अध्ययन पर पड़ा और इसके परिणामस्वरूप उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उक्त प्रान्त के भिन्न-भिन्न स्थानों पर हुई। जब उनके पिता का स्थानान्तरण दूसरी जगह होता, उन्हें भी उनके साथ एक स्कूल से पढ़ाई छोड़कर दूसरे स्कूल में जाना पड़ता। इसी क्रम में उन्होंने रामटेक तथा नागपुर के मराटी स्कूल में मराठी में भी अपनी शिक्षा के चार वर्ष व्यतीत किए।

यद्यपि उनकी शिक्षा इस प्रकार के अस्त-व्यस्त वातावरण में होती रही, तथापि उनकी प्रतिभा आरम्भ से ही प्रकट होने लगी थी। अस्तव्यस्तता भरे वातावरण में प्राय: मंदबुद्धि बालकों का अध्ययनफल अच्छा नहीं होता परन्तु जो प्रतिभासम्पन्न होते हैं, जिनकी बुद्धि तीक्ष्ण होती है, वे उक्त वातावरण में भी अपनी प्रतिभा का चिह्न बनाते जाते हैं। वर्मा जी के बाल-व्यक्तित्व के साथ ही यही सत्य था। उनके तेजस्वी भविष्य की सूचना उनके आरम्भिक काल से ही मिलने लगी थी। यही कारण था वे अपने वर्ग में कभी भी लड़खड़ाए नहीं। वे सदैव, प्रत्येक कक्षा में प्रथम होते रहे। यह क्रम लगातार बना रहा।

यह ज्ञातव्य है कि, उस समय भारत में स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन चल रहा था। महात्मा गाँधी काँग्रेस का नेतृत्व कर असहयोग आन्दोलन को जन-जन तक व्यापक बना रहे थे। वर्माजी का युवा मन देश प्रेम से आन्दोलित हो उठा। एक कुशाग्र बुद्धिमान सजग व्यक्तित्व आवेष्ठनगत प्रभाव से अछूता कैसे रहता। वह अपने देश और राष्ट्र की महत्ता को कैसे विस्मृत करता। इसी का परिणाम था कि वर्माजी ने १९२२ में असहयोग आन्दोलन में स्कूल छोड़ दिया। यह भी स्मरणीय है, एक प्रतिष्ठित सरकारी पदाधिकारी के बालक होकर भी तत्कालीन शासक वर्ग के विरोध में आन्दोलन में भाग लेने में उनके मनोबल और आत्मनिष्ठा तथा स्वतंत्र व्यक्तित्व तथा राष्ट्रीय भावना ही अभिव्यक्त हुई। सामान्य व्यक्ति ऐसे साहसिक कदम कभी नहीं उठा पाते हैं।

---

१. आरम्भ में वर्मा जी कुश्ती आदि के शौकीन थे। उन्होंने स्वयं ही एक जगह लिखा है–– "यदि मेरे परम्परागत साहित्यिक संस्कारों ने बरबस मुझे अपनी ओर खींच नहीं लिया होता तो लोग मुझे रामकुमार पहलवान के नाम से जान पाते।"

परन्तु अध्ययन के प्रति वर्माजी के मन में गहरी आसक्ति थी। उन्होंने आन्दोलन में स्कूल छोड़कर भी अध्ययन से मुख नहीं मोड़ा और घर पर अध्ययन करते रहे। उक्त काल में प्राइवेट तौर से अध्ययन कर वे साहित्य-सम्मेलन एवं विद्वत्परिषद् की परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुये।

१९२३ से पुनः उनका स्कूल में अध्ययन आरम्भ हुआ और वे उक्त वर्ष ही इन्ट्रेंस की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। उसके पश्चात् वे जबलपुर के राबर्टसन कालेज में पढ़ने लगे और १९२५ ई० में उक्त कालेज से एफ० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। उक्त परीक्षा के उपरान्त वे प्रयाग चले आए और उनका शेष अध्ययन प्रयाग विश्वविद्यालय में ही हुआ। प्रयाग विश्वविद्यालय से १९२७ ई० में बी० ए० और १९२९ में एम०ए० (हिन्दी में) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर वे उक्त यूनिवर्सिटी में ही हिन्दी के व्याख्याता के पद पर कार्य करने लगे। नागपुर विश्वविद्यालय से उन्होंने १९३८ में "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" पर पी०-एच० डी० की उपाधि ग्रहण की। आज वे हिन्दी विभागाध्यक्ष हैं। यह तो स्पष्ट रूप से स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रयाग के आगमन से उनमें स्थिरता आई और साहित्यिक दृष्टि से ही उनके जीवन में नया अध्याय आरम्भ हुआ (जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे)।

डॉ० रामकुमार जितने बड़े साहित्यकार हैं, उतने ही बड़े शिक्षाशास्त्री, भाषाविज्ञ तथा विद्वान हैं। हिन्दी और अंग्रेजी के अतिरिक्त संस्कृत, उर्दू, फारसी, रूसी आदि अनेक भाषाओं पर उन्हें अधिकार प्राप्त है। यही मुख्य कारण है, जहाँ वे, हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वान तथा मौलिक रचनाकार माने जाते हैं, वहीं अनेक शोधपरक साहित्यिक तथा सरकारी संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन से निकलने वाले वृहद् कोष के सम्पादकमंडल में भी वे हैं (जिसमें प्रायः हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान होते हैं)। उनकी प्रतिभा का ही पुनीत फल है कि वे रूस में प्राध्यापक बना कर १९६२ में भेजे गए थे और उनकी विद्वत्ता और प्रतिभा से रूस के नागरिक और साहित्यिक प्रभावित हो आज भी उनका यशोगान करते हैं।

उनका प्रकाण्ड पाण्डित्य उनके ग्रन्थों में सहजरूप में व्यक्त है। १९६३ में उनके गुणों को आँकते हुए भारत सरकार ने उन्हें "पद्मभूषण" की उपाधि से सम्मानित किया है।

वातावरण तथा परिवार—डॉ० रामकुमार वर्मा सुसम्पन्न, प्रतिष्ठित तथा योग्य परिवार के योग्य सदस्य हैं। उन्होंने अपने यश और कृत्यों द्वारा अपने परिवार का ही नहीं हिन्दी जगत् का गौरव समृद्ध किया है।

परिवार में मनुष्य जन्म लेता है, वहाँ पलता है, वातावरण से प्रभाव ग्रहण करता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अल्टन कार्ल पियरसन, डग्डोल, विंशिप आदि ने प्रयोगों द्वारा यह प्रतिपादित किया है कि मानसिक और शारीरिक शील गुण बहुत सीमा तक वंशानुक्रम प्राप्त हो तो वातावरण का भी कम महत्त्व व्यक्तित्व के निर्माण में नहीं होता। वट्सन, ब्लाज, न्यूमैन, ऐडलर, गार्डन, प्रेसी थामस, वाल्डविन हिंडले आदि प्रयोग कर इसे प्रामाणिक रूप में स्वीकार करते हैं। अतएव व्यक्तित्व के निर्माण में, उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया में संस्कार का महत्त्व अत्यधिक रहता है।[1] वर्मा जी पर भी संस्कार की छाप गहरी है। उनमें

---

१. **"व्यक्ति वंशानुक्रम और वातावरण की उपज है। वंशानुक्रम और वातावरण का सम्बन्ध जोड़ के समान न होकर गुणा के समान होता है। व्यक्ति = वंशानुक्रम + वातावरण**

सज्जनता, विनम्रता, शिक्षा, साहित्यिक प्रेम तथा धार्मिक निष्ठा संस्कारजन्य है। उनकी विद्वत्ता की तीक्ष्ण अग्नि में उनके व्यक्तित्व का सौहार्द्र नष्ट नहीं हुआ, विनम्रता सूखी नहीं। उनके व्यक्तित्व के इस पक्ष पर आगे विचार करेंगे। यहाँ हम उनकी संस्कारगत धार्मिक निष्ठा, विद्वत्ता तथा साहित्यिकता पर ही प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे।

यह तथ्य प्रामाणिक है कि वर्मा जी को साहित्यिकता संस्कार तथा परिवार से विरासत के रूप में प्राप्त हुई है। इनकी माँ राजरानी देवी स्वयं 'वियोगिनी' उपनाम से कविताएं लिखती थीं। एक भावुक कवयित्री की भावुक कवि सन्तान स्वाभाविक ही है। राजरानी देवी स्वयं भी वर्मा जी को हिन्दी की शिक्षा घर पर दिया करती थी। अतएव उनका सान्निध्य भी उनके मानस पटल पर स्वाभाविक रूप से काव्य-सृजन की प्रेरणा अंकित करता गया। वर्मा जी के बड़े भाई श्री रघुबीर प्रसाद भी एक प्रौढ़ कवि थे, जिनकी ब्रजभाषा में रचित कविताएं विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं। उनके पिता श्री लक्ष्मी प्रसाद भी काव्य रसिक थे और स्वयं कविता भी लिखा करते थे। वर्मा जी के पितामह श्री छत्रशाल और प्रपितामह श्री शोभाराम जी भी इस गुण से सम्पन्न थे, तथा काव्य सृजन करते थे। शोभाराम जी रामभक्त थे। उनकी कविताओं में भक्ति भावना की तरंगें होती थीं। अतएव वर्मा जी को काव्य सृजन का तत्त्व परम्परायुक्त दीर्घ संस्कार से प्राप्त हुआ है, ऐसा निःसंकोच कहा जा सकता है। जिस व्यक्ति के पिता, पितामह, प्रपितामह, भाई, माँ सभी काव्य सृष्टा हों, उस संस्कार सम्पन्न व्यक्तित्व में काव्य का स्रोत फूटना सर्वथा नैसर्गिक है। इतनी बड़ी विरासत को प्राप्त कर वर्मा जी ने अपन संस्कार को समुन्नत रूप में प्रकट किया, अपनी पारिवारिक सांस्कारिक परम्परा को गौरव शिखर पर पहुँचाया, यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी। जिस व्यक्ति को इतनी बड़ी काव्य परम्परा संस्कार से मिली हो उसमें काव्य की व्यापक चेतना, सृजन का विराट तत्त्व स्वाभाविक है। इसलिए[1] उनका यह कवि संस्कार और रूप बाल जीवन से ही सहज ढंग से अभिव्यक्त होने लगा था। सन् १९१८ में जब वर्मा जी मिडिल कक्षा के विद्यार्थी थे, उन्होंने बाल चेतना के अनुरूप लिखा——

ईश्वर मुझको पास कराओ अब,
और मिठाई खूब-सी खाओ अब।

उनके काव्य सृजन की प्रक्रिया में उनके परिवार का वातावरण भी सदैव सहायक रहा। उनके अभिभावक उन्हें सदैव इस दिशा में प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया करते थे। उनके पिता ने सामान्य पिता की तरह कभी भी उनके 'कवि' व्यक्तित्व को कुंठित करने का प्रयास नहीं किया और इसी का स्पष्ट प्रमाण है, जब 'देश-सेवा' शीर्षक कविता पर कानपुर के श्री बेनी-माधव खन्ना का ५१) रुपये का पुरस्कार दिये जाने का समाचार पत्रों में छपा तो उन्होंने

नहीं है, वरन् व्यक्ति = वंशानुक्रम × वातावरण है। वह इन दोनों तत्त्वों का गुणनफल है, कुछ वंशानुक्रम से प्राप्त हिस्सों और कुछ वातावरण से प्राप्त हिस्सों का योगफल नहीं है।" ——राबर्ट एस० वुडवर्थ और डॉनल्ड जी-मार्क्विर्स——मनोविज्ञान, पृष्ठ ९५

१. वर्मा जी ने स्वयं स्वीकार किया है——"कविता का यह अंकुर शैशव से ही पल्लवित हुआ। मेरे परिवार के व्यक्तियों न मुझे बताया कि कविता हमारे कुल की परम्परागत सम्पत्ति है।"

(उनके पिता ने) इसमें भाग लेने को प्रोत्साहित किया और उन्हें उक्त पुरस्कार प्राप्त होने पर उनके पिता प्रसन्न हुए तथा उनकी माता ने उक्त पुरस्कार प्राप्ति के उपलक्ष में अपनी ओर से भी उन्हें रुपये पुरस्कार में दिए। यह घटना अत्यन्त प्रामाणिक रूप से यह सिद्ध करती है कि वर्मा जी को काव्य सृजन के लिये परिवार से सदैव प्रोत्साहन ही मिलता रहा। और यही प्रोत्साहन और संस्कार वर्मा जी के व्यक्तित्व में आज इतने विराट रूप में वर्तमान है। ज्योति प्रसाद निर्मल ने वर्माजी के जीवन का सर्वेक्षण करते हुये अपना मत प्रकट किया है—"इनमें काव्य की ओर रुचि विद्यार्थी-अवस्था से ही दिखाई पड़ती थी । यह गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायण बड़े स्वर से पढ़ा करते थे और कभी-कभी चौपाइयों में अपने इच्छानुसार परिवर्तन भी कर दिया करत थे।" मेरे मतानुसार यह परिवर्तन कार्य स्वाभाविक रूप से वही विद्यार्थी कर सकता है, जिसके अन्दर स्वयं भी काव्य सृजन की प्रेरणा अंकुरित हो रही हो। अतः यह घटना भी वर्मा जी के उगते कवि व्यक्तित्व को (उस समय आप मात्र १७ वर्ष के युवक थे) दृढ़तापूर्वक प्रस्तुत करती है।

संस्कार के अतिरिक्त वातावरण से भी वर्मा जी की काव्यप्रेरणा की जड़ अभिसिंचित हो निरन्तर गहराई में पैठती गई।

१९१८ में वर्मा जी जब मिडिल स्कूल सिहोरा (म० प्र०) में पढ़ते थे तो सौभाग्य से इनके शिक्षक पं० विश्वम्भर प्रसाद गौतम, विशारद भी एक कवि थे जो प्रयाग की 'विद्यार्थी' पत्रिका तथा अन्य दूसरी पत्रिकाओं में लिखा करते थे। डॉ० वर्मा जी का अक्षर बालपन से ही सुन्दर तथा साफ हुआ करता था। अतः गौतम जी अपनी रचनाएं "विद्यार्थी" में रामकुमार जी से सुन्दर अक्षरों में नकल कराकर भेजा करते थे। ऐसी स्थिति में गौतम जी का सम्पर्क भी वर्मा जी के कवि व्यक्तित्व के पल्लवन में सहायक हुआ। रचनाओं की प्रतिलिपि करते समय स्वयं भी काव्य सृजन की उत्कंठा का बालक रामकुमार में जाग्रत होना स्वाभाविक ही था।

छात्रावस्था में तत्कालीन राजनैतिक वातावरण के फलस्वरूप एक और महत्त्वपूर्ण घटना घटी, जिसका प्रभाव वर्मा जी के उभरते हुए साहित्यकार रूप पर पड़ा। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही भारत में मुक्ति का आन्दोलन चल रहा था। महात्मा गाँधी तथा अन्य भारतीय नेता भारत की स्वतंत्रता के लिये कठिन श्रम कर रहे थे। समय-समय पर अंग्रेज शासकों

---

१. नवयुग-काव्य-विमर्श, पृष्ठ—२५७

२. राबर्ट एस० वुडवर्थ और डोनल्ड जी० मार्क्विस का कथन है—"व्यक्ति के विकास पर वातावरण का प्रभाव कई भिन्न तरीकों से पड़ता है। विकास की प्रक्रियाएं ओषजन, जल, भोजन और वातावरण-सम्बन्धी अनुकूल तापमानों की प्राप्ति पर निर्भर करती है। व्यक्ति की आदतें और कौशल वातावरण द्वारा प्रस्तुत स्थितियों पर, जिनमें अभ्यास की गुंजाइश रहती है, निर्भर करती हैं। व्यक्ति का ज्ञान उन शिक्षाओं पर निर्भर करता है जिनको उसने प्राप्त किया है और उसकी सामाजिक अभिवृत्ति इस बात पर निर्भर करती है कि सामाजिक परिस्थितियोंमें उसने किस प्रकार भाग लिया है। मनोविज्ञान, पृष्ठ—९७

के प्रति असहयोग आन्दोलन किये जाते थे। अंग्रेजी के अत्याचार से भारत का इतिहास रंगा जा रहा था। शासक अंग्रेज राजतंत्र में विश्वास रखकर भारतीय पुकार को कुचलने का प्रयत्न कर रहे थे। डॉ० वर्मा आरम्भ से संवेदनशील, भावुक व्यक्ति थे। वे राष्ट्रीय समस्या से प्रभावित हुय बिना नहीं रह सके। और पिता की नौकरी तथा अपने भविष्य (भविष्य में अंग्रज़ों क शासन में उच्च पद प्राप्ति की कामना) की चिन्ता छोड़कर उन्होंने १९२१ में असहयोग आन्दोलन में स्कूल छोड़ दिया और कार्यकर्ता के रूप में उत्साह से कांग्रेस का काम करना आरम्भ किया। वे प्रतिदिन अपने साथियों के साथ प्रभात-फेरी में झंडा लेकर निकलते और राष्ट्रीय गीत प्रभात-फेरी में गाया करते। उस समय समाचार पत्रों में प्रकाशित गीत पर्याप्त संख्या में नहीं मिलते थे और वे जल्दी पुराने भी पड़ जाया करते। ऐसी स्थिति, उमंगपूर्ण मनःस्थिति में स्वाभाविक रूप से वर्मा जी की इच्छा स्वतः कविता लिखने को होती जिन्हें प्रभात फेरी में गा सकें। उस समय तक काव्य के पिंगल आदि का ज्ञान उन्हें हो ही चुका था। ऐसे वातावरण में उनके अन्दर का काव्य बीज अनायास प्रस्फुटित हो गया और वे तत्कालीन राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत कविताएँ लिखने लगे, जिन्हें वे प्रभातफेरी में गाया भी करते। उक्त वातावरण में उन्होंने अनेक रचनाओं का सृजन किया।

"कर्मवीरों का है क्या खेल।
मुस्कराते जावेंगे जेल"
—जैसी पंक्तियाँ उक्त काल की देन हैं।

प्रसंगवश यह भी स्मरणीय तथ्य है कि वर्मा जी में यह राष्ट्रीय तत्त्व निरन्तर विराट रूप धारण करता गया। "चित्तौड़ की चिता" "हम्मीर हठ" से लेकर "एकलव्य" तक में उनकी यह पुनीत भावना किसी-न-किसी रूप में चाँदनी की तरह अवश्य ही छिटकी है, जिसमें उज्ज्वलता शीतलता और उन्मेषी उदात्तता है, मानवतावादी संकल्प है।

वर्मा जी के कवि व्यक्तित्व को आगे भी वातावरण से सहयोग ही प्राप्त होता रहा। जब वे बी०ए० की शिक्षा के लिए १९२५ में प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ने आए, तो वहाँ के वातावरण से उनका यह व्यक्तित्व निखरने की दिशा में तेजी से बढ़ने लगा। प्रयाग सदा से साहित्यिक वातावरण का केन्द्र रहा है। वहाँ जाते ही उनका संबंध काशी और प्रयाग के साहित्यिकों से स्थापित हो गया। प्रयाग में उनका घनिष्ट सम्पर्क सुमित्रानन्दन पंत से हो गया। काशी में मुंशी प्रेमचंद के माध्यम से वे जयशंकर के निकट आ गए और वे परस्पर रचनाएं सुनने-सुनाने लगे। प्रयाग में कवि सम्मेलन का वातावरण प्रखर था। ऐसी स्थिति में अन्य कवियों से उनका सहज रूप से घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत आदि उस युग में छायावादी काव्य के प्रवर्तक थे। इनके सम्पर्क से वर्मा जी की काव्य-चेतना जहाँ व्यापक और तीक्ष्ण बनी, वहाँ उसमें नया मोड़ भी आया। राष्ट्रीय तथा रीतिकालीन विषयों से युक्त वर्मा जी रचनाएँ स्वतः नई दिशा में उन्मुख हो गई, उसमें छायावाद का रंग चढ़ गया। उनकी काव्य-रचनाओं में छायावादी लाक्षणिकता, रहस्यभावना आदि के उदय का प्रमुख कारण यही है। प्रसाद जी आदि के गीतों ने अनजाने वर्मा जी के मन-प्राणों के तारों को झंकृत कर दिया और जिससे उनके गीतों में नवीन चेतनानुप्राणित हो गीतिसौन्दर्य मुखरित हुआ। "अंजलि" (१९३०) "रूप-राशि" (१९३१) आदि को इस

दृष्टि से देखा जा सकता है। इनमें उक्त काल के छायावादी गीत ही अपनी पूर्ण स्पर्शशीलता तथा सौन्दर्यबोध से संग्रहीत हैं। इस नये सम्पर्क तथा वातावरण का वर्मा जी की काव्य चेतना पर इतना गहरा और अटूट प्रभाव पड़ा, जिससे उनकी कविता की धारा ही दूसरी दिशा में प्रवहमान हो गई और अपने काव्य सौष्ठव और सौन्दर्य बोध तथा गीति कला के कारण वर्मा जी छायावादी कवियों की प्रथम श्रेणी में परिगणित हो गए। प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी के साथ छायावाद के इतिहास में वर्मा जी भी महत्वपूर्ण हस्ताक्षर बन गए और छायावादी काव्य के प्रतिनिधि कवि के रूप में स्वीकृत हुए। इस प्रकार प्रयाग का वातावरण और सम्पर्क उनके जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

आचरण तथा व्यवहार—आचरण की दृष्टि से वर्माजी पूर्णतया एक धर्मावलम्बी व्यक्ति प्रतीत होते हैं। खूब सुबह उठना, पूजा करना, फिर अध्ययन आरम्भ करना, विद्यार्थियों को शिक्षा संबंधी निर्देश करना, विश्वविद्यालय जाना और रात्रि में पुनः ईश्वर का स्मरण कर सोना निश्चय ही, एक ईश्वरनिष्ठ व्यक्तित्व के परिचायक हैं। वर्मा जी परम्परावादी आस्तिक व्यक्ति की तरह मंत्र आदि में भी विश्वास रखते हैं और इसका स्पष्ट प्रमाण है कि अभी भी उनकी बाँह पर जंतर बंधा है। (यह तत्त्व सांस्कारिक ही मानना चाहिए।) उनका यह आस्था-परक आचरण उनक साहित्य में भी प्रकट है। वे अपने साहित्य में सर्वशक्तिमान सत्ता की अवहेलना नहीं करते। "शिवाजी" आदि कृतियों में यह स्वर स्पष्ट रूप से सुना जा सकता है।

उपर्युक्त मनःस्थिति के अनुकूल ही वे अपने से बड़े जनों को प्रणाम करते हैं, अपने प्राचीन गौरवशाली पुरुषों के प्रति श्रद्धा निवेदित करते हैं और अपने से छोटों पर अत्यन्त स्नेह से आशीर्वाद की पुष्प वर्षा करते हैं। वे भारतीय आस्थाशील आचरण के अनुकूल शुभ कामना-परक मनोवृत्ति रखते हैं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वे रूढ़ियों से ग्रस्त अप्रगतिशील विश्वासों के व्यक्ति हैं। वास्तविक रूप में देखा जाए तो उसमें प्राचीन और नवीन का अत्यन्त सफल समन्वय है। एक ओर फुलपैन्ट कोट पहनना और दूसरी ओर आस्थावान भक्त हृदय की तरह ईश्वर की उपासना से ही मात्र उनका यह समन्वययुक्त आचरण प्रकट नहीं होता प्रत्युत् इनके साहित्य द्वारा भी यह प्रतिपादित होता है। एक ओर वे जातीयता का विरोध करते हैं, छुआछूत का विरोध करते हैं ("एकलव्य" इसका उदाहरण है) वहाँ दूसरी ओर भारतीय गुरु-शिष्य के परम्परागत पावन स्नेहशील संबंधों का समादर करते हैं ("एकलव्य" देखें)। एक ओर जहाँ नर व नारियों में शौर्य की आकांक्षा करते हैं, उनके उदात्त आचरण का यशगान करते ("चित्तौड़ की चिता" देखें) वहीं वे मंगलपूर्ण आदर्श का भी प्रतिष्ठान करते हैं। वे 'कुल ललना" में नग्नतायुक्त फैशनपरस्ती के समर्थक नहीं हैं, परन्तु तेज और प्रगतिशील विचारों के प्रतिपादक हैं। वे प्राचीनता से, परम्परा से गुणों को ग्रहण करने के आकांक्षी हैं और आधुनिक प्रगतिशील विचारों से जीवन का अलंकरण भी चाहते हैं। इस प्रकार वे प्राचीनता और आधुनिकता के गुणों की स्वीकृति देते हैं, अगतिशीलता और रूढ़ियों को नहीं। वे दोनों के मांगलिक तत्त्वों के समन्वय से मानवता का श्रृंगार करना चाहते हैं। अतएव उनका आचरण और साहित्य भी मानवतावादी धरातल पर अवस्थित है। वे अहम् से कुंठित मनुष्य की तरह आचरण न करते हुए, ऊर्ध्वमुखी चेतनानुप्राणित आचरण का निर्वाह करते हैं। वे मात्र प्राचीनता के नाम पर प्राचीन के सभी गुणों की उपेक्षा नहीं करते, न आधु-निकता की अनास्था और दुर्गुणों को (अर्थात् आधुनिकता के जो दोष हैं) अपनाते हैं। इस

प्रकार डॉ० रामकुमार में जहाँ संस्कारजन्य कुछ प्राचीन विश्वास सन्निहित है, वहाँ आधुनिक चेतनानुप्राणित, गाँधीवादी प्रगतिशील दृष्टिकोण हैं। इस प्रकार परम्परा और आधुनिकता का मणिकाँचन संयोग वर्मा जी के व्यक्तित्व और साहित्य में भी मिलता है। इस तथ्य की दृष्टि से पद्मभूषण डॉ० रामकुमार वर्मा और पद्मभूषण डॉ० वृन्दावन लाल वर्मा में बहुत साम्य है।

रामकुमार वर्मा मर्यादित व्यवहार के पुरुष हैं। उपर्युक्त कथित व्यवहार में उनकी इसी मर्यादा का प्रमाण मिलता है। शीलवान डॉ० रामकुमार का परिवार भी इस दृष्टि से मर्यादानुकूल व्यवहार करता दीखता है। जो भी उनके समीप जाए वे ऐसी आत्मीयता और बंधुत्व के भाव से मिलते हैं कि उनकी गहरी छाप हृदय पर अनायास अंकित हो जाती है। व्यावहारिकता की भी वर्मा जी में कमी नहीं है। वे उस साहित्कार की तरह नहीं जो काव्य जगत के स्वप्नों में व्यावहारिकता को विस्मृत कर बैठते हैं और जिसका परिणाम होता है मिलने वाले स्वाभाविक रूप से वर्मा जी के आत्मीय बन जाते हैं, उन्हें अपना पारिवारिक सदस्य मानने लगते हैं। नियम से उठना, पढ़ना, लिखना, अध्ययन करना, मिलनेवालों का ख्याल रखना उनकी बातों को सुनना और यथासंभव सहयोग करना, बड़े जनों को द्वार तक पहुंचाने जाना, बाहर के विशिष्ट साहित्यकारों को स्टेशन तक छोड़ने जाना, आगतों का पूरी निष्ठा और अपनत्व से सत्कार करना आदि उनके ऐसे व्यावहारिक रूप हैं,जो उनके व्यक्तित्व के प्रभाव को द्विगुणित कर देता है। यदि उसमें व्यावहारिकता नहीं रहती तो वे इतना अधिक सृजन कहीं कर पाते। अध्यापन कार्य को कुशलता से नहीं निर्वाह कर पाते और जितनी संख्या में उनके पास शोध ग्रन्थ परीक्षणार्थ आते हैं, वे उसे कुशलता और यथाशीघ्रता से नहीं देख पाते। अतः डॉ० वर्मा में भावुकता, कविगत संवेदनशीलता और व्यावहारिक कुशलता का अपूव समन्वय है।

कुशल प्राध्यापक—डॉ० रामकुमार वर्मा मात्र साहित्यकार ही नहीं कुशल प्राध्यापक भी हैं। आप प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० में उत्तीर्ण होने के पश्चात् वहीं प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किये गए। सामान्य रूप से जिस कालेज में मनुष्य विद्यार्थी का जीवन व्यतीत करता है, वहाँ सफल प्राध्यापक बन पाने में कठिनाइयाँ अनुभव करता है। परन्तु जिसमें अध्यापन की शक्ति होती है, अध्ययन का गाम्भीर्य होता है, स्वभाव का सन्तुलन होता है, वह वहाँ भी सफलता प्राप्त कर लेता है। डॉ० रामकुमार वर्मा में प्राध्यापक की कुशलता आरम्भ से रही। वर्ग में भाषण के पूर्व स्वयं विषय का गम्भीर अध्ययन करना, नियत समय पर वर्ग में उपस्थित होना, अनावश्यक प्रश्नों में विद्यार्थियों को उलझाने के बजाय सम्बद्ध विषय पर भाषण देना, धाराप्रवाह बोलना, विद्यार्थियों की शंकाओं के समुचित समाधान का प्रयत्न करना, विद्यार्थियों को अपने छोटे भाई की तरह स्नेह देना आदि डॉ० वर्मा के कुशल प्राध्यापक के गुण हैं।

डॉ० वर्मा स्वयं प्रकांड विद्वान, शिक्षाशास्त्री हैं और जब से वे प्राध्यापक बने, कभी अपने दायित्व से विमुख नहीं हुए। [illegible]र्याप्त अध्ययन कर वर्ग में उपस्थित हुए और भाषण से विद्यार्थियों को सन्तुष्ट किया। विद्यार्थियों में वैसे शिक्षक के प्रति स्वतः आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। इसके साथ ही वर्मा जी समय काटने वाले शिक्षक कभी नहीं रहे। नियत समय पर वर्ग में उपस्थित होकर भाषण देना जैसे वे अपना महान कर्त्तव्य मानते हैं। इसी कारण

आज भी, जब वे विभागाध्यक्ष नियुक्त हो चुके हैं, अपना वर्ग नहीं छोड़ते, विद्यार्थियों को अपने अमूल्य भाषण से वंचित नहीं करते।

वह प्राध्यापक भी सफल नहीं सिद्ध हो पाता जो विद्यार्थियों की शंकाओं का समाधान समुचित रूप में नहीं कर पाता। कुछ ऐसे भी विद्यार्थी होते हैं जो अपने जटिल और उलझे हुए प्रश्नों से अपने प्राध्यापक को परेशान कर आनन्द लेते हैं। परन्तु कुशल प्राध्यापक अपने विषय का अध्ययन इतनी गहराई और स्पष्टता से स्वयं कर वर्ग में उपस्थित होते हैं, जिससे वैसे ऊधमी उन्हें परेशान करने के बजाय स्वयं आतंकित रहते हैं। डॉ० वर्मा के साथ यही तथ्य है। उनके गहन अध्ययन की छाप वर्ग के विद्यार्थियों पर इस प्रकार अटूट रहती है, जिसके फलस्वरूप वे उनके प्रति श्रद्धा से नत रहते हैं।

प्राध्यापक में प्रत्युत्पन्नमति की भी बड़ी आवश्यकता होती है। भ्रमित मानस से उत्पन्न प्रश्नों के भी अपने उत्तर की दृढ़ता से उन्हें सही दिशा देना, उनके व्यवहारिक जीवन में आवश्यक होता है। वर्ग में भी कुछ विद्यार्थी ऐसे प्रश्नों से प्राध्यापक को आहत करने का सदैव प्रयत्न करते हैं। प्राध्यापक जीवन-यापन करनेवाले स्वयं इस परिस्थिति का सहज में अनुमान कर सकते हैं। डॉ० वर्मा इस दृष्टि से भी योग्य प्राध्यापक दीखते हैं। उनकी प्रत्युत्पन्नमति की धाक विद्यार्थी समाज पर सदैव बनी रहती है। कोई भी कैसा भी बेढंगा प्रश्न उपस्थित करे, वर्मा जी मधुरता से तथा बुद्धिसम्पन्नता से ऐसा उत्तर दे डालते हैं, जिससे उद्दंड विद्यार्थी निःशस्त्र हो आत्म समर्पण कर देते हैं, उनके प्रति आदर से भर उठते हैं और अपनी क्षुद्रता से लज्जित हो उठते हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय ऐसा विश्वविद्यालय है, जहाँ दूर-दूर से विद्यार्थी अध्ययन के उद्देश्य से आते हैं। वैसे स्थल पर प्राध्यापक का कार्य और भी कठिन होता है, क्योंकि उसे उस योग्यता का प्रमाण देना पड़ता है, जो आने वाले विद्यार्थियों का अपने क्षेत्र में उपलब्ध नहीं होता। वर्मा जी ने वैसे ही स्थल पर रहकर अपनी प्राध्यापन-योग्यता का अत्यन्त सफलता से प्रमाण दिया है और जिसके फलस्वरूप वे उक्त विश्वविद्यालय से अपने पद पर निरन्तर उन्नति करते हुये आज विभागाध्यक्ष हो गए हैं। निश्चय ही, इस प्रकार वे योग्य गुरु (मेरा संकेत आचार्य डा० धीरेन्द्र वर्मा की ओर है) के योग्य शिष्य सिद्ध हुए हैं। उनके जैसे अखिल भारतीय प्रसिद्धि प्राप्त विद्वान तथा साहित्यकार को विभागाध्यक्ष के रूप में प्राप्त कर उनका विश्वविद्यालय गौरव अनुभव करता है।

डॉ० वर्मा में प्राध्यापक का अध्ययन गाम्भीर्य और मधुर स्वभाव का ऐसा मणिकाँचन संयोग है कि उनके अधिकाँश सहयोगी प्राध्यापक उन्हें अपना बड़ा भाई और मित्र मानते हैं। उनके इस गुण का प्रसार विद्यार्थी समाज तक है। वे जब वर्ग से बाहर निकलते हैं, तब वे विद्यार्थियों के लिए बड़े भाई तथा पिता तुल्य बन जाते हैं। जिनसे विद्यार्थियों को स्नेह मिलता है, प्यारपूर्वक निर्देशन मिलता है, ज्ञान और दिशा मिलती है। डॉ० रामकुमार वर्मा जैसे योग्य प्राध्यापक के कारण प्रयाग विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग धन्य है, जहाँ से डॉ० धर्मवीर भारती, डॉ० जगदीश गुप्त, डॉ० रघुवंश, डॉ० केशनीप्रसाद चौरसिया, डॉ० राजेन्द्र कुमार जैसे योग्य साहित्यकार निर्मित हुये हैं। स्मरण रहे ये सभी डॉ० रामकुमारजी के अत्यन्त प्रिय शिष्य रहे हैं।

डॉ० वर्मा कुछ काल के लिए मास्को में भी प्राध्यापक के पद पर कार्य करने के लिये भेजे गए थे। वहाँ भी उन्होंने एक योग्य शिक्षक का अत्यन्त प्रभावशाली रूप बनाये रखा।

सबेरे उठना, अध्ययन करना और अपने आदर्श से भारत के गौरव को बढ़ाना जैसे उनके जीवन का महान् व्रत रहा। रूस के विद्यार्थी तथा शिक्षा-शास्त्री जहाँ वर्मा जी के साहित्य से प्रभावित थे वहाँ उनके आदर्श भारतीय संस्कृति, आचरण और प्राध्यापक रूप के प्रति भी श्रद्धावान थे और जिसके फलस्वरूप वहाँ उन्हें अत्यन्त सम्मान मिला, आदर और प्रेम मिला। आज भी वहाँ के अनेक विद्वान् साहित्य प्रेमी तथा विद्यार्थी उन्हें पत्र लिखते रहते हैं। निःसन्देह वर्मा जी भारतीय प्राध्यापक के आदर्श हैं। प्राध्यापक का कार्य मात्र अध्यापन कर अर्थ अर्जन करना नहीं प्रत्युत् अपने आचरण का आलोक अपने परिवेश में फैलाना, अपने विद्यार्थियों और समाज पर डालना भी होता है जिससे छात्रों का बौद्धिक स्तर ऊँचा उठने के साथ ही जीवन का दर्शन भी उन्नत हो, उनका आचरण और मानस पवित्र बने, समाज के लिये अनुकरणीय हो। डॉ० वर्मा में यह गुण अत्यन्त शक्तिशाली रूप में है जिससे उनके विद्यार्थी, उनके इर्द-गिर्द का समाज और मिलने वाले अन्य व्यक्ति उनसे कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकें, कुछ प्रेरणा प्राप्त कर सकें।[1] इस दृष्टि से भी वर्मा जी का प्राध्यापक रूप महान है, स्तुत्य है। आज शिक्षण संस्थाओं के छात्रों की अनुशासनहीनता और अमर्यादित आचरण की चर्चा पर्याप्त सुनने को मिलती है। परन्तु इसमें अधिक दोष शिक्षण-पद्धति तथा प्राध्यापकों का माना जायगा। आज की शिक्षण-पद्धति में सुधार की नितान्त आवश्ककता है। साथ ही यह भी परमावश्यक है कि शिक्षक ऐसे योग्य और आचरणवान हों जिनकी छाप विद्यार्थी वर्ग पर स्वाभाविक रूप में पड़े। मैं गर्व से घोषणा करता हूँ कि प्राध्यापकगण डॉ० वर्मा से इस दिशा में आदर्श ग्रहण करें।

वक्तृत्व की कला——डॉ० वर्मा प्राध्यापक तथा विद्वान् के रूप में भी अत्यन्त यश प्राप्त कर चुके हैं। जिस प्रकार उनकी कृतियों में अगाध गहराई है उसी प्रकार उनके भाषण भी अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं। छोटे-छोटे सरल शब्द सरस वाक्य विन्यास काव्यात्मकता से ओत-प्रोत। लगता है जैसे वे किसी कवि के संचित ज्ञान-कोष से वितीर्ण किये जाने वाले अमूल्य आकर्षक रत्न हों। भाषणों की भी भाषा इतनी काव्यात्मक होती है कि श्रोता प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। इस लेखक को भी कई साहित्यिक आयोजनों और विश्वविद्यालयों में आयोजित सभा में डॉ० वर्मा की वक्तृत्व कला से लाभान्वित होने का सौभाग्य मिल चुका है। स्पष्टतः लगता है उनकी विद्वता साहित्यिकता से नीर क्षीर की तरह घुल मिल गई है और उनके भीतर का साहित्यकार उनके बाह्य व्यक्तित्व से सामंजस्य स्थापित कर चुका है जिससे

---

१. **डॉ० केशनीप्रसाद चौरसिया ने ठीक ही लिखा है——"मानव रामकुमार के गुरु गम्भीर मधुर व्यक्तित्व को जैसे-जैसे पढ़ता गया हूँ, वैसे-वैसे इसके नये-नये अर्थ मुझे चमत्कृत करते रहे हैं। सौभाग्य से मुझे उन्हें निकट से देखने का अवसर मिला है——उन्मुक्त ठहाकों के उच्छल क्षणों में और घनघोर मानस-मंथन की घड़ियों में भी, किन्तु मैंने उन्हें कभी डगमगाते नहीं पाया, व्याजस्तुति से किसी के व्यक्तित्व का श्रुतिसुखद विश्लेषण करते नहीं पाया। सदैव वे एकरस स्थितप्रज्ञ अनाहत, विशाल वट-वृक्ष की भाँति स्थिर-गंभीर बने रहे हैं।"——डॉ० रामकुमार वर्मा : व्यक्तित्व और कृतित्व (सम्पादक——डॉ० सियाराम-शरण प्रसाद, पृष्ठ १०-११)**

स्वभावतः उनका प्राध्यापक रूप अत्यन्त प्रभावशाली बन गया है और दूर-दूर के देश-विदेश से विद्यार्थी तथा अन्य व्यक्ति उनका भाषण सुनने प्रयाग पहुँचा करते हैं। कुछ दिन पूर्व जब मैं डॉक्टर साहब के अध्यक्षीय कक्ष में बैठा उनसे कुछ आवश्यक बातें कर रहा था तब मेरे सामने एक जापानी तथा एक जर्मनी उनके निकट आए और उनसे टूटी-फूटी हिन्दी में बताया कि वे उनके भाषण सुनने की बड़ी इच्छा रखते हैं। उनका यह आग्रह सुनते ही वर्मा जी ने स्नेह से प्रवेश-पत्र देकर उन्हें अपने एक वर्ग में भाषण सुनने की अनुमति प्रदान कर दी। इस घटना से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वक्तृत्व कला की दृष्टि से भी वर्मा जी की ख्याति चतुर्दिक फैल चुकी है और वे इसलिए अनेकानेक साहित्यिक समारोह में भी अत्यन्त आदर से आमंत्रित किये जाते हैं और श्रोता उनके भाषण सुनने को उत्कंठित रहतेहैं। धन्य हैं, प्रयाग विश्वविद्यालय के छात्र जिन्हें मधुर तथा विद्वत्ता से विजड़ित उनके भाषण सदैव सुनने को मिलते हैं।

शोध परीक्षक के रूप में--डॉ० वर्मा हिन्दी के महान् विद्वान् तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष हैं अतएव जितनी अधिक संख्या में उनके विश्वविद्यालय में उनके निर्देशन में छात्र शोध-कार्य करते हैं उतने ही अन्य विश्वविद्यालयों के छात्र उनके निर्देशन का सौभाग्य प्राप्त करने को तत्पर रहते हैं और निर्देशन पाते हैं। अनेक शोध-ग्रन्थ के परीक्षण में भी उनका पर्याप्त समय जाता है। परीक्षण कार्य एक विद्वान् का दायित्व ही होता हैजिससे वे मुकर भी कैसे सकते हैं। परन्तु शोध-परीक्षक के रूप में वर्मा जी अत्यन्त कड़े दीख पड़ते हैं। वे ग्रन्थ के अक्षर अक्षर को पढ़ते हैं और अपना निर्णय देते हैं। इसलिए उनके यहाँ भेजे जाने वाले ग्रन्थ लाल-लाल चिह्नों से भर जाते हैं। चूँकि वे मर्मज्ञ अधिकारी विद्वान हैं इसलिये उनकी दृष्टि अत्यन्त प्रखर और पैनी है। वे शोध ग्रन्थ को मर्म दृष्टि से परखते और उस पर निर्णय देते हैं। और शोध परीक्षार्थी जब मौखिक परीक्षा के लिए उनके सम्मुख आता है तब प्रायः उनके तीखे प्रश्नों से घबरा जाता है। वे शोध-ग्रन्थ के मर्म पर उंगली रखकर अत्यन्त इन्टेलिजेन्ट प्रश्न करते हैं। उस समय ईमानदारी से शोध करने वाला ही उनका सही उत्तर दे पाता है।[1] अतएव वर्मा जी परीक्षक के रूप में बड़े ईमानदार और तीखे हैं।

परन्तु इसके साथ ही वर्मा जी निर्देशक के रूप में भी अत्यन्त निष्पक्ष और ईमानदार हैं। वे समय का अभाव रहने पर भी किसी विषय पर शोध कराते समय स्वयं उक्त विषय

---

१. डॉ० वासुदेव नन्दन ने प्रबन्ध-परीक्षक के रूप में डॉ० वर्मा की चर्चा करते हुए लिखा है--"प्रबन्ध परीक्षक डॉ० रामकुमार वर्मा ने ताबड़-तोड़ प्रश्न पूछना शुरू किया, बड़े विकट और कठोर। मन के एक कोने में आवाज आई--"अब मैं डूबा।" खैरियत यह हुई कि सभी प्रश्न मेरे शोध प्रबन्ध से सम्बद्ध थे। वे प्रबन्ध को जहाँ-तहाँ लाल पेन्सिल से चिह्नित कर आए थे। वे एक-एक कर पृष्ठ उलटते गए और प्रश्नों की झड़ी लगाते रहे। ..पहले तो वे मुझे बड़े कठोर, दुर्गम और नीरस मालूम हुए। मैं समझता हूँ कि शोध-प्रबन्ध के परीक्षक के रूप में उनकी इस असाधारण क्षमता का अनुभव मेरी तरह अन्य हिन्दी शोधकों को भी हुआ होगा।" --डॉ० रामकुमार वर्मा : व्यक्तित्व और कृतित्व (सम्पादक--सियाराम शरण प्रसाद), पृष्ठ २१-२२

पर गम्भीरता और विस्तार से विचार करते हैं और शोध-छात्र से कठिन श्रम कराते हैं, तत्संबंधी विषय पर मौलिकता और गहराई से विचार कराते हैं। वर्मा जी सही रूप में निर्देशन के कठिन दायित्व का पालन करते हैं। यही कारण है, उनके निर्देशन में होने वाले शोध-कार्य हिन्दी साहित्य के इतिहास में महत्त्व रखते हैं। शोध की मर्यादा के अनुकूल आचरण निर्वाहित करने वाली वर्मा जी की यह देन भी किसी प्रकार विस्मृत नहीं की जा सकती। उनके इसी महत्वपूर्ण दायित्व-निर्वाह का परिणाम है कि उनके निर्देशन में कार्य करने के लिये बहुसंख्या में छात्र लालसाग्रस्त रहते हैं। वर्मा जी की यह साहित्य-सेवा भी स्वर्णाक्षरों में लिखी जायगी।

प्रशासक रूप में डॉ० वर्मा—वर्मा जी में जहाँ उपर्युक्त उल्लेखित अनेक गुण हैं वहाँ उनमें प्रशासनिक क्षमता भी है। वे किसी भी कार्य को व्यवस्थित रूप देना जानते हैं (इसी कारण उनके रहन-सहन पारिवारिक जीवन में भी सदैव सुघड़ व्यवस्था में पाते हैं)। प्रशासनिक क्षमता के लिए सिद्धान्त की दृढ़ता, कार्यक्षमता और व्यवस्थित रूप निर्माण करने की योग्यता अपेक्षित है। डॉ० वर्मा में यह गुण वर्तमान हैं। वे प्रशासन में अपने सिद्धान्त को बलि नहीं चढ़ाते हैं और किसी भी प्रकार समझौता स्वीकार नहीं करते हैं। मेरे सामने उस दिन की घटना अभी भी अविस्मरणीय बनकर खड़ी है जब किसी अनुशासनहीन उद्दंड विद्यार्थी ने उनकी व्यवस्था पद्धति में खलल डालते हुए अपने सहारे के लिये अपने पक्ष का समर्थन उप-कुलपति से पाने का संकेत किया था, तब उस छात्र की ताड़ना करते हुए वर्मा जी ने कहा था—"अगर मेरी व्यवस्था में कोई उच्चस्थ पदाधिकारी भी गलत ढंग से खलल डालने की चेप्टा करेंगे तो मैं चुप रहने के बजाय त्याग-पत्र देकर संस्था से अलग हो जाने को तैयार रहूँगा, पर मैं व्यवस्था की विशृंखलता पसंद नहीं करूंगा।" और अनेक अपराधों के बोझ को लादे चलने वाले उक्त विद्यार्थी को उन्होंने चेतावनी के स्वर में कहा था—"प्रत्येक व्यक्ति की सीमा होती है। और सभी को अपनी सीमा में रहना ही अच्छा होता है। तुम्हारे अपराध मुझे ज्ञात हैं। मैं तुम्हारे अपराध से किसी भी प्रकार किसी भी शर्त पर सहानुभूति नहीं रख सकता, सहयोग नहीं कर सकता क्योंकि मैं अनुशासन पसंद व्यक्ति हूँ।" उस दिन सज्जनता और सौहार्द के भंडार, सुदृढ़ संवेदनशील कवि डॉ० वर्मा जी का यह रूप देख कर स्तम्भित अवश्य रह गया था परन्तु एक व्यवस्था-प्रिय प्रशासक के मुख से ऐसे शब्दों का निकलना अत्यन्त स्वाभाविक था कुशल प्रशासन के लिए निर्भीकता भी अत्यन्त अपेक्षित गुण है। जो अपने पद की चिन्ता में ही लगा रहे उससे निर्भीकता और न्याय की आशा नहीं की जा सकती। यह निर्भीकता आत्मबल तथा मनोबल से आती है। निष्पक्षता, न्यायी भावना से उत्पन्न होती है और डॉ० वर्मा इस गुण से परिपूर्ण हैं। प्रायः कवि कलाकार सुयोग्य प्रशासक नहीं हो पाते हैं। वे नियम की स्वयं उपेक्षा कर देते हैं और अनपेक्षित उदारता और ढिलाई कर बैठते हैं जिससे उनके आधीन का शासन-तंत्र उचित रूप से नहीं चल पाता है। परन्तु वर्मा जी इसके अपवाद हैं। वे जहाँ भावुक कवि हैं, सुकुमार कलाकार हैं वहाँ योग्य प्रशासक भी हैं। उनका यह गुण भी सांस्कारिक है। वे अपने पिता की तरह ही कौशल और क्षमता से सम्पन्न हैं। वर्मा जी ही नहीं उनके भ्राता आदि संबंधी भी उच्च पदों पर आसीन होकर अपनी इस क्षमता का उदाहरण प्रस्तुत कर चुके हैं।

महामानव डॉ० वर्मा—उपर्युक्त सभी गुणों से समन्वित डॉ० वर्मा निश्चय ही महामानव हैं। इतने अधिक गुणों से सम्पन्न व्यक्ति महामानव ही हो सकते हैं। वर्माजी की निश्छलता,

उदारता, सज्जनता जहाँ प्रेम का विस्तार करती है, वहाँ उनकी कर्तृत्व शक्ति, साहित्यिक उपलब्धि उन्हें अमरत्व की सीमा में ले जाती हैं। सज्जनता के तो वे आगार हैं। "कला-भारती" संस्था (मुजफ्फरपुर) के कार्य-क्रम के सिलसिले मैं जब मैं उनसे मिला, उनसे पत्राचार किया (क्योंकि व इस संस्था के संरक्षकों में हैं) उन्होंने अमूल्य परामर्श से मुझे तथा इस संस्था को लाभान्वित किया। उनके निर्देशन और परामर्श से हम लोगों ने संस्था की मुख्य पत्रिका "दृष्टि" (त्रैमासिक) का राजा राधिकारमण विशेषांक और आरसी प्रसाद विशेषांक इतनी सफलता से निकाला, उस योजना की हिन्दी जगत में पर्याप्त सराहना की गई। स्पष्टतः वर्मा जी कृतज्ञ स्वभाव के व्यक्ति हैं। वे अपने छोटे से छोटे सम्बद्ध, व्यक्ति और संस्था की उन्नति का भी ख्याल रखते हैं, प्रगति की कामना रखते हैं। अगर उनमें इस तत्त्व की निष्ठा नहीं होती तो मुजफ्फरपुर से दूर प्रयाग में रहकर "कला-भारती" जैसी नई संस्था को अपना सहयोग कदापि नहीं दे पाते। उनकी नम्रता के सम्मुख कोई भी अहम्ग्रस्त व्यक्ति अपनी हीनता से संकुचित हुए बिना नहीं रह सकता, उनके अपनत्व पूर्ण व्यवहार से कोई भी आगन्तुक उनका आत्मीय हुए बिना नहीं रह सकता, उनकी गहन विद्वत्ता तथा अपूर्व प्रतिभा से कोई भी शिक्षा-प्रेमी तथा ज्ञानवान प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता और उनकी अमूल्य साहित्यिक देन की कोई भी आलोचक तथा साहित्यकार प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। इस प्रकार उनके व्यक्तित्व के इतने विविध और महत्वपूर्ण आयाम हैं जिन्हें देखकर हम उन्हें महामानव ही अनुभव करते हैं। ऐसे साहित्यिक विरले ही पैदा होते हैं।

● ● ●

"...पृथ्वी का स्वर्ग मनुष्य के इस जीवन में है।.....
वह प्रेम में है, दया में है, सहानुभूति में है.....।"

—'पृथ्वी का स्वर्ग' से

सात स्मृति-चित्र—

डॉ० रामकुमार वर्मा : सावनी-सावनी सा व्यक्तित्व

गोपीकृष्ण गोपेश

१—प्रगतिवादी—रोमानी (?) कवि बंधुवर अंचल जी की प्रेरणा से डॉक्टर झा (स्वर्गीय डॉक्टर, पंडित अमरनाथ झा) से मिला हूँ और पाँचवीं बार यूनिवर्सिटी में नाम लिखाया है। पर, इस बीच गा-बजाकर थोड़ा-बहुत नाम कमा लिया है, तो ज़रा दामन बचाकर रहने और बनने की आदत है। अपने को विद्वान समझने का दम्भ तो ऐसा है कि क्या कहिये ! खैर......तो, बी० ए० में जो विषय लेता हूँ, उनमें हिन्दी भी एक है। मेरा भी हिन्दी का सेमीनार प्रसिद्ध कवि एवं नाटचकार डॉ० रामकुमार वर्मा लेते हैं। वे मुझे पहले से जानते हैं। कह सकता हूँ कि उनका व्यक्तिगत विशेष स्नेह भी प्राप्त है मुझे।

सेमीनार में एक साहब मेरे साथ ही बैठते हैं—नाम है धर्मवीर भारती....पाजामा और नेवी-ब्ल्यु कमीज़ प्रायः पहिनते हैं....रंग हल्का साँवला है...बाल घुँघराले होते-होते बाल-बाल बचे हैं..कद लम्बा है..दुबले-पतले ऐसे हैं कि हैंगर मानकर कोट या शेरवानी आराम से टाँग दीजिये..इसका अहसास उन्हें खुद भी है....तभी तो कमीज़ की आस्तीनों के बटन बंद किये रहते हैं..कलाई को बसंती-बयार का सुख लेने की इजाज़त या मोहलत नहीं देते....देखने में कुछ बड़े शर्मीले हैं..आमतौर पर लिये-दिये नज़र आते हैं। दूसरों के फ़िकरों पर फ़िकरा कसने को होते हैं, मगर फिर जैसे कोई ब्रेक लगा देता है...आदमी ज़हीन और तेज़ मालूम होते हैं...मगर, ऐसा भी क्या है ! मैं तो आखिर मैं ही हूँ।...

सो, सेमिनार में एक दिन लेख दिया जाता है लिखने को—'साहित्य समाज का दर्पण है'...सभी साथी लिखकर लाते हैं..मैं अच्छे-खासे १७ पृष्ठ रंग डालता हूँ और अपनी बुद्धि से ऐसी-ऐसी नई-नई बातें कहता हूँ, जैसी बड़े से बड़ा चिन्तक और विचारक भी क्या कहेगा ! लेख सेमीनार में पढ़ता हूँ। ५९½ नम्बर सौ में मिलते हैं। इसके बाद उपरोक्त भारती जी अपना निबन्ध पढ़ना आरम्भ करते हैं...विषय—'काव्य समाज का दर्पण है'... मैं मन ही मन चिढ़ता हूँ—यह क्या विषय ही तोड़-मरोड़ दिया...और, इनके हाथ में पन्ने भी तीन ही दीखते हैं..अक्षर बहुत छोटे-छोटे हैं, तो भी हुआ क्या !

इसी उधेड़बुन में कानों में पड़ता है—' कीट्स का क्षय-रोग-ग्रस्त पीत वर्ण आनन कविता

की लाश पर आलोचना का कफ़न है।' दूसरी ओर, सहसा ही एक सकता सा छा जाता है, जैसे कि कमरे की हवा एकदम सन्नाटा खींच गई हो कि सोचना पड़ेगा !

डॉ० वर्मा अपनी आँखों का चश्मा उतार लेते हैं। निगाहें नीचे कहीं ज़मीन पर गड़ी रहती हैं। झटके से ६० नम्बर देते हैं, लम्बी आह भरते हैं, और कहते हैं—आज अब जाइये !

मैं ५९½ —का अपना दर्द भूल जाता हूँ, और डॉक्टर वर्मा की नीम-नम निगाहें मुझे भी जाने किस दूसरी दुनिया में ले जाती हैं।....बेचारा-बेचारा कीट्स........कैसे भावुक हृदय हैं डॉक्टर वर्मा......

२—बी० ए० कर एम० ए० में नाम लिखाया है.. अँग्रेजी—साहित्य लेते-लेते हिन्दी-साहित्य ले लिया है कि अंग्रेज़ी फिर सही, ज़िन्दगी रही तो......

यम० ए० में डॉक्टर वर्मा एकांकी पढ़ा रहे हैं..एक दिन कहते हैं—एकांकीकार भरे हाल के मंच पर खड़ा होता है...मुट्ठी बन्द कर जनता से पूछता है—मेरी इस मुट्ठी में एकांकी है..बतलाइये वह क्या है ?.. एक व्यक्ति खड़ा होता है—जीवन की एक विशेष घटना।.. एकांकीकार सिर हिलाता है—नहीं।.....दूसरा व्यक्ति खड़ा होता है—मनः-स्थिति-विशेष का शब्द चित्र।...एकांकीकार फिर सिर हिलाता है—नहीं, मात्र इतने से बात नहीं बनती।....फिर तीसरा व्यक्ति मुखर होता है—कोई, एक मनोवैज्ञानिक स्थिति और उसका प्रोजेक्शन।....एकांकीकार फिर निराशा से सिर हिला देता है...कि सहसा ही एक व्यक्ति हाथ उठाकर ज़ोर से कहता है—"डेढ़ आँसू और ढाई मुस्कानें। ...एकांकीकार मुट्ठी खोल देता है—"ठीक, बस, यही है एकांकी।

मैं सोचता हूँ इस एक वाक्य से तो परीक्षा में क्या होना-जाना है, मगर, यह एक वाक्य भी खूब है।....अब उसी का मज़ा लो, और परीक्षा में अवसर मिल जाये, तो इसी को बढ़ाते चले जाओ।

फिर एक दिन एक विशेष प्रसंग में डॉक्टर वर्मा संत-कवि श्री सुमित्रानंदन पंत जैसे साहित्यकारों के जीवन की चर्चा करते हैं, उनकी सरकारी नौकरियों की बात चलाते हैं, और कहते हैं—आप हमारे शिव की बटियों से भांग पीसने का काम लेते हैं, और समझते हैं कि युग और साहित्य पर बड़ा एहसान कर रहे हैं !

वाक्य मन में गड़ जाता है।

शिक्षक रामकुमार वर्मा के मन के दर्द की तस्वीर का रंग गहरा उठता है...वे कितना चाहते हैं कि हम साहित्य के विभिन्न विषयों को जीवन के यथार्थ से जोड़कर जानें, समझें और ग्रहण करें।..

३—मैं एम० ए० कर रिसर्च लेना चाहता हूँ....आकाशवाणी की पूरी चाकरी चलती रही है....डॉक्टर वर्मा से मिलता हूँ कि साहब, यह नाथ-सिद्ध-तीर्थंकर अपने से तो चलने से रहे—मुझे तो कोई आधुनिक-विषय दिलवाइये....आखिर मैंने इतना इतना लिखा-पढ़ा है...कोई (चूल) तो कहीं मिले....फिर, एक और सवाल भी तो हल कराइये...यह भी क्या कि मैं अगर ईमानदारी से चाकरी की बात लिख दूँ तो खतरा पैदा हो जाये, और दूसरे अगर झूठ को सच बनाकर पेश कर दें तो रास्ता साफ़ हो जाये !...

डॉक्टर साहब (उस समय के) डीन-ऑफ़-फ़ैकल्टी-ऑफ़-आर्ट्स् डॉ० बाबूराम जी-सक्सेना से मिलते हैं।....डॉक्टर सक्सेना कहते हैं——उन्हें किसी और के अण्डर में रख दीजिये, और यह आधुनिक विषय का खप्त उनसे छुड़वाइये ताकि कोई दूसरा व्यक्ति भी निर्देशक बन सके ! कोई आधुनिक विषय होगा तो आप पर बोझ पड़ेगा...आपके पास तो यों भी बहुत विद्यार्थी हैं।...पर, डॉक्टर साहब, डॉक्टर सक्सेना को अपने ढंग से समझते हैं और विभागाध्यक्ष, प्रोफ़ेसर, डॉक्टर धीरेन्द्र वर्मा को भी राज़ी कर लेते हैं। फलतः मुझे विषय मिल जाता है——'हिन्दी-काव्य की संक्रान्ति पर अंग्रेज़ी-रोमांसवाद का प्रभाव'....मैं कार्य आरम्भ करता हूँ...पर, बढ़ता हुआ परिवार, चीज़ों की चढ़ती हुई दरें और तमाम चीज़ें हायल होती हैं...रास्ते में रोड़े अटकाती हैं।.....

बीच-बीच में डॉक्टर रामकुमार जी जब भी रेडियो आते हैं, मुझसे खासतौर पर मिलते हैं और हल्के-हल्के हँसते हुए गम्भीर हो जाते हैं——तुम्हें तो जाने कब रिसर्च-विसर्च पूरी कर मेरा सहयोगी बन जाना चाहिये था...इतने वर्ष खराब हो चुके हैं...जैसे भी हो, लगकर काम पूरा कर डालो...तुम्हारी मुझे बड़ी चिन्ता है...तुम्हें बहुत आगे बढ़ना है।——

और, मैं मन ही मन प्रणाम करता हूँ उन्हें !

३——हमारे प्रदेश में एक नया झगड़ा उठ खड़ा होता है..लाखों लोग हस्ताक्षर कर माँग करते हैं कि उर्दू को भी प्रदेश की राजभाषा माना जाये...यूनिवर्सिटी के विजयानगरम-हॉल में सभा होती है...बात बढ़ती सी मालूम देती है..नहीं लगता——कम से कम मुझे——कि यहाँ जो विचार व्यक्त किये जा रहे हैं, उनसे कोई बात बनेगी, समस्या हल होगी..समझ में नहीं आता कि ऊँट किस करवट बैठेगा।.

दूसरे दिन निर्देशन के सिलसिले में डॉक्टर रामकुमार जी के कमरे में जाता हूँ...पिछली शाम की सभा की बात चलती हैं——डॉक्टर साहब कहते हैं——भाई, कठमुल्लापन तो हमें कहीं का नहीं छोड़ेगा..समझौते से बात बनेगी..कुछ वे दबें कुछ हम दबें..यथासम्भव अपनी भाषा कुछ अधिक सहज, सरल और स्वाभाविक बनायें..और, मैं...मैं तो तैयार हूँ कि ग़ालिब और मीर को भी एम० ए० में पढ़ाया जाये। इसके लिये आवश्यक कि उनकी रचनायें नागरी-लिपि में उपलब्ध हों। यानी, इतना वे करें कि सारा उर्दू-साहित्य नागरी-लिपि में आ जाने दें.....

(बाद में बिल्कुल यही बात एक विशेष अवसर पर 'बन्ने-भाई', जनाब सज्जादज़हीर साहब की उपस्थिति में अलीसरदार जाफ़री साहब ने कही। यही नहीं, बाद में उन्होंने खुद ग़ालिब का दीवान नागरी-लिपि में पेश किया। जहमत यहाँ तक फ़रमाई कि 'आईने' जैसे शब्दों के 'ऐन' आदि के हिन्दी-रूप तक निश्चित किये...वे हमारी हार्दिक बधाई के पात्र हैं। इससे हमारा कुछ घटा नहीं है, कुछ नई ध्वनियाँ ही हमें मिली हैं..

वैसे भी आज तो हर समझदार आदमी ज़ोर देकर कह रहा है कि जहाँ की जा सके, वहाँ हिन्दी आसान की जाये...उर्दू से लिया जाने वाला सभी कुछ बेहिचक लिया जाये...उर्दू से ही क्यों, कहीं से भी लिया जाये और हिन्दी को आधुनिक, सक्षम और सबल बनाया ज़ाये...मात्र संस्कृत-शब्दों के उचित-अनुचित प्रयोग से हिन्दी नहीं चलती...।)

सोचता हूँ, कितना और कितना पहले से साफ़ देखते हैं—डॉक्टर साहब, देखना चाहते हैं तब. . .वरना, दुनिया की दुनिया जाने, हमें जो ठीक लगेगा, हम तो वह करेंगे ही।. .

५—मैं भारत सरकार की कृपा से मास्को पहुँच जाता हूँ. . .वर्ष भर के अन्दर-अन्दर डॉक्टर साहब भी वहाँ पहुँच जाते हैं, विदेशी-मामलों के महाविद्यापीठ में हिन्दी के प्रोफेसर बनकर. .मैं वहाँ पहिले से पार्ट टाइम-असिस्टेंट-प्रोफ़ेसर हूँ. . .फ्लैट भी उन्हें मेरे फ्लैट के समीप ही मिलता है कि बीच में यूनिवर्सिटी को जाने वाली सड़क. . .उस पास छठीं मंज़िल पर वे, तो इस पार तीसरी मंज़िल पर मैं. . .ग़रज यह कि १०-१२ घन्टे हर दिन साथ-साथ बीतने लगते हैं. . .दुनिया भर की सही-ग़लत बहसें होती हैं. .मैं अकसर ही सर पड़ जाता हूँ—डॉक्टर-साहब, हम हिन्दी वाले हीन-भावना से इस तरह ग्रस्त क्यों होते हैं ? हमारी भाव-भूमि 'नये' को स्वीकारने की स्थिति में प्रायः क्यों नहीं होती ? हिंदी एम० ए० में आठ सौ नम्बरों में से पाँच सौ नम्बर ऐसे साहित्य या ऐसे विषयों के लिये क्यों होते हैं, जो ज़िन्दगी में कहीं काम नहीं आते ? हिंदी को सार्वभौमिक पृष्ठभूमि पर ला खड़ा करने की ओर आप सब ध्यान क्यों नहीं देते ? 'हम' हिंन्दीवालों की इतनी बड़ी दुनिया में प्रायः दिलचस्पी क्यों नहीं होती ? हम चेहरा गर्दन के अन्दर गड़ाये जीने चले जाने का वादी क्यों होता है ?

डॉक्टर-साहब अपने तर्क देते हैं, मगर कमी को खुले दिल से कमी मानते और चिन्ता व्यक्त करते हैं।' आश्वासन देते हैं कि लौटने पर इस ओर भी ध्यान दूँगा।

मुझे लगता है कि 'स्ट्रांगहेडेड' या 'हॉटहेडेड' बुजुर्गी की तरह वे मुझे डॉट भी तो सकते हैं। पर, अजब है कि अपने एक साधारण विद्यार्थी की बातों पर भी ठंडे दिल से विचार करनेवाला खुला दिल उनके पास है ! . . बुज़ुर्ग तो ऐसे नहीं होते अकसर. .वरना, नये-पुराने, बूढ़े-जवान, इस पीढ़ी और उस पीढ़ी का सवाल ही इस तरह सामने क्यों आये !

एक दिन मेरी दोमरबोनृत्सा (मेड) नहीं आती. . .डॉक्टर साहब को इसकी जानकारी है. . .उनकी मेड मेरी मेड की सखी है. . . .दोपहर का समय है. . .तापमान शून्य से ३५ अंश नीचे तक उतर चुका है. . .ठंड ऐसी है कि नाम पूछ ले. . .

सहसा ही डॉक्टर साहब का पत्र मिलता है—" प्रिय गोपेश,

आज तुम विरहावस्था में हो, तो, आ जाओ, मैं ही तुम्हारा साथ दूं। तुम्हारा खाना यहाँ बनवा लिया है।

तुम्हारी प्रतीक्षा में आकुल,
रामकुमार वर्मा

(यहाँ पत्र की नकल ही दे सकता हूँ—ब्लॉक की बात अलग है. . .यों, मेरी कलम से तो हूबहू वैसे हस्ताक्षर बनने से रहे !)

परन्तु, मेरी पंचायती-ज़िन्दगी कि यह जाते हैं तो वह आते हैं, और वह जाते हैं तो यह आते हैं,. . . .नतीजा यह कि पेट में चूहे तो कूदते रहते हैं, पर डॉक्टर साहब की चिट दिमाग़ से उतर जाती है।. . . . . .

और, कोई पौने दो बजे सहसा ही घंटी बजती है। दरवाज़ा खुलता है तो रूस के खास 'पलतो' यानी ओवरकोट और फर की 'श्लापका' यानी टोपी में डॉक्टर साहब खुद सामने . . . .जूते बर्फ़ से वायदा करते से कि आज से सफ़ेद ही रहेंगे। हम. .डॉक्टर—साहब 'करमन'

यानी जेब से हाथ निकालकर दस्ताने उतारते हुए कहते हैं—बहुत परेशान करते हो तुम ! इन्तज़ार करते-करते थक गया। अरे, तो पलतो पहनो , अब तो चलो ।. .ज़रा चल कर देखो तो कि क्या-क्या बनवाया है तुम्हारे लिये ।....

और, मैं मिनट भर में तैयार होकर चल देता हूँ कि आगे-आगे डॉक्टर साहब और पीछे-पीछे मैं ।.

मेरे जिगर अन्सारी साहब* की रूसी. . .बेटी की साल गिरह है। डॉक्टर-साहब हुक्म देते हैं—ज़रा 'दयेत्स्कीमीर' (बाल-जगत-बच्चों के इस्तेमाल की चीज़ों की तिमंज़िला दुकान) चले जाओ.....बच्चों के नाप के एक सेट कपड़े लेते आओ ।. . .सुना हैं कि तुम्हें इन सब चीज़ों का बड़ा अभ्यास हो गया है इधर। देखें तो कैसे शानदार कपड़े लाते हो ।. . . .यह लो दो सौ रुबल ।. .

मैं कपड़े लाता हूँ और शाम होते-होते 'गुरू जी' के साथ लोमोनोवक्ती-प्रॉस्पेक्ल के लिए रवाना होता हूँ—डॉक्टर साहब के फ्लैटवाले 'दोम' (घर) के पीछे की ओर से. . .पीछे की सड़क अभी कच्ची है और बर्फ़ के गलने से बड़ा चहला है उधर. . .मैं, कदम-कदम तोल-तोल कर रखता हूँ. . .बिल्कुल लखनौआ अन्दाज से. . .मगर, डॉक्टर साहब हैं कि मेरी जवानी को चुनौती देते हुए कहीं ठिठकने का नाम नहीं लेते. . . .एक गति से बढ़ते चले जाते हैं कि पैर कीचड़ में जाये तो जाये, और जूते ख़राब हों तो हों, पर बुढ़ापे के अहाते में पहुँचकर उसे आँखें दिखलाती तबीयत की जवानी कहीं भी कॉमा लगाने का नाम काहे को ले ! . . . .मगर, सहसा ही कपड़े मेरे हाथ से छूट गिरते हैं और गंदे हो जाते हैं . . .डॉक्टर साहब के माथे पर बल पड़ जाते हैं, जैसे कि उनका मोह, वात्सल्य और सौन्दर्यबोध ही कहीं हाथ से छूटकर कीचड़ में जा गिरा हो ।.......

मैं सहम जाता हूँ......बाद में अन्सारी-म्याँ बात सम्भाल लेते हैं. . .और डॉक्टर साहब अपने नार्मल मूड में आ जाते हैं ।

तय होता है कि (रूस के प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान और प्राच्यविद्) चेलीशेव, महोदय हमें कार से तालस्ताय की मातृभूमि 'यास्नाया-पोलयाना' ले जायेंगे ।. . .जल्दी ही वह मुबारक दिन भी आता है और श्री चेलीशेव और डॉक्टर-साहब के साथ (उनके तुफ़ैल में) मेरे साथ अन्सारी भी कार में जा-बैठते हैं. . . .

हम रवाना होते हैं. . .रैन-बसेरा करते हैं समोवारों के लिए प्रसिद्ध नगर 'तुला' में . . . .'तुला' के बारे में कहावत है और रूसी-पुरुष अक्सर ही कहते हैं कि यह भी क्या कि तुला जाओ, तो भी अपना समोवार अपने साथ लिये जाओ. . .ख़ैर, कहावत चाहे जो भी हो, और कहा चाहे जो भी जाता हो. . .मगर डॉक्टर साहब तो मुझे और अन्सारी को साथ ले ही लेते है. . .

'तुला' के होटल में हमारी सारी व्यवस्था पहले से है. . .हम खाना खाकर रात में कोई सवा नौ बजे घूमने निकलते हैं. . . .थोड़ा आगे जाने के बाद एक जगह एक पार्क के पास कोई २०० वाट का बल्ब जलता दीखता है. . .हमें कुतूहल होता है. . . .हम पास जाते हैं. . .चेलीशेव—महोदय खास दिलचस्पी लेते और हमें वहाँ ले जाते हैं । वहाँ एक बड़े भारी फ्रेम में कई बड़े-बड़े चित्र हैं. . .चेलीशेव-साहब चित्रों के नीचे का अंकन पढ़-पढ़कर सुनते हैं—'नाम

*उर्दू के प्रसिद्ध समीक्षक और पत्रकार।

....; पिता का नाम..; मकान नं०... ; पेशा-----कल शाम सड़क चलती एक लड़की को छेड़ा !.......नाम.......; पिता का नाम........; मकान नम्बर ....; वोद्का में पानी मिलाकर बेचते पकड़े गये !.....नाम.........पिता का नाम........मकान नं०....लड़की काम नहीं करती-बिना मेहनत किये जीने की आदी है !.......

डॉ० साहब कहते हैं—ऐसे दूर की जाती है बुराइयाँ....ऐसे सुधारा जाता है समाज को.....पब्लिक-क्रिटिसिज्म भी आदमी को रिफॉर्म कर सकता है, अगर मोटिव नेक हो। ....और, फिर 'यासनाया-पोल्याना' से लौट आने पर भी डॉक्टर साहब उस पूरे दृश्य का जिक्र यों करते हैं जैसे कि अपने देश और समाज को सुधारने की पूरी ज़िम्मेदारी उन पर हो, और वे सचमुच उसे सुधार सकते हों !

मास्को की जनवरी का महीना है। मैं छुट्टी पर भारत जा रहा हूँ...मैं तो व्यस्त हूँ ही, डॉक्टर-साहब भी व्यस्त हैं कि अच्छा, आज 'सुम' (सेण्ट्रल—युनिवर्सालिनी-मैगेज़ीन)[1] चलेंगे; और, आज 'गुम' (जेनेरल-युनिवर्सल-मैगेज़ीन*) चलेंगे...अभी तो तुमने बहू रानी के लिए कोई अच्छी चीज़ नहीं ली...अभी तो 'प्रभात'** के लिए कोई अच्छी सी रूसी-कलम नहीं खरीदी। खैर...मैं खुद चलूंगा तुम्हारे साथ..तभी खरीदकर लाओगे तुम....

खैर, तैयारी पूरी होती है...जाने का दिन आता है...जहाज़ सुबह ४॥ बजे छूटता है ...मैं कोई दो बजे टैक्सी बुलाकर सामान रखवाता हूँ कि देखता हूँ—डॉक्टर साहब अपने ओवर-कोट में सिकुड़े-सिमटे सामने..जुकाम तो था ही, इस समय बढ़ गया-सा लगता है...कहते हैं—मैं आगे बैठा जाता हूँ।..मैं घबड़ाकर कहता हूँ—मगर, इतनी सर्दी में, ऐसी हालत में आप कष्ट क्यों करेंगे ?....जवाब मिलता है—बेटा जाये, और पिता उसे छोड़ने भी न जाये ?

मैं परेशान हो उठता हूँ...'तकल्लुफ़' शब्द ही दिमाग में नहीं आ पाता कि कहूँ बेकार तकल्लुफ़ न कीजिये...कहने की हिम्मत भी नहीं पड़ती...फिर भी बहुत आरज़ू-मिन्नत करता हूँ, तब कहीं जाकर वे मानते हैं....

मैं मोटर में बैठता हूँ तो कहते हैं—सुनो, मेरे भारत से मेरा प्रणाम कहना..और, 'कहना' तक पहुँचते-पहुँचते आवाज़ रुँध जाती है।.....फिर, मोटर स्टार्ट होती है तो डॉक्टर साहब हद्देनज़र तक कार को देखते रहते हैं, जैसे कि देश-गाँव को जानेवाले किस्मतवर को हसरत से देख रहे हों कि अच्छा तुम जा रहे हो, तो........–

मैं 'विद बैग ऐंड बैजेज' स्वदेश लौटकर प्रयाग में बेकारी के दिन काट रहा हूँ....१५ सितम्बर को डाक्टर साहब का जन्मदिवस पड़ता है...ओ० टी० यस० (आफ़िसर्स ट्रेनिंग स्कूल) में विशेष समारोह का आयोजन है। मुझे भी निमंत्रण मिलता है..मैं भी जाता हूँ ...डॉक्टर साहब का बड़ा अभिनन्दन किया जाता है...उनके काव्य, नाटक, आलोचना-साहित्य पर अधिकारी विद्वान बोलते हैं तो मुझे विदेश के ऐसे अवसर याद आ जाते हैं। दूसरे दिन एक कविता लिख जाती है—

---

*बड़ा स्टोर। **मेरे ज्येष्ठपुत्र

जी हाँ...
मैं प्रोफ़ेसर हूँ...प्रोफेसर...
क्या कहा—अध्यापक ?
प्राध्यापक होंगे आप !
मैं तो प्रोफ़ेसर हूँ—
क्या कहा आपने कि
विदेशों में 'प्रोफ़सर'
पद नहीं, उपाधि होती है;
सो, पद की मुझे चिन्ता नहीं,
और उपाधि के लिए

श्रम करने वालों को मैं मूर्ख समझता हूँ !
अभी उस दिन आपने
मुझसे बोलने को कहा एक
आयुवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, अनुभव वृद्ध
साहित्यकार के काव्य नाटक, आलोचना
और दूसरे साहित्य—सर्जनों पर....
मैं कहता हूँ कि
किया होगा काम उसने
बीस-बीस या पैंतीस वर्ष..
मैंने अपनी इतनी कम उम्र में भी क्या कुछ कम काम किया है !—
इसीलिए तो मैं बोला नहीं,
मैंने बला टाली—
आप मुझे मेरे साहित्य पर बोलवाते...
तब देखते—
मैं बोलता कि बोलता चला जाता...
और लोग तालियाँ बजाते कि बजाते चले जाते..
और फिर तालियाँ बजानेवालों में मुझको भी पाते—
सुना है कि आजकल
इस कला पर भी डॉक्ट्रेट मिलती है।

बाद में डॉक्टर साहब को कविता सुनाता हूँ तो गहरी मुस्कान होंठों पर दौड़ जाती है....
कहते हैं—कविता अच्छी है ।..

७—मैं छोटे पैमाने की राजनीति के बोदे और ओछे हथकड़ों का, शिकार होकर, दिल्ली से प्रयाग आ जाता हूँ, और रोटी के लिए देश के-प्रसिद्ध प्रकाशन-गृह 'किताब-महल' का एहसान मानने लगता हूँ....यानी, 'किताब-महल' में प्रकाशन-अधिकारी के पद पर नियुक्त हो जाता हूँ.....

कुछ समय बीतता है..मैं अपने कार्य के सिलसिले में डॉक्टर साहब के यहाँ पहुँचता हूँ...वे एकदम नाराज़ हो जाते हैं—देखो, तुम अपनी बात करो...तुम्हारी संस्था से मैं बहुत नाराज हूँ...मैं कोई किताब-विताब देने से रहा...उस सम्बन्ध में तो मुझसे तुम बात ही न करो।

मैं कहता हूँ—मगर, मैं तो आपके पुराने शिष्य और पुत्र के रूप में आया हूँ आपके पास—आपकी पुस्तक के प्रकाशन से मेरा गौरव—वर्द्धन होगा..मुझे यश मिलेगा।

डॉक्टर साहब का स्वर एकदम उतार पर आ जाता है—ठीक है, अगर ऐसा है तो यह पुस्तक ले जाओ...काव्यसंग्रह भी दे दूँगा...तुम्हारे इस तर्क का मेरे पास कोई उत्तर नहीं है।.....

और, मैं पुस्तकें ले आता हूँ...'किताब-महल' के डायरेक्टर महोदय और डॉक्टर साहब के बीच की खाई भी पट जाती है...सुनता हूँ कि दिल्ली का कोई प्रकाशक काव्य-संग्रह पर डॉक्टर साहब को कई हज़ार का ऐडवांस देने को तैयार था...मगर मैं...मैं बाजी जीत गया, क्योंकि मैं डॉक्टर साहब का पुराना शिष्य हूँ..बेटा हूँ.....

हाँ, तो, बादलों की सुरमई कोरों के उभार और दबाव की बात है...यह है शब्द-चित्रों का एक इन्द्रधनुष...ऐसे जाने कितने इन्द्रधनुष बन सकते हैं डॉक्टर रामकुमार वर्मा के जीवन की झाँकियों से..........बड़ा सावनी—सावनी-सा व्यक्तित्व है उ का !...

● ● ●

"हम लोगों का उद्देश्य है शक्ति प्राप्त करना, हम लोगों की नीति है समता और हम लोगों का सिद्धान्त है—अहिंसा।"

—'एलेक्शन' से

प्रतिभा के धनी डॉ० रामकुमार वर्मा

एक संस्मरण

डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र, संभागीय सतर्कता अधिकारी, बिलासपुर (म० प्र०)

यों तो डॉक्टर रामकुमार वर्मा जी से मेरा परिचय लगभग चालीस वर्ष ही पुराना है परन्तु जिस गति और जिस तीव्रता से वह घनिष्ठ होता गया उससे तो यही लगता है कि हम दोनों कदाचित जन्मान्तर में भी पर्याप्त रूप से परस्पर परिचित रहे हैं। यदि भाई का दर्जा मित्र से बड़ा है तो हम दोनों भाई-भाई ही समझे जायँ। हम दोनों एक दूसरे को भाई भाई कहा भी करते हैं। आयु में मैं कुछ बड़ा हूँ इसलिये वे मुझे अग्रज कहा करते हैं, बहुश्रुतता में मैं उन्हें बड़ा मानता हूँ इसलिये मेरे मन में उनके प्रति भी अग्रजवत् एक विशिष्ट स्नेह एवं श्रद्धा है। निश्चय ही हम दोनों एक दूसरे के अभ्युदयों के आकांक्षी रहते रहे हैं और दोनों के उत्कर्ष में दोनों को सहज सुखानुभूति ही होती रहती है।

आश्चर्य की बात है कि साहित्य ने नहीं किन्तु शासन ने हम दोनों का प्रथम साक्षात्कार कराया। रामगढ़ की रियासत में उस समय मैं नायब दीवान था और वर्मा जी के श्वसुर दीवान। उन्हीं के यहाँ प्रथम बार श्री वर्माजी से मेरी भेंट हुई। फिर तो हम दोनों का सारस्वत गोत्र इतना प्रबल होता गया कि उसने न केवल हम दोनों को सगोत्री बना छोड़ा किन्तु हम दोनों के दैहिक कुटुम्बियों को भी सम्मिलित कुटुम्ब का सा आनन्द दे दिया। जहाँ जहाँ मैं रहा वहाँ वहाँ वर्मा जी ने आतिथ्य के लिये और घर नहीं ताका और जब जब मैं प्रयाग गया तब तब श्री वर्मा जी के 'साकेत' ने ही मुझे अपना सदस्य बनाया। कहीं बाहर भी हम दोनों गये तो अपने बिस्तर पास पास ही रखे। पारस्परिक चर्चा ही से मैं लाभान्वित नहीं होता रहा किन्तु मेरी कृतियों के प्रकाशन का भी बहुत कुछ श्रेय श्री वर्मा जी को है। मेरे 'जीवन-संगीत' की भूमिका उन्होंने आग्रहपूर्वक लिखी।

श्री वर्मा जी ने बहुत ऊँची और बहुमुखी प्रतिभा पाई है। रचना के क्षेत्र में उन्होंने पद्य काव्य भी लिखे और गद्य काव्य भी, तथा इस ऊँचे दर्जे के कि अखिल भारतीय प्रतियोगिता में भी प्रथम स्थान प्राप्त किया। महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक काव्य (प्रगीत मुक्तक आदि) के अतिरिक्त नाटक लिखना प्रारंभ किया तो एकांकियों में शीर्षस्थान ही लेकर रहे। आलोचना के ग्रंथ लिखकर उन्होंने साहित्य का शास्त्र पक्ष भी उत्तम रूप से उभारा। कवि-सम्मेलनों में उन्होंने न केवल अपनी कान्त कविताओं की किन्तु अपने कोमल कण्ठ की भी धूम मचा दी। उनके भाषणों में जो आकर्षण रहा करता है वह श्रोतागणों से सुनिये। उन्होंने मुझ सरीखे
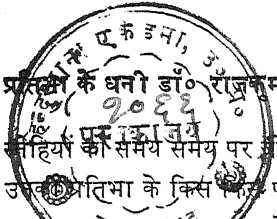
स्नेहियों को समय समय पर जो पत्र लिखे हैं उनका संग्रह भी कम महत्वपूर्ण साहित्य न होगा। उनकी प्रतिभा के किस किस पक्ष की मैं चर्चा करूं ? 'जहाँ जाइ मन तहंइ लोभाई'।

रचनाकार प्रायः आत्मकेन्द्रित रहा करता है। उसे अपनी कल्पनाओं की परिधि तोड़कर आगे बढ़ने का प्रायः अवकाश ही नहीं रहता। वह आगे बढ़ता भी है तो अपनी कल्पना के पोषण हेतु अपनी अनुभूतियाँ बढ़ाने ही के लिये। श्री डॉक्टर वर्मा में मैंने इसके विपरीत यह पाया कि वे न केवल मिलने जुलने वालों से किन्तु सामान्य आगन्तुकों से भी प्रेमपूर्वक मिलते और सबके लिये यथासाध्य पर्याप्त समय भी देते रहते हैं। अनेक प्रकार की सभाओं समितियों के लिये भी उनके पास समय है और विद्यार्थियों के लिये तो कुछ कहिये ही नहीं। छात्र जगत् में इसीलिये वे परम आदरणीय रहे हैं और आज दिन भी हैं।

श्री वर्मा जी बच्चों में बच्चे हैं, सयानों में सयाने हैं, हँसोड़ों में हँसोड़ हैं, गंभीरों में गंभीर हैं, अप-टु-डेट लोगों में सूटबूट धारी हैं और सन्तों में निश्छल रामभक्त हैं। वे कविता भी रचते रहे हैं तो स्नान से शुद्ध होकर। भारतीय परम्परा की धर्म-निष्ठा में यदि उनमें कभी कोई कमी हो गई तो ब्याज समेत उसकी पूर्ति उनकी अर्धांगिनी द्वारा कर दी गई है। वृहत् परिवार के ढाई प्राणी (श्री वर्मा जी, उनकी धर्मपत्नी और एकमात्र पुत्री) प्रयाग में बस कर जिस समञ्जसता के साथ सुखपूर्वक अपनी गृहस्थी चला रहे हैं वह अनेक गृहस्थों की मार्ग-दर्शिका हो सकती है।

श्री वर्मा जी का सम्मान स्वदेश में ही नहीं विदेश में भी पर्याप्त रूप से हुआ है। आप रूस द्वारा आमंत्रित होकर वहाँ अनेक वर्षों प्राध्यापकी कर चुके हैं। भारतवर्ष में तो आपने अखिल भारतीय स्तर की अनेक संस्थाओं का अध्यक्षत्व किया और अखिल भारतीय स्तर के अनेक प्रतियोगिता पुरस्कार जीते हैं। अतएव भारत-सरकार ने इन्हें "पद्मभूषण" की उपाधि देकर अपनी गुण ग्राहकता ही दिखाई है।

मुझे विश्वास है कि श्री वर्मा जी की शक्तियाँ अभी और भी कीर्तिदायिनी कृतियाँ देती रहेंगी जिनसे न केवल उनके नाम पर किन्तु उनकी जन्मभूमि (मध्यप्रदेश) और कर्मभूमि (उत्तर प्रदेश) के प्रान्तों पर तथा अखिल हिन्दी-साहित्य के भंडार पर भी चार चाँद लगते रहेंगे। ईश्वर उन्हें सुदीर्घ काल तक (भूयश्च शरदःशतात्) सब प्रकार स्वस्थ एवं समृद्ध रखे।

● ● ●

"शक्ति के संचित कोष का नाम पुरुष है।"

—'अंधकार' से

तुम सलामत रहो हजार बरस—

प्रो० सैय्यद एहतेशाम हुसैन, अध्यक्ष, उर्दू विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

●

धरती के सीने पर लाखों करोड़ों आदमी चलते-फिरते हैं जिन्हें हम देखते हैं; उनमें कुछ ऐसे होते हैं, जिनसे हम सम्पर्क में आते हैं लेकिन उनमें कुछ ही ऐसे होते हैं, जो पहली ही नज़र में इस प्रकार सामने आते हैं कि चाहे उनसे मिलना-जुलना अधिक न हो पर उनका प्रभाव किसी न किसी प्रकार बाकी रहता है। इस बात को यदि इस तरह कहें तो ज्यादा ठीक होगी कि बहुत से लोग ऐसे होते हैं, जिनसे सैकड़ों बार मिलने के बाद भी अपनेपन का एहसास नहीं होता और कुछ ऐसे होते हैं कि जिनसे दो-एक बार मिलकर भी भूला नहीं जा सकता। मेरे लिए रामकुमार जी इसी दूसरे प्रकार के व्यक्तियों में हैं। इस बात को तो कोई मनोविज्ञान का बड़ा आचार्य ही बता सकेगा कि ऐसा क्यों होता है पर साधारणतः हम यही कह सकते हैं कि व्यक्तियों के आन्तरिक चेतना और बोध में कोई ऐसी अंतर्निहित समानता होती है, जो एक को दूसरे से बाँध देती है। मैं जब १९३२ ई० में एक साधारण विद्यार्थी की हैसियत से इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी० ए० दाखिल हुआ, तो यहाँ न विद्यार्थियों की इतनी भीड़-भाड़ थी, न इतने अध्यापक थे जिनको पहचानने और याद रखने में कोई कठिनाई हो। थोड़े ही दिनों में ऐसा मालूम होने लगा कि मेरे जैसा अलग-थलग रहने वाला व्यक्ति भी बहुतों से परिचित है और कुछ को अपने बहुत निकट पाता है। डॉ० रामकुमार वर्मा का पहला चित्र मेरी यादों के ख़ज़ाने में वही है, जो १९३२ में बना था।

डॉ० एजाज़ हुसैन, जो उर्दू के अध्यक्ष पद से अवकाशप्राप्त कर चुके हैं, उस समय विश्व-विद्यालय में एक नये लेक्चरर थे और स्वभावतः उनका मिलना-जुलना अपनी आयु और श्रेणी के अध्यापकों से होता था। इस प्रकार रामकुमार जी और एजाज़ साहब हर थोड़ी देर के बाद मुझे एक दूसरे के पास हँसते-बोलते और हँसी-मज़ाक करते दिखाई देते थे। मैं केवल उर्दू विभाग का एक विद्यार्थी मात्र नहीं था वरन् एजाज़ साहब के साथ रहने के कारण कभी-कभी ऐसी जगहों पर जाने और ऐसी गोष्ठियों में बैठने का अवसर भी पा लेता था जिसके लिए दूसरे विद्यार्थी तरसते थे और यह मेरा सौभाग्य था कि मुझे उसी समय विश्वविद्यालय के कुछ ऐसे अध्यापकों से मिलने का अवसर मिल गया जिन्होंने बाद में अपने लिए केवल विश्वविद्यालय में ही नहीं वरन् भारतवर्ष में एक ऊँचा स्थान बना लिया। मेरी रुचि उस समय भी साहित्यिक अध्ययन की ओर अधिक थी, इसलिए स्वभावतः मुझे अपने विभाग के बाहर हिन्दी-अँग्रेज़ी और फ़ारसी-अरबी के विभागों में आने-जाने का ज्यादा शौक था। मैं आज सोचता हूँ, तो रामकुमार जी का वह चित्र जो आज से तीस वर्ष पूर्व बना था और जिसका

ज़िक्र मैंने ऊपर किया है, आज, जब वह विश्वविद्यालय से अलग होने वाले हैं, बड़ा होकर एक साहित्य-तपस्वी का रूप धारण कर चुका है जिसमें चिन्तन, निपुणता और गम्भीरता की लकीरें बहुत गहरी होकर उज्ज्वलित हो उठी हैं। वह उस समय भी कवि थे और आज भी हैं, मगर आज जीवन के अनुभवों ने उनके विचार में जो गहराई पैदा की है, उसमें उस हल्की-फुल्की रोमांचक शैली पर युग चेतना का एक गहरा रंग चढ़ा दिया है। वह उस समय भी अध्ययनशील लेख लिखते थे लेकिन आज वह हिन्दी के उन गिने-चुने आलोचकों और विद्वानों में हैं, जिनकी बात पत्थर की लकीर की तरह अटल है। उन्होंने नाटक लिखना उसी समय प्रारम्भ कर दिया था किन्तु आज वह उससे ऊँचे शिखर पर पहुँच कर 'एकांकीसम्राट्' बन चुके हैं। ३०-३५ वर्ष की घोर तपस्या ने उनके साहित्यिक जीवन के हर अंग में गहरे रंग भर दिये हैं जो इतिहास में बाकी रहेंगे।

साधारण दृष्टि से देखा जाय तो रामकुमार जी पहले वाले रामकुमार होने के बावजूद भी वह नहीं हैं। वह इतना बढ़े और फैले हैं कि उनके आरम्भिक कार्यों और आज के कार्यों में विराट अन्तर हो गया है, लेकिन मैं अपनी जानकारी के प्रकाश में उन्हें बदला हुआ नहीं पाता। मैं २५ वर्ष प्रयाग से बाहर रहा और जब १९६१ में यहाँ फिर आया तो मुझे वही रामकुमार जी मिले जैसा मैं उन्हें १९३७ में छोड़कर गया था। उनके चेहरे पर समय की गहरी परछाइयाँ थीं, बालों में सफ़ेदी आ गयी थी। आँखों में बढ़ती हुई आयु की चिन्ता थी मगर मुस्कुराहट भी थी, हृदय वही था, बात करने का ढंग वही था और और प्रेम वही था। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि बीच के पचीस वर्ष कुछ भी नहीं थे। व्यक्ति की आन्तरिक सुन्दरता बदल कर भी नहीं बदलती। रामकुमार जी महान लेखक हो गये थे मगर मेरे लिए उनका स्वभाव नहीं बदला था।

पचीस वर्ष का समय कुछ कम नहीं होता, उसके साथ यह भी याद रखना चाहिए कि मेरा सम्बन्ध उर्दू भाषा और साहित्य से था। रामकुमार जी हिन्दी के कवि और विशेषज्ञ थे, मैंने अपने रात-दिन लखनऊ में गुज़ारे थे, वह प्रयाग-राज में रहते थे। इन पचीस वर्षों में मुश्किल से ८-१० बार भेंट हुई होगी और मुझे नहीं मालूम कि कभी यह भेंट देर तक जारी रही हो किन्तु जब मैं १९६१ में प्रयाग विश्वविद्यालय में आया तो मुझे ऐसा जान पड़ा कि मैं उनसे इन दिनों में भी बहुत निकट रहा हूँ। इसका एक बड़ा कारण यह भी हो सकता है कि मैं उनसे दूर होकर भी अपनी रुचि और ज्ञान के अनुसार उनके एकांकी, साहित्यिक रचनाएँ और शोधलेख पढ़ता रहता था। आकाशवाणी पर उनके नाटक जब कभी भी प्रस्तुत होते, उन्हें अवश्य सुनता। लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के मित्रों से उनकी नयी रचनाओं का पता भी मिलता रहता था। इस लिए मैं यह समझता हूँ कि उनसे इतने दिन दूर रहने पर भी मैं दूर नहीं था। एक साहित्यकार और कवि अपने शारीरिक जीवन के अतिरिक्त अपना साहित्यिक जीवन भी रखता है और वास्तव में यही उसका मूल जीवन है, जिसके साधन से वह अपने सभी प्रेमियों और पाठकों से मिलता रहता है। मैं यह कह सकता हूँ कि जब मैं इलाहाबाद में विद्यार्थी था तो उनसे भौतिक रूप में निकट था और जब दूर हो गया तो मानसिक ढंग से उनके निकट पहुँचा। पहले उनके साहित्यिक-जीवन का बहुत कम बोध था और अब यह कह सकता हूँ कि मैं थोड़ा-बहुत उन्हें दोनों रूपों में जानता हूँ।

उनके व्यक्तित्व में भी एक दिल मोह लेने वाला बाँकपन है और उनकी रचनाओं में भी अनुपम सुन्दरता।

रामकुमार जी जीवन के सारे सुख भोगकर, साहित्यिक संसार में अपने लिए एक ऊँचा स्थान बनाकर अब इस प्रयाग विश्वविद्यालय से अलग हो रहे हैं। जिसकी सेवा उन्होंने ३६-३७ वर्ष तक की। एक अच्छे अध्यापक की तरह उन्होंने अपना सब कुछ इस विश्वविद्यालय को और उसके द्वारा सहस्रों विद्यार्थियों को दिया है। उन्हें न तो यह विश्वविद्यालय भूल सकता है और न हिन्दी जगत् जिसमें उनके ज्ञान का रक्त संचरित है। श्रद्धांजलि की यह पंक्तियाँ इस लिए नहीं लिखी गयीं कि उनके द्वारा कोई व्यक्ति उनके साहित्यिक महत्व को समझ सकेगा वरन् इसका उद्देश्य केवल इतना ही है कि मैं खुदा से यह दुआ करूँ कि जिस प्रकार इनका जीवन अब तक सफल रहा है वैसा ही आगे भी हो और मैं ग़ालिब की ज़बान से यह कह सकूँ—

तुम सलामत रहो हज़ार **बरस**,
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार !

● ● ●
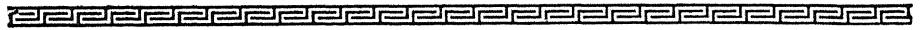
"प्रेम की भावना तो ऐसी होनी चाहिए कि उससे जीवन का अन्त जीवन के आदि से अच्छा बन जाय।"

—'अंधकार' से

× × ×

"जब व्यक्ति में शक्ति की क्षमता होती है तो बुरे मार्ग से अच्छे मार्ग पर और अच्छे मार्ग से बुरे मार्ग पर जाने में विलम्ब नहीं लगता।"

—'चारुमित्रा' से
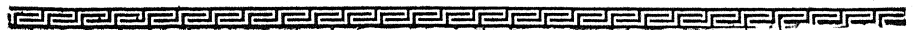
डॉ० रामकुमार वर्मा

(एक संस्मरण)

पद्मभूषण डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा, झाँसी (उ० प्र०)

●

सन् १९३१-१९३२ की बात होगी जब झांसी में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन हुआ। मैं उस समारोह की स्वागत समिति का अध्यक्ष था। जितने भी लोग सम्मेलन में आये उनसे मिलना मेरा कर्तव्य था। एक इनमें ऐसे थे जो बिना परिश्रम, अनायास ही, मिल गये। सुन्दर आकृति और ओठ पर रेखा सजग, आँखें पैनीं—सूक्ष्म दृष्टि की द्योतक। नाम मालूम हो गया—श्री रामकुमार वर्मा। उस घड़ी इनके हाथ में काग़ज़ देखकर मैंने पूछा,—'क्या लिये हैं आप ?'

वे बोले,—'नूरजहाँ पर कविता लिखी है।'

समय थोड़ा ही था, परन्तु मेरा कुतूहल जाग चुका था। अकेले में ले जाकर मैंने कविता सुनाने का आग्रह किया। उन्होंने सुनानी शुरू कर दी। मैं इतना प्रभावित हुआ कि ओर से छोर तक, बिना पूरी रचना सुने, चैन ही नहीं मिला। तब से उनके साथ सम्पर्क निरन्तर बढ़ता गया।

उनकी जितनी भी कवितायें हैं सब सारगर्भित, रसभरी, भावप्रेरक एवं नूतनतापूर्ण हैं। कौन जानता था कि ये बड़े ही सफल नाटककार भी निकलेंगे। इनके नाटकों का गद्य मार्मिक कवित्व से भरा हुआ है। मार्मिक ही नहीं, बहुत ही मर्मस्पर्शी भी। वे जिस किसी प्रसंग को लेते हैं बड़ी ही कुशलता के साथ, सांगोपांग, उसका विद्वत्तापूर्ण निर्वाह करते हैं।

म० प्र० के सागर जिले में इनका जन्म हुआ था जो झांसी से बहुत दूर नहीं है। हम दोनों बुंदेलखंडी हैं, जब कभी मिलते हैं बुंदेलखंडी बोली में बातचीत, गपशप, होती रहती है। जब कभी इलाहाबाद जाता हूँ इन्हीं के साथ ठहरता हूँ क्योंकि इन्हें मैं अपने छोटे भाई की तरह मानता हूँ और ये मुझे बड़े भाई की तरह।

जब सन् १९५६-५७ में इलाहाबाद गया स्टेशन पर मिल गये—मैंने पत्र द्वारा सूचना दे दी थी। ज़रा भी नहीं मालूम पड़ा कि मैं झांसी में हूँ या इलाहाबाद में !

इधर उधर की चर्चा के क्रम में उन्होंने मुझसे अनुरोध किया,—

'अपना आत्मचरित लिखिये, अवश्य लिखिये—मैंने आश्वासन दिया, परन्तु वे उतने से मानने वाले क्यों थे ?

बोले,—"यों नहीं मानने वाला मैं। यहीं से, आज से आरम्भ कर दीजिये। कागज़ मैं दिये देता हूँ।'

मैंने तुरन्त मान लिया, और उस दिन से आत्मकथा लिखनी शुरू कर दी। नाम रखा है उसका 'अपनी कहानी'। उन्होंने इस नाम की "मंजूरी" जो दे दी थी।

पिछली बार १९६३ के दिसम्बर में उनसे मिला था। ठहरा उन्हीं के पास था।

"अपनी कहानी' की बाबत उन्होंने प्रश्न किया,—'किस मंज़िल पर पहुँची है 'अपनी कहानी? '

मैंने बतलाया,—'१९६० की जुलाई तक ?

'क्यों ? क्यों ? बरसात के फुहारों में रुक गई क्या ?'

मैंने कारण बतलाये। वे सन्तुष्ट नहीं हुये और उन्होंने आग्रह किया कि पूरी करके शीघ्र प्रकाशित कर दी जावे।. मैंने वचन दिया।

ये (P.H. D.) डॉक्टर हैं और सरकार ने इन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि देकर हम सबको हर्ष और गौरव प्रदान किया है।

●●●

"परिस्थितियों और व्यक्तियों से अधिक-से-अधिक लाभ उठाकर अपने भावों का परिष्कार करना और जीवन में नीर-क्षीर-विवेक को स्थान देना महापुरुषों की विशेषता है।"

—'ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया' से

डॉ० रामकुमार वर्मा

प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त, अंग्रेजी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

●

डॉ० रामकुमार वर्मा से मेरी पहली भेंट १९३२-३३ के लगभग हुई थी। मैं रामेश्वरी गोयल से मिलने आर्य कन्या पाठशाला गया था। वे उस संस्था की प्रिंसिपल थीं। वर्मा जी भी कुछ देर बाद आए थे। वे पटलीदार धोती पहने थे, हाथ में छड़ी लिए थे, बाल कुछ लम्बे थे। वर्मा जी ने सस्वर कविता-पाठ भी किया था। उन दिनों उनका कवि-रूप ही अधिक प्रस्फुटित हुआ था। वे देखने में भी दुबले-पतले छायावादी कवि थे।

उसके बाद वर्माजी की बहुरूपी प्रतिभा का प्रौढ़ विकास हम देख चुके हैं। वे एकाँकीकार के रूप में बड़ी ख्याति अर्जित कर चुके हैं। उनके प्रारम्भिक नाटकों में साहित्यिक गुण अभिनय के गुण से अधिक था। आपने रंगमंच की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए नाटक रचना की है। इस प्रकार, हिन्दी रंगमंच के विकास में डॉ० वर्मा का बड़ा योगदान है।

इतिहासकार के रूप में डॉ० वर्मा की बड़ी उपलब्धि है। आपका लिखा 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' शुक्ल जी की परम्परा का विस्तार करता है। इस इतिहास के आदि-काल और भक्ति-काल बड़े अध्यवसाय और मनोयोग से लिखे गये हैं। यदि रीतिकाल और आधुनिक काल पर भी इस इतिहास में नये प्रकरण जुड़ जाते, तो यह ग्रन्थ अद्वितीय बन जाता।

वर्माजी आलोचक के रूप में भी हमारे सामने आते हैं। उनकी अमूल्य पुस्तक 'कबीर', में आपके अनेक गुण हम एक-साथ देख सकते हैं, अनवरत श्रम, गंभीर पाँडित्य, ठोस ज्ञान, अथक साधना। इन्हीं गुणों ने वर्माजी को उच्च कोटि के अध्यापक के रूप में प्रतिष्ठित किया है। भाषा पर अपूर्व अधिकार होने के कारण आपके कण्ठ से ज्ञान की सरिता अजस्र वेग से प्रवाहित होती है। दूर देशों तक आप भारत के गौरव की पताका लहरा चुके हैं।

वर्मा जी स्वभाव और वाणी के मीठे हैं। आपके सहयोगी, मित्र और शिष्य निरन्तर आपको घेरे रहते हैं। वर्मा जी विश्वविद्यालय की एक प्रिय और सम्मानित संस्था बन गए हैं। पिछले कुछ वर्षों में विश्वविद्यालय के अनेक प्रतिष्ठित आचार्यों ने अपने गौरव-पद से अवकाश ग्रहण किया है। वर्मा जी के जाने से शून्यता की यह भावना और भी अधिक गहरी हो जायगी।

* * *

डॉ० रामकुमार वर्मा

स्नेहादरपूर्ण संस्मरण

—डॉ० प्रभाकर माचवे सचिव, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

●

बचपन में सबसे पहले यह नाम 'कबीर का रहस्यवाद' पुस्तक पढ़ने के सिलसिले में याद आता है। 'कबीर पदावली' भी डॉ० रामकुमार वर्मा की बड़ी अच्छी लगी। उनकी रचनाएँ और स्व० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल का 'कबीर और गाँधी' जैसा 'सरस्वती' में छपा लेख ही मेरी प्रेरणा बना, कई वर्षों बाद, मेरे शोध-प्रबंध का विषय चुनने में—'हिंदी मराठी का निर्गुण संत काव्य'। और क्या संयोग की बात कि डॉ० रामकुमार वर्मा ही मेरे शोध-प्रबंध के परीक्षक बने—बाद में उन्हें मास्को जाना पड़ा, वर्ना वे ही मेरे मौखिक परीक्षक भी होते। तो ये कबीर वाला सूक्ष्म ताना-बाना है, जो डॉ० रामकुमार वर्मा जैसे हिन्दी के प्रसिद्ध 'हृदय-वादी' कवि, लोकप्रिय एकांकीकार और अध्ययनशील आलोचक के और हमारे बीच कहीं 'सुख-मन तार' की तरह अटका हुआ है।

फिर कविता में रुचि बढ़ी, हिन्दी कविता तब वीरेंद्रकुमार जैन और हम इन्दौर में सन् '३४-३५ में साथ-साथ पढ़ते थे। तब 'रूप-राशि' और 'हिमहास' और 'रश्मि' पढ़कर हिन्दी के तीन वर्मा—रामकुमार, भगवतीचरण और महादेवी के प्रति हमारा कुतूहल और बढ़ा। तीनों प्रयाग के, और भगवती बाबू ने तब 'विशाल भारत' में महादेवी की पुस्तक की सख्त आलोचना छाप दी। तब 'स्वप्न में वह पास आया' जैसे गीत मन को मोहते थे। अब भी मुझे याद है 'शुजा' नामक कविता की बड़ी गहरी छाप मेरे मन पर पड़ी थी। 'चित्ररेखा' के गीतों तक कवि रामकुमार की शैलीप्रौढ़ि ने आकर्षित किया। रामचंद्र श्रीवास्तव 'चंद्र' तब जया जी प्रताप के संपादक थे, मेरी कई कहानियाँ उन्होंने छापी थीं। वे डॉ० रामकुमार वर्मा के एकान्त प्रशंसक थे। यह दूसरी कड़ी थी।

बाद में उदयपुर साहित्य सम्मेलन में डा० वर्मा ने वह ललकार दी कि हमें प्रकाश न मास्को से मिलेगा, न लन्दन या वाशिंगटन से—चलो दिल्ली! और उसने हम सब को विचार करने के लिए बाध्य कर दिया। तब प्रगतिवाद की धूम थी, और प्रयाग के सब बड़े-छोटे दरख्त उस बाढ़ में बह रहे थे—रामकुमार अपनी बात के लिए बराबर असंग खड़े रहे। यह कम साहस की बात नहीं थी।

'रेशमी टाई' एकांकी-संग्रह और उसकी भूमिका ने मुझे सबसे पहले आकर्षित किया। मुझे याद आता है उसमें की नाट्य-वस्तु की चर्चा वाले चार्ट को मैंने सेठ गोविंददास के एकांकी

संग्रह की 'वीणा' में की हुई आलोचना में उद्धृत भी किया था। बाद में सन् '४८ में नागपुर में मैं आकाशवाणी में गया तो उससे पहले गर्मियों में जिस गवर्नमेंट होस्टल में रहता था, उसके पास के कमरे में वर्माजी से भेंट हो गई। 'सप्तरश्मि' की एक प्रति उन्होंने दी, मैंने उसकी 'रिव्यू' नागपुर रेडियो पर ब्राडकास्ट की। फिर तो '४९ में मेरा तबादला इलाहाबाद रेडियो की शुरूआत से हो गया। और सन् '५१ तक बार-बार डॉ॰ रामकुमार वर्मा से भेंट करने का, उनसे नाटक लिखवाने का और उनसे भारत-पाक कवि सम्मेलन के लिए और कई अवसरों पर मिलने का मौका मिला। 'आधी रात' नाटक को आल इंडिया रेडियो, इलाहाबाद पर छोटा करके मैंने ही प्रसारित किया था। ३० जनवरी '४९ को नागपुर की आकाशवाणी से गाँधीजी की पहली पुण्यतिथि पर विशेष कवि सम्मेलन में उनका 'वीर सेनानी नहीं है!' गीत मुझे अब भी याद है। मैं वहाँ संयोजन-सेवा में था। डॉ॰ लक्ष्मी नारायण लाल उनके प्रिय शिष्य की थीसिस की रूप-रेखा मैंने बनाई, वह डॉ॰ वर्मा ने पूरी तरह स्वीकृत की।

दिल्ली आने पर डॉ॰ रामकुमार वर्मा से कम भेंट होती। पर उनका "हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" एक बहुत उपयोगी और विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ मुझे लगा। मैंने कई दक्षिण भारतीय हिंदी विद्यार्थियों को वह पढ़ने के लिए अनुशंसित किया। डॉ॰ वर्मा से भेंट फिर वे मास्को जा रहे थे तब, और साहित्य अकादेमी के वार्षिक अधिवेशनों में हुई। प्रत्येक समय उनके सहृदय, मिलनसार, विनोदप्रचुर और सौम्य-शालीनतायुक्त व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ।

हाल में दो साल पहले इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने 'निराला' व्याख्यानमाला का प्रथम भाषण देने के लिए मुझे आमंत्रित करके जो गौरव दिया; उस समय डाक्टर साहब अध्यक्ष थे और उनकी स्नेहशील और निःपक्षपात दृष्टि का मुझे परिचय और निकट से मिला। दो दिन व्याख्यान होते रहे। 'निराला' और पंतजी के विश्व-विश्रुत सम्बन्धों (?) के बावजूद वे पंतजी को व्याख्यान में ले आए और पंतजी ने भी मेरे भाषणों की बड़ी प्रशंसा की। मैंने अपने भाषणों में विवाद्य विषयों को उठाया ही नहीं था। 'निराला' काव्य का पुनर्मूल्यांकन मेरा मुख्य विषय था। फिर उस दिन शोध छात्रों के सामने डॉ॰ कामिल बुल्के और मेरा जो मधुर परिचय उन्होंने दिया, और हम दोनों विद्यार्थियों के समक्ष बोले। फिर वे लड़कियों के हास्टल में किसी पार्टी में हमें ले गए, लड़कियों के कालेज में भी मुझे बोलना पड़ा—वह सब डॉ॰ रामकुमार वर्मा की ही ज़र्रा-नवाज़ी और मुझ जैसे नाचीज़ को इतनी महत्ता देने का साहित्यिक सरलता का प्रमाण था।

डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने इतिहास से कई नाटकीय स्थलों को उठाया है: 'कौमुदी महोत्सव' और शिवाजी के काल और रणबाँकुरे राजपूतों के रसीले राजस्थानी कथानकों से। उनके नाट्य की विशेषता यह है कि सामाजिक जीवन के छोटे-से-छोटे स्थलों से जैसे हलके-फुलके कथानक वे चुनते हैं, वैसे ही गंभीर ऐतिहासिक प्रसंग भी। आकाशवाणी के लखनऊ केंद्र के कभी डायरेक्टर श्री मलिक मुझे बताते थे कि "हिन्दी के अदीबों में वन-एक्ट प्ले के माहिर रामकुमार वर्मा हैं। उनका 'रेशमी टाई' सैकड़ों बार खेला गया।" डॉ॰ रामकुमार वर्मा के एकांकियों की भाषा रेडियो-प्रसारणों के लिए बहुत अनुकूल थी। न अधिक संस्कृत-जटिल, न ज्यादह फारसी-बोझिल।

डॉ० रामकुमार जी ने विदेश जाकर हिन्दी की ध्वजा को और ऊँचे उठाया। प्रथम 'राष्ट्रपति स्वर्गीय राजेन्द्रप्रसाद को मास्को से लिखा उनका पत्र, जो साहित्य अकादेमी में उन्होंने भिजवाया था, मुझे अब भी याद है, जिसमें मास्को के 'फारेन लैंग्वेजेज ट्रांसलेशन ब्युरो' की तरह भारत में एक केंद्रीय संस्थान स्थापित करने को उन्होंने लिखा था। रूस के छात्रों को आपने 'भारतीय संस्कृति' पर व्याख्यान दिये। पी० ई० एन० की बनारस में और अन्नामलाई परिषदों में उनके व्याख्यान अब भी याद हैं। १९५४ में अन्नामलाई में पी० ई० एन० परिषद में मेरी उनकी भेंट हो गई। वे 'राम-काव्य' पर बोले, मैं 'कहानी साहित्य' पर, हिन्दी के। वहाँ हमारे हँसोड़ मित्र वसंत पुराणिक भी थे––मेरे संग्रह में एक फोटो है, वहाँके लेखकों का, श्री रा० टिकेकर का खींचा हुआ।

डॉ० रामकुमार जी सेवा निवृत्त हो रहे हैं। पर वे साहित्यसेवा से कभी निवृत्त नहीं हो सकते। उन्हें और विस्तृत और विशद क्षेत्र बुला रहे हैं। अभी उन्हें बहुत कुछ लिखना है, करना है––"एण्ड आइ हैव प्रामिजेज़ टु कीप !" (फ्रास्ट)

* * *

"मेरी नीति तो आत्मविश्वास की है। आत्मविश्वास जीवन के सत्य को पहचानने का बीज मंत्र है। और जीवन का सत्य किसी एक व्यक्ति का धन नहीं है। वह मानव मात्र का अखंड वैभव है।"

—'विजय पर्व' से

× × ×

"पाप की जड़ पुण्य से काटूँगा। विष का विनाश अमृत से करूँगा। दुराचार को सदाचार से नष्ट करूँगा।"

—'अंधकार' से

डॉ० रामकुमार वर्मा : मेरी दृष्टि में

डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', रीडर, हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

●

डॉ० रामकुमार वर्मा को मैंने पहले-पहल सन् १९३४ में तब देखा था जब वे आगरा नागरी प्रचारिणी सभा के अन्तर्गत स्थापित विद्यार्थी वादविवाद सभा द्वारा आयोजित कवि-सम्मेलन में पधारे थे। विद्यार्थी वाद विवाद सभा हम छोटे-छोटे विद्यार्थियों का ऐसा संगठन था, जिसमें साहित्य की सृजनात्मक प्रवृत्तियों को उभारने का प्रयत्न किया जाता था। उसका एक मुखपत्र भी निकलता था, जो हस्तलिखित होने पर भी अच्छी-अच्छी पत्रिकाओं से होड़ लेता था। कारण, उसमें काव्य, कहानी, निबन्ध आदि के साथ सुन्दर-सुन्दर चित्रों और कार्टूनों का भी प्रकाशन होता था। यों अपने में यह उत्साही छुटभैयों की संस्था अपनी आश्रयदायिनी माता जैसी नागरी प्रचारिणी सभा की भी ईर्ष्या का विषय थी। कदाचित् इसीलिए इसके आयोजनों की विशालता भी सबका ध्यान खींचती थी।

जहाँ तक मुझे स्मरण है, डॉक्टर वर्मा उसके कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता करने आये थे। स्टेशन से उनके लाने का उत्तरदायित्व मेरा था। न जाने कैसे स्टेशन पर गाड़ी से उतरते ही दुबले-पतले (तब वर्माजी आजके जैसे भरे बदन के न थे) गौरवर्ण और अंग्रेजी वेश-भूषा से सुसज्जित युवक को मैंने 'क्या आप ही वर्मा जी हैं ?' कहकर सम्बोधित किया था और उत्तर में मुझे 'जी हाँ' सुनने को मिला था।

यह समय ऐसा था, जब कविजन भेंट नहीं लेते थे और काव्य-पाठ व्यवसाय का रूप नहीं ले पाया था। उस समय कवियों को हम ईश्वर के बाद दूसरे नम्बर पर समझते थे और कवि भी अपनी इस मर्यादा का पालन करते हुए व्यावहारिक दृष्टि से उच्चकोटि की शालीनता का प्रदर्शन करते थे। ऐसे समय में डॉक्टर वर्मा जैसे कवि का दर्शन पूर्वजन्म के पुण्यों का ही प्रताप था। नाम उनका पहले सुन चुका था। पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ भी पढ़ चुका था। प्रत्यक्ष देखकर प्रसन्नता का ठिकाना न था। फिर उनकी भव्य वेशभूषा और वाणी की मिठास ने तो और भी जादू का काम किया।

सायंकाल कवि सम्मेलन हुआ। उस कवि-सम्मेलन में वर्माजी ने अपनी जितनी कविताएं सुनाईं, सब गाकर सुनाईं। उनका काव्य-पाठ आकर्षक और मर्मस्पर्शी था। लगता था, जैसे कवि काव्य-पाठ करते समय तन्मय हो गया है और स्वरों के आरोह-अवरोह में श्रोता भी ऊभ-चूभ कर रहे हैं। मुझे अब तक उनकी नूरजहाँ-विषयक कविता की निम्न पंक्तियाँ यथावत् स्मरण हैं—

नूरजहाँ तेरा सिंहासन था कितना अभिमानी।
कितने हृदय प्रदेशों की थी एक साथ तू रानी।

जिस ढंग से इन पंक्तियों को वर्माजी ने तब पढ़ा था उस ढंग से मैं आज भी पढ़ सकता हूँ और एक बार वर्माजी को उन्हें पढ़कर सुना भी चुका हूँ। यह बात दूसरी है कि मेरा स्वर वैसा मधुर न हो पर जिस ढंग से वर्माजी ने यह कविता पढ़ी थी उसका सफल अनुकरण स्वयं वर्मा जी को अपने उन दिनों के काव्य-पाठ का सुखद स्मरण अवश्य दिला देता है। जब मैंने सन् ४५ में दूसरी बार उनके दर्शन प्रयाग में किये थे और ये पंक्तियाँ सुनाई थीं तब वे स्वयं अपने में खो-से गये थे।

सन् ३४ में मैं अबोध बालक था। कविता से रुचि थी और अच्छे कवियों की कविताएं पढ़ने में डूबा रहता था। सुधा, माधुरी, चाँद, हंस आदि मासिक और स्वराज्य, कर्मवीर, सैनिक जैसे साप्ताहिक पत्रों में सबसे पहले कविता ही पढ़ता था। यदि मैं यह कहूँ कि डॉक्टर रामकुमार वर्मा की कविताओं में रहस्यवादी तत्व मुझे विशेष रूप से अभिभूत किए था तो अत्युक्ति न होगी। आगे चलकर उनकी चित्ररेखा के 'गीत' जब क्रमशः प्रकाशित हुए तो मुझे उनकी अभिव्यंजना-प्रणाली ने और भी आकर्षित किया। 'यह तुम्हारा हास आया। इन फटे से बादलों में कौन-सा मधुमास आया।' —यह गीत तो न जाने कितनी बार मैं झूम-झूमकर पढ़ता और साथियों को सुनाता था। आगे चलकर जब अध्यापन कार्य में प्रवृत्त हुआ और रहस्यवाद छात्रों को समझाने का अवसर आया तब जिज्ञासामूलक रहस्यवाद को स्पष्ट करने में मुझे इस गीत से आशातीत सफलता मिली। छायावाद की विशेषताओं को हृदयंगम कराने में भी मैंने डॉक्टर वर्मा की कविताओं से सहायता ली। यों डॉक्टर वर्मा मेरे निकट पहले कवि हैं और बाद में और कुछ। आज लोग उन्हें हिंदी एकांकी का पुरस्कर्ता, कबीर साहित्य का मर्मज्ञ और रसज्ञ आलोचक—कई रूपों में प्रतिष्ठा देते हैं लेकिन मैं तो उन्हें अब भी कवि ही मानता हूँ। यदि वे अध्यापक न होते तो उनके अन्य रूपों के स्थान पर उनका कविरूप ही निखरकर सामने आता। हिन्दी साहित्य सम्मेलनों के अवसर पर अनेक कविसम्मेलनों में उनकी रचनाएँ सुनने और उनसे बातचीत करते समय मैंने यह अनुभव किया है कि वे कवि हैं, सोलह आने कवि—भले ही वे एकांकी लिखें, आलोचना लिखें या इतिहास लिखें।

× × × ×

डॉक्टर वर्मा की दूसरी विशेषता व्यक्ति-निर्माण की है। वे कवि के नाते अनेक रचनाओं को सृजन कर चुके हैं और अन्य साहित्यिक विधाओं में भी उनके अवदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता लेकिन उन्होंने नये व्यक्तियों को निर्मित कर साहित्य के प्रशस्त पथ का पथिक बनाने का भी स्तुत्य प्रयत्न किया है। जो उनसे पढ़े हैं या जिन्हें उनके अत्यन्त निकट रहकर उनसे प्रेरणा लेने का सुअवसर मिला है उन भाग्यशालियों की बात मैं नहीं कहता। वे तो न जाने क्या-क्या नहीं कर गये हैं। मैं तो अपनी बात लेता हूँ। आज गुजराती भाषा के जानने वालों में मुझ अकिंचन का नाम सबसे पहले लिया जाता है तो इसीलिए कि डाक्टर वर्मा जैसे कृती कलाकार ने मुझे इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया था।

बात सन् ४५ की है। मुझे उन दिनों इन्टरव्यू लेने का नशा था। उधार रुपये माँगकर प्रयाग गया था और महाप्राण निराला का अतिथि होकर उन्हीं के पास ठहरा था। श्रद्धेया

महादेवी जी से भी उन्हीं दिनों मिला था और उन्हीं दिनों डॉक्टर वर्मा जी से। गया तो था इन्टरव्यू लेने पर इन्टरव्यू के प्रसंग में बातचीत के समय उन्होंने मुझ से कहा कि गुजराती में कुछ काम करूँ। उनकी राय थी कि पहले एक ऐसी पुस्तक लिखी जाय जिससे हिन्दी वाले गुजराती सीख सकें। उनक सुझाव पर मैंने उस वर्ष की गर्मियों में "हिंदी-गुजराती शिक्षा" नामक एक पुस्तक लिखी। वर्माजी तब हिन्दी साहित्य सम्मेलन के परीक्षा मंत्री थे। उन्होंने यह भी कहा था कि पुस्तक गुजराती के पाठ्यक्रम में रख दी जायगी। दुर्भाग्य से उन्होंने आगामी वर्ष परीक्षा मन्त्री रहना अस्वीकार कर दिया। इसलिए पुस्तक तो पाठ्यक्रम में नहीं आई, पर उस पुस्तक से हज़ारों छात्र-छात्राओं ने गुजराती सीखी, यह देखकर मैं सदैव वर्माजी का स्मरण करता रहता हूँ।

गुजराती की इस पुस्तक के बाद 'गुजराती साहित्य का इतिहास' भी मैंने लिखा और मुंशी (क० मा० मुंशी) साहित्य का अनुवाद भी किया। साथ ही, साहित्य-अकादमी से भी दो गुजराती के महत्वपूर्ण ग्रंथों के अनुवाद छपे। यदि वर्माजी उस समय प्रेरणा न देते तो मेरे लिए गुजराती में यह कार्य कर सकना संभव न होता। वर्माजी के व्यक्तित्व की यह विशेषता मेरी दृष्टि में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्होंने असंख्य नए कवि और लेखकों का निर्माण किया होगा, यह मैं अपने उदाहरण से जानता हूँ।

× × × ×

वर्माजी के स्वभाव में कवि-सुलभ कोमलता और मृदुता है। वे बातचीत करने और लिखने में अपने इन गुणों को अनायास व्यक्त कर देते हैं। एक बार हाथरस में एक बड़ा भारी कवि-सम्मेलन था। वर्माजी उसकी अध्यक्षता करने पधारे थे और कविमित्रों ने मुझे उसका संयोजक बना दिया था। वर्मा जी कदाचित् ब्रज की कृष्णलीला भूमि के कुछ स्थलों की यात्रा करने चले गए थे और आने में विलम्ब हो गया था। सब कवि उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वे आए और आते ही कवियों के बीच घुल-मिलकर देर होने के लिए खेद प्रकाश करने लगे और साथ ही नए कवियों की प्रशंसा और उत्साहवर्द्धन भी। कविसम्मेलन में उन्होंने अपनी कविताएँ भी सुनाईं और दूसरों की भी ध्यान से सुनीं। बहुधा अध्यक्ष आयोजकों में से किसी एक से या पास बैठे कवि से बात करने में व्यस्त हो जाते हैं और कविता पढ़नेवाला कवि बेचारा उनके 'साधुवाद' से वंचित रह जाता है। वर्मा जी ने उस कवि-सम्मलन में हर छोटे-बड़े कवि की कविता की यथाप्रसंग सराहना की और अपने उत्तरदायित्व का खूबी के साथ निर्वाह किया।

विगत ग्रीष्मावकाश में भारतीय हिन्दी परिषद् का अधिवेशन हमारे कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित किया गया था। वर्मा जी उसके अध्यक्ष होकर आए थे। उनकी सेवा-सुश्रूषा के लिए एक छात्र नियुक्त था। उस छात्र ने वर्माजी के व्यवहार की भूरि-भूरि प्रशंसा की। छात्र ही क्या, स्वयं उन्होंने उत्सव की समाप्ति पर मेरी पीठ ठोकी और बिदा होते समय मुझे गले से लगाकर कहा--"मैं तुम्हें प्यार तो करता ही था, पर अब तुम मेरे और भी निकट आ गए हो।" जिस आत्मीयतापूर्ण स्वर में ये शब्द उन्होंने कहे थे, वह मैं कभी नहीं

भूल सकता। इस अधिवशन में उन्होंने सबके ऊपर अपने कवि-स्वभाव की अमिट छाप छोड़ी और सबने अनुभव किया कि वे सचमुच कलाकार हैं। अध्यापक होकर कलाकार बने रहना असंभव है। वर्माजी ने इस असंभव कार्य को संभव कर दिखाया है, यह उनके व्यक्तित्व की तीसरी आश्चर्यचकित कर देने वाली विशेषता है। उनकी यह विशेषता मुझ सर्वोपरि प्रतीत होती है।

आज जब वे विश्वविद्यालय के कार्य से अवकाश ग्रहण कर रहे हैं, मैं ईश्वर से उनके दीर्घ जीवन की कामना करते हुए प्रार्थना करता हूँ कि वे सुखी और स्वस्थ रहकर माँ भारती की सेवा में रत रहें।

● ● ●

"रानी का मुकुट उसके मस्तक का सौन्दर्य अवश्य बढ़ा देता है, किन्तु उसके नीचे उसके सुहाग की रेखा छिप जाती है।"

—'कृपाण की धार'

× × ×

"विवाह और प्रेम में अन्तर है। विवाह कहते हैं ऐसी हँसी को जिसमें रोना छिपा रहता है और प्रेम कहते हैं ऐसे रोने को जिसमें हँसी छिपी रहती है।"

—'अंधकार' से

मेरे हमदम : मेरे दोस्त

प्रो० मसीहुज़्ज़माँ, उर्दू विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

●

"राम कुमार वर्मा साहब इस साल मई में रिटायर हो रहे हैं !"

एक मित्र से यह सूचना पाकर मुझे धक्का-सा लगा ! उनका जाना मेरे लिए केवल एक हमदर्द, एक दोस्त, एक साथी, एक बड़े भाई का जाना नहीं, बल्कि यह एक दौर, एक युग का ख़ात्मा है ! इस अनुभव का कारण बयान करने के लिए मुझे बाइस-तेइस साल पीछे जाना होगा। बल्कि इससे भी पहले यह बात है कि उर्दू-विभाग के एजाज़ हुसैन, अर्थ-शास्त्र-विभाग के सरस्वतीप्रसाद, दर्शन-विभाग के मुफ़स्सलउद्दीन अहमद और हिंदी के रामकुमार-वर्मा एक साथ बैठने उठने लगे और धीरे-धीरे उनके विचारों और मिज़ाज की ऐसी पारस्परिक बातें यकजा हो गईं कि उनका एक अलग गुट बन गया जिसे उनमें से प्रत्येक के नामों का पहला अक्षर लेकर 'MARS'कहा जाने लगा। इस गुट का यूनीवर्सिटी की दलबन्दियों से कोई सम्बन्ध नहीं था और केवल हँसने बोलने और विचार-विमर्श के लिए ये लोग एक साथ बैठते-उठते थे। एज़ाज़ साहब का नज़दीकी शागिर्द होने की वजह से मैं अपने विद्यार्थी जीवन में भी कभी-कभी इन लोगों के साथ बैठ जाता था। मुफ़स्सल उद्दीन अहमद साहब को पूर्वी बंगाल में कोई जगह मिल गई, इस लिए वह 'MARS' का मुखड़ा तोड़कर चले गए। लेकिन इसका पहला अक्षर ही गायब हो गया। मुझ १९४४ में जब उर्दू विभाग में स्थायी नौकरी मिली, तो मैं भी श्रद्धा और आदर के साथ इन लोगों के साथ उठने-बैठने लगा। धीरे-धीरे हमारा सम्बन्ध गहरा होता गया और आपस में मित्रता का सम्बन्ध हो गया। हँसी-मजाक लतीफ़ों और मज़ाकों में मैं बराबर का शरीक हो गया। ज्यादा दिन नहीं बीते जब एक दिन भाई साहब प्रो० सरस्वतीप्रसाद (जिन्हें स्वर्गीय लिखते हुए दुःख होता है ! हम लोग उन्हें भाई साहब कहा करते थे।)ने यह कहा कि मुफ़स्सल उद्दीन अहमद के जाने के बाद हमारे MARS का मुखड़ा ही ग़ायब हो गया था। खुश-किस्मती से मसीहुज्जमाँ साहब में हमें वह फिर मिल गया है और इस तरह हमारा 'MARS' फिर मुकम्मल हो गया।

"MARS" की यह सुहबतें बड़ी परलुत्फ़ होती थीं। कभी रामकुमार साहब अपना कोई एकांकी सुनाते, कभी कविता, एजाज़ साहब ग़ज़ल बहुत कम सुनाते थे ! लेकिन चुटकुले छोड़ते रहते थे और हम सब इस से मग्न होते रहते थे ! जब हम लोग बैठे रहते तो ऐसा प्रतीत होता कि संसार के सारे दुःख समाप्त हो गये हैं। उतने समय के लिए सब अपनी उलझनें अलग रख देते थे और एक दूसरे की सफलताओं पर प्रसन्न होते ! रामकुमार साहब हम लोगों में सब से अधिक लीन रहते थे। कामों से उन्हें छुट्टी ही न मिलती थी, परन्तु जहाँ उन्हें

सूचना मिलती कि हम लोग एकत्र हो गये हैं, वे तुरन्त ही अपने कार्य को छोड़ कर हमारी वार्ता में सम्मिलित हो जाते रामकुमार साहब आयु में मुझसे अधिक बड़े थे, परन्तु अपने स्वभाव से उन्होंने मुझको कभी इसका अनुभव नहीं होने दिया कि हमारे बीच इतने वर्षों का, अनुभवों का, इतना अन्तर है। इस समय मुझे कितनी ही छोटी-छोटी बातें याद आ रही हैं, जिससे उनका स्नेह उनकी हमदर्दी और मानवता टपकती थी! यह सब अपने स्थान पर छोटी है परन्तु, यही छोटी-छोटी बातें धीरे-धीरे मिलकर मेरे हृदय में उनकी सजीव मूर्ति बिठा देती हैं। वह ऐसे मनमोहक एवं दिलकश हैं और प्रिय हैं जिसे एक मित्र का हृदय ही समझ सकता है।

१९५३ में मैंन विश्वविद्यालय ड्रामेटिक हाल में पहले पहल एक उर्दू ड्रामे का निर्देशन किया, उसकी सफलता से वह बहुत प्रसन्न हुए और कुछ ही समय पश्चात् जब वह ड्रामेटिक असोसियशन के अधीक्षक नियुक्त हुए, तो उन्होंने मुझे कार्यकारिणी समिति का सदस्य बनाया और इस ओर मेरी बढ़ती हुई रुचि देखकर उसकी बहुत-सी ज़िम्मदारियाँ मुझे सौंप दीं।

अपनी अत्यधिक व्यस्तता के कारण वह समय तो कम दे पाते थे, परन्तु अपने अनुभव और ज्ञान से उन्होंने अभिनय, निर्देशन, रंगमंच शिल्प आदि के ऐसे नुक्ते मुझे समझाए कि मैं कुछ न जानते हुए भी सब कुछ जान गया। वह एक बड़े नाटककार तो हैं ही, उन्हें हिन्दी एकांकी का सम्राट् कहा जाता है पर यह कम लोग जानते होंगे कि वह एक कुशल अभिनेता और निर्देशक भी हैं और जब विद्यार्थी जीवन में वह हालैंड हाल में रहते थे, तो उन्होंने कई नाटकों में सफलतापूर्वक अभिनय किया था। अपने नाटकों से उन्होंने हिन्दी 'रंगमंच' को एक सहारा दिया है। इनके कारण अभिनेताओं में एक नया उत्साह और नया वलव..ा उत्पन्न हुआ और विश्वविद्यालय रंगमंच ने प्रचलित ढंग के नाट्यों के साथ-साथ प्रयोग के भी बहुत से नमूने प्रस्तुत किये। इस मंच पर जितने नाटक आपके लिखे हुए अब तक अभिनीत हुए हैं, उसके आधे भी किसी एक नाटककार के खेले नहीं गये।

रूस से लौटने के पश्चात् रामकुमार साहब हिंदी-विभाग के अध्यक्ष हो गए। एक ओर विभाग के अनेक कार्यों की देख-रेख एवं नेतृत्व दूसरी देश भर में उनकी माँग, एक प्रसिद्ध साहित्यकार एक अनुभवी शिक्षक और एक निपुण विद्वान की हैसियत से इन सब ने इन्हें रात-दिन अपने चंगुल में कर लिया। अब उन्हें इसका समय ही नहीं था कि 'ग़ालिब' का यह शेर हसरत से पढ़ने के अतिरिक्त वह कुछ और कर सकें:—

दिल ढूँढता है फिर वही फुरसत के रात दिन,
बैठे रहें तसव्वुरे जानाँ किए हुए।

इसीलिए 'MARS' की वह सुहबतें भी कम हो गईं। पर जब भी हम एकत्र हो जाते, तो थोड़े समय के लिए वही समय पुनः लौट आता।

कुछ वर्ष पूर्व सरस्वतीप्रसाद साहब रिटायर हुए थे, फिर एक वर्ष पश्चात् एजाज़ साहब और अब रामकुमार साहब भी रिटायर हो रहे हैं! मंगलमय वातावरण में बनी हुई यह टोली, श्रद्धा, सहानुभूति और प्रेम के बन्धनों की यह टोली, जो MARS कहलाई जाने लगी थी, आज बिखर रही है, कुछ समय पूर्व अपने भाई साहब दिवंगत हो गए, वरन् उनसे कौन कहे कि क्या MARS के इस मुखड़े को आप लोगों ने इसीलिए गले लगाया था कि इतनी जल्द

एक-एक करके दूर हट जाएँ और अपनी जीवन यात्रा में उसे किसी 'मंगल' का सहारा न रहे ?

कुछ सज्जनों का नियम है कि जब वह किसी से मिलने-जुलने का सिलसिला शुरू करते हैं और राहो-रस्म बढ़ाते हैं तो उसके पसे-पुश्त उनका धर्म यह होता है कि उस व्यक्ति के 'राजकीय प्रभाव' से लाभ उठाएँ। ऐसे सज्जनों को रामकुमार साहब शीघ्र ही ताड़ लेते हैं। उनकी निगाहें बनावट और सच्चाई में अन्तर करना जानती हैं और इसी कारण उनके वर्ताव में ऐसे लोगों के साथ, जो फ़र्क होता है, उसकी वही लोग कभी-कभी शिकायत करते हैं और उनसे मिलना-जुलना छोड़ देते हैं। ऐसे सज्जनों की यह शिकायत ही रामकुमार जी की गहरी दृष्टि का परिचय देती है। ग़ौर से दखिए तो इन लोगों को शिकायत का यही अर्थ निकलता है कि रामकुमार जी को अपन खुलूस और श्रद्धा का यकीन दिलाकर, उन्होंने उन्हें जितना मूर्ख बनाना चाहा वह उतना नहीं बनें। वैसे तो इतने दिनों साथ उठते-बैठते, मैंने कितने सज्जनों को उनके चरणों की धूल छूते-छूते उन्नति के शिखर पर पहुँचते देखा है और कितनों के विषय में ऐसा होते सुना है, कितने ही विद्यार्थियों की सहायता के लिए उन्होंने नियम के पथ से हट कर हमदर्दी की राह अपनाई है। अब अगर इन में कुछ ऐसे भी हैं जो अपने सिर पर पगड़ी जमा लेने के पश्चात् अपने कृपालु की बुराई करने ही में अपनी बड़ाई समझते हैं, तो यह उनकी बात है। रामकुमार साहब तो "बरगद" में बसी छाया की भांति अपने आशीर्वाद दे चुके।

रामकुमार साहब की मनुष्यता का असली रूप देखना है, तो उनसे किसी लाभ की आशा से न मिलिए। जो सज्जन कोई ध्येय लेकर किसी के समीप जाता है, वह मुख से न भी कहे, तब भी उसके नेत्र में, उसके विचार में, उसके समझने और देखने में ढंग में उसी इच्छा और उसी ध्येय की परछाई रहेगी, इस प्रकार वह किसी को ठीक से नहीं देख सकता। उनकी खुशमिज़ाजी और दिलकशी का आनन्द लेना है, तो उनसे निर्लोभ मिलिए। छात्रावास के जीवन से लेकर रूस के बर्फ़ तक की बातें कीजिए, कविता से ड्रामे तक की चर्चा कीजिए। वह गंभीर होंगे और ठट्ठा मार कर हँसेंगे भी, उर्दू भी बोलेंगे और अंग्रेजी भी और तब आपको उनकी पुरबहार मानवता का अन्दाज़ा होगा।

इस विषय में एक मुख्य बात है। मैंने ऊपर उनके व्यक्तित्व के जिन पहलुओं की ओर संकेत किया है, उनका देखना सरल नहीं, वह खुली हुई पुस्तक के समान नहीं ! उनकी आन्तरिक नम्रता, नेक मिज़ाजी और मानवता पर बर्फ़ की सी तहें जमी हुई हैं, जो श्रद्धा और यगानगत की गर्मी से पिघलती हैं, इसलिए उनके निकट जाने वाला व्यक्ति अगर उनकी मुस्कान के पीछे उनका हृदय भी प्रथम संयोग में ही देखना चाहे, तो यह असम्भव है।

● ● ●

"पवित्र नारी का अपमान संसार में क्रान्ति का अग्रदूत है।"

—'स्वर्ण श्री' से

व्यक्तित्व की वर्चस्विता के सजल प्रतीक : डॉ० रामकुमार वर्मा

डॉ० भोलानाथ 'भ्रमर', एम० ए० डी० फ़िल, डी० लिट्०

●

लगभग अर्द्धशताब्दी पहले की बात है। एक राजकीय अधिकारी अपने सबसे छोटे पुत्र के साथ एक सर्व-सम्मानित स्थान पर बैठा हुआ दंगल देख रहा था। जोड़ पर जोड़ हो रहे थे। किसी की हार और किसी की जीत हो रही थी। दर्शक जीतनेवालों के साथ थे। जन-समूह मुक्त-कण्ठ, खुले-हृदय, और अनवरत करतल-ध्वनि से हर्षोन्माद प्रकट कर रहा था। सहसा एक तरुणप्राय पहलवान अखाड़े में दिखाई पड़ा और लोगों ने सुना कि वह अपनी आयु के उपस्थित दर्शकों को कुश्ती लड़ने की चुनौती दे रहा है। एक बार... दो बार..... तीन बार.... ! प्रतिष्ठा पर आ बीती ! पट्ठा ललकार रहा था। लोगों ने एक दूसरे का मुंह निहारना शुरू कर दिया। सिर झुके जा रहे थे। बाहें ठोकता हुआ वह अधिकारी के सामने आया। चुनौती और विजय भर स्वर में पूछा, "हुजूर, तो मैं... !" अधिकारी ने अपने पुत्र की ओर देखा जो भीतर ही भीतर कसमसा रहा था; चुनौती और मर्यादा की चक्कियों के बीच पिसा जा रहा था। आज्ञा प्राप्ति का संकेत मिला नहीं कि शेरवानी उतर गई, पिता का चरण-स्पर्श हुआ और कुर्ते तथा चूड़ीदार पायजामें में ही कुमार अखाड़े में उतर आया। लोग भौचक्के रह गये। उत्सुकता कण्ठ तक आ गई। कौतूहल विस्फारित नयनों से ढुलका पड़ रहा था। यह कैसी कुश्ती है ! कैसा जोड़ है ! लंगोट और पायजामे की कुश्ती ! नंगी छाती और बाँहों के साथ कुर्ते का जोड़ !! छोटी उमर की बड़ी उमर से स्पर्द्धा !!! सब साँस रोके देख रहे थे। हाथ मिले और दूसरे ही क्षण लोगों ने देखा बड़े आश्चर्य से कि कुमार अपने से बड़े प्रतिद्वन्द्वी की छाती पर सवार है ! करतल-ध्वनि से अखाड़े का वातावरण गूंज उठा। पुत्र पिता के चरण छू रहा था। पिता की छाती गर्व से फूल उठी थी। गर्व से मुखमंडल प्रदीप्त हो उठा था ! सबसे बड़ा आश्चर्य यह था कि न कुर्त्ता नुचा, न पायजामा फटा। शुभ्र वसन मलीन नहीं होने पाया !! तबसे आज तक कुमार कुमार ने, नवयुवक कुमार ने, युवक कुमार ने, कवि कुमार ने, अध्यापक कुमार ने, लेखक कुमार ने, आलोचक कुमार ने, विद्वान् कुमार ने , सहयोगी कुमार ने, अभ्यर्थी कुमार ने, प्रौढ़ कुमार ने न मालूम कितने दंगल लड़े, मगर उसकी पीठ में कभी भी धूल नहीं लगी।, उसने आकाश कभी भी नहीं ताका, उसका सिर कभी भी नहीं झुका, उसका शुभ्र वसन धूलि-धूसरित कभी भी नहीं हुआ !

डॉक्टर रामकुमार वर्मा अपने जीवन में न कभी किसी से हारे, न कभी किसी की ऐंठ सही, और न कभी किसी के द्वारा किया गया अपमान ही कभी बर्दाश्त किया। साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक काल में, सुनते हैं कि, कभी किसी निर्मल यश(?) एवं ज्योतित व्यक्तित्व

(?) वाले सम्पादक ने कुमार का अपमान कर दिया था। युवा काल था। खून गर्म था। शरीर कसरती था। दूसरे ही क्षण उनके उसी कार्यालय में कुमार ने उन्हें फ़र्श पर धर पटका! परिणाम अच्छा ही हुआ! आगे चलकर लेखक और सम्पादक दोनों मित्र हो गए। सत्य की स्वीकृति में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध प्रतियोगिता एवं प्रतिद्वंद्विता का युग था। वैसे मैं द्वन्द्व एवं स्पर्द्धा को बुरा नहीं समझता। प्रतियोगिता योग्यता-वृद्धि की प्रेरक होती है। यह स्थिति भी हिन्दी जगत में कभी थी किन्तु डॉ० रामकुमार वर्मा का जीवन जब श्रम के फल की प्राप्ति की सीमा पर पहुँचा तब हिन्दी-जगत् में चारों ओर लूट-खसोट का युग आ गया। किन्तु बादल सूर्य को बहुत देर तक नहीं छिपा पाते! डॉक्टर रामकुमार वर्मा अपराजेय रहे! प्रतिद्वन्द्वी उनकी छाया भी न छू सके! कीड़े जल-भुन कर खाक हो गए! संपाती के पंख जल गए! डॉक्टर साहब के मुखमंडल पर मन्द-मन्द मुसकान की छवि खेलती ही रही।

डॉक्टर रामकुमार वर्मा आस्थावान, प्रतिभावान, क्षमता-पूर्ण, परिश्रमशील, सूझबूझ वाले, वीर तथा महान आत्मा वाले व्यक्ति हैं। उनमें अदम्य आत्मविश्वास है। उन्हें अपने आराध्य पर विश्वास है, उपासना-आराधना-कर्मकांड पर विश्वास है, नीति और नियम पर विश्वास हैं, अपने धर्म और अपनी संस्कृति पर विश्वास है, और अपने पर विश्वास है। उन्हें प्राचीन संस्कृति पर विश्वास है पर नई सभ्यता से भी द्वेष नहीं है! उन्हें हिन्दी पर विश्वास है और अंगरेज़ी से भी वे घृणा नहीं करते! वे धोती कुर्ता, कमीज़, पायजामा, शेरवानी, पतलून, कोट, टाई सबका उपयोग करते हैं। उनमें सबका समुचित समन्वय है! वे ऊँचे हैं और इसीलिये उन्हें लघुता (घटियापन) पर विश्वास नहीं! वे वीर हैं और इसीलिये उन्हें छल-प्रपंच पर विश्वास नहीं। वे बड़े हैं, उनके पास सोचने के लिये बड़ी-बड़ी बातें तथा करने के लिये बड़े-बड़े कार्य हैं और इसीलिये छोटी-छोटी बातों पर उनका ध्यान अधिक देर तक टिक नहीं पाता। उन्हें नीति पर विश्वास है और इसीलिये अनीति उनके पास फटकने नहीं पाती। वे धीर हैं और इसीलिये कभी भी उतावली में कोई काम नहीं करते। उन्हें अपने पर विश्वास है और यही कारण है कि वे अपने शत्रु की भी सहायता करने से नहीं डरते। भंगी, चमार, पासी, कुंजड़े, कबाड़िए, ताड़ी, शराब बेचने वाले चाहे जितनी सहायता पाएँ किन्तु क्या अर्जुन, भीम, कृष्ण, राम का कुछ बिगाड़ सकते हैं? कदापि नहीं। जो हमारी सहायता पाकर भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता उससे और उसके साथियों से द्वेष कैसा! फ्री स्टाइल कुश्ती होती है। सबल-समर्थ प्रतिद्वन्द्वी गिरे हुए को उठा-उठाकर ज़मीन सुंघाता है। बिल्ली चूहे को खेला-खेला कर मारती है। पानी पिला-पिलाकर वही मारेगा, जिसमें पानी हो। रामकुमार जी अपने चुहिया-द्वेषियों के सामने शेर-जैसे लगते हैं। इसीलिये वीर क्रूर नहीं, उदार होता है; और डॉक्टर वर्मा ने कभी किसी से यह नहीं कहा कि तुम अमुक के प्रिय पात्र हो, अतएव उन्हीं के पास जाओ, मैं तुम्हारी कुछ भी सहायता नहीं करूँगा। लोग वादा करके भी केवल व्यक्तिविशेष के सम्पर्क से चिढ़कर विद्वदुचित एवं मानवोचित सहायता करने से हाथ खींच लेते हैं मगर डॉक्टर वर्मा धोखे खा-खाकर भी सहायता करते हैं। दूसरों के निर्देशन में शोध कार्य करने वाले भी डॉक्टर साहब से बहुमूल्य परामर्श पाते हैं जबकि देखा यह गया है कि जब तक यह आशा होती है कि मैं इसका शोध-निर्देशक रहूँगा तब तक तो लोग बड़ी सहायता और बड़े-बड़े वादे करते हैं और जहाँ निर्देशक कोई दूसरा नियुक्त हो गया वहीं,

पुनः पुनः याचित होने पर भी इस ढंग से और ऐसी चतुराई से पैंतरे बदलकर निकल जाते हैं कि कभी-कभी तो उस साफ़ झूठ, उस साफ़ भूल, उस साफ़ इन्कार, उस साफ़ टालूपन, उस साफ़ वादाखिलाफ़ी, उस साफ़ बेहयाई और इतनी निठुर बेवफाई पर और इतने बड़े नाम तथा इतनी बड़ी विद्वत्ता पर आश्चर्य होने लगता है ! क्या विद्वान इस हद तक नीचे उतर सकता है ! ! डॉक्टर साहब ने न मालूम कितनों को क्षमा प्रदान की है क्योंकि जो वीर हैं और समर्थ हैं वही क्षमा कर सकता है । प्रतिहिंसात्मकपूर्ण हृदय लेकर अपने बराबरवालों से तथा अपने से छोटों से बैर निकालने या बैर साधने वाला कायर, क्रूर और विपन्न होता है ।

डॉक्टर रामकुमार वर्मा जिस समाज में रहते हैं उसके प्रत्येक रूप, प्रत्येक पक्ष एवं प्रत्येक गतिविधि से भली भाँति परिचित हैं । वे सबके सब दाँवपेंच जानते हैं । वे महान् हैं, बड़े हैं, उदार हैं किन्तु उदासीन नहीं, असावधान नहीं, आँखें मूँदकर चलने वाले नहीं । उनकी महानता ऐसी नहीं है कि वे क्षुद्रता को पहचानने में अक्षम रहें । वे साधु होते हुए भी असाधुता भाँप लेते हैं । वे ऐसे प्रकाश हैं जिनसे अंधकार छिप नहीं सकता। जैसे 'अतिलघु रूप' धर कर पवन सुत लंका में घुसे थे वैसे ही अति सूक्ष्म होकर (सिकुड़ कर मानों अणिमा सम्पन्न होकर) उनकी दृष्टि अन्तर का गोपनीय रहस्य भी जान जाती है । ढोंग को ढोंग जानते हुए भी व्यवहार में बड़े ही भोलेपन से उसे सत्य समझने का अभिनय भारत का यह श्रेष्ठ नाटककार जिस ढंग से करता है उसे देख कर मन विचित्र प्रकार की अनुभूतियों से भर जाता है ! अस्तु, यही कारण है जिससे कोई उनको धोखा दे नहीं पाता, कुछ बिगाड़ नहीं पाता, उनकी उन्नति की राह का रोड़ा बन नहीं पाता । सतर्कता ही इस सम्राट् की वह गुप्तचरी है जो उन्हें सदैव सावधान किये रहती है । इसीलिए वे अपने वातावरण, युग और समाज में 'मिसफ़िट' कभी नहीं हुए । यह एक बड़ी बात है क्योंकि आज के दुनियादारों की बड़ी विचित्र मनोवृत्ति है । परस्पर एक दूसरे का गला काटने के लिये कटिबद्ध इस समाज में यदि किसी का गला कट गया तो कहा जायगा, 'बेचारा, बड़ा सीधा-सादा था. . . आज की दुनिया में रहने लायक नहीं था अथवा 'उसमें योग्यता ही नहीं थी. . . ही वॉज नॉट प्रॉपर्ली ईक्विप्ड फ़ॅर दिस'; और, यदि सबको पछाड़ता हुआ वह सबसे आगे निकल गया तो कहा जायगा 'बड़ा चालाक था. . स्वार्थी . . . कनिंग !' इस प्रकार जीवन-रस्सी पर चलने वाले कलाकार के एक ओर कुँआ है तो दूसरी ओर खाईं ! बड़ी ही सतर्कता एवं संतुलन के साथ चलना पड़ता है ! नहीं तो, फ़र्स्ट क्लास होकर भी बनवास भोगना पड़ता है और द्वितीय श्रेणी वाले तथा घाटे में उत्तीर्ण होने वाले राजतिलक का सपना देखते हैं । डाक्टर रामकुमार वर्मा में योग्यता भी है, अपना रास्ता साफ़ करने की क्षमता भी, और शतरंजी चालों को काट काट कर मात दे सकने का दम भी !

जीवन-रण का यह कुशल योद्धा पाकर खोना और खोकर पाना जानता है । एक रहस्य की बात है जिसे सम्भवतः बहुत कम लोग जानते हों और कह कोई भी न सकता हो ! मैं न जानता ही हूँ और न कह सकने का अधिकारी ही हूँ । लेकिन सोचता हूँ कि आखिर क्या बात है जो डॉक्टर रामकुमार वर्मा जैसा हिन्दी का असाधारण एवं मान्य विद्वान् १९६० में किसी विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग का अध्यक्ष बन सका—इतने दिनों बाद ! उनमें क्या कमी थी ! वे मास्को बुलाये जा सकते थे, वे उपशिक्षा-संचालक हो सकते थे, वे हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के साहित्य मंत्री हो सकते थे, किन्तु कहीं विभागीय अध्यक्षता उन्हें नहीं मिल सकती थी ! ! कहीं ऐसा तो नहीं है कि उन्होंने पा-पाकर भी छोड़ दिया हो—किसी उदात्त भावावेश

की अवस्था में न्यौछावर कर दिया हो ! दान दे दिया हो ! और, विभागीय अध्यक्षता का पद न पाकर भी उन्होंने क्या नहीं पाया जो कोई भी अध्यक्ष चाह या पा सकता है ! अखिल भारतीय कीर्ति है उनकी। असम एवं बंग भू से लेकर पंचनद एवं सौराष्ट्र तक तथा केसर की क्यारियों के देस से लेकर केरल एवं कन्या कुमारी तक उनकी यश-चन्द्रिका हँस रही हैं। आज वे राष्ट्रीय नहीं, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के व्यक्ति हैं। उनकी तुलना गाल्सवर्दी जैसों के साथ की जाती है। १९४९ तथा १९५० तक भी देश के विभिन्न भागों में ऐसे लोगों की कमी नहीं थी जो यह प्रश्न करते हुए पाये गए हैं—वहाँ के अध्यक्ष तो डॉ० रामकुमार वर्मा हैं न !' और नकारात्मक उत्तर पाने पर आश्चर्य के साथ पूछ बैठते थे—'ये डॉ० धीरेन्द्र वर्मा साहब कौन हैं !" आइए कुछ वर्ष पीछे चलें। गुजरात से आए हुए कुछ छात्रों और छात्राओं का दल प्रयाग आया है। संगम देखा, किला देखा, खुसरोबाग देखा, इंडियन प्रेस देखा, अल्फ्रेड पार्क देखा, और सबके सब विश्वविद्यालय देखते हुए परस्पर एक दूसरे से अनुरोध करते हुए 'साकेत' की ओर चले। एक सुसज्जित ड्राइंग रूम में वे बैठे हैं। 'राम' की प्रतीक्षा है। पर्दे के पीछे से एक सस्मित भव्य मूर्ति कमरे में आती है। संभ्रमपूर्वक यात्री दल अभ्यर्थनार्थ खड़ा हो जाता है। बारी-बारी से सब चरण-स्पर्श करते हैं। नेत्रों में एक जिज्ञासा, एक कौतूहल, एक प्रशंसा, देखते और देखते ही रहने का भाव है। यही है वह जिसके विषय में इतना सोचते थे, इतनी कल्पनाएं किया करते थे, जिसके लिये मन में इतना आदर था, इतनी श्रद्धा थी ! कितनी ! कि एक छात्रा अपनी झोली से एक तश्तरी निकालती है। रोली, अक्षत दूर्वादल, गंगाजल-सब कुछ है। मंत्र उच्चारण के साथ अभिषेक हो रहा है, रोली लगाई जा रही है, टीका हँस रहा है, . . . और यह क्या ! तश्तरी में कपूर जला। 'राम' की आरती हो रही है. . . 'आज मेरी गति तुम्हारी आरती बन जाय. . . ! आप विश्वास करें न करें, किन्तु यह एक सही घटना है। एक सही घटना और सुनिए। कबीर को समझने के लिये कभी डॉक्टर साहब ने कबीर पंथियों के प्रमुख केन्द्रों की यात्राएं भी की थीं। एक स्थान का दृश्य देखिए। गुरु गद्दी पर विराजमान है। डॉक्टर साहब नीचे बैठे हैं। बातचीत चलती है। कबीर के पदों का अर्थ करते-करते डाक्टर साहब उनके सिद्धान्तों की भी व्याख्या करने लगते हैं। व्याख्या समाप्त होती है कि गुरु गद्दी से नीचे उतरता है और डॉक्टर साहब के सम्मुख खड़ा होकर कहता है—आप 'साहेब' हैं, इस गद्दी के वास्तविक अधिकारी आप हैं, आप का स्थान वहाँ है !' आयकर अधिकारी आयकर-संबंधी बातों पर बात करने के लिये आपको बुलाता है और जब आप वहाँ पहुँचते हैं तो कुर्सी छोड़ कर खड़ा हो जाता है, 'आप वैसे भला इस छोटे आदमी के यहाँ क्यों आते ! आपके चरणों से इस स्थान को पवित्र करने के लिये मैंने यह एक बहाना निकाला है !' साम्यवादी रूस आपको सबसे अधिक वेतन देता है ! साधु-संन्यासी, राष्ट्रपिता बापू, देशरत्न राजेन्द्र, विश्ववन्द्य जवाहर, राष्ट्रपति राधाकृष्णन, लाल बहादुर शास्त्री, ख्रुश्चेव, 'निराला', सुमित्रानंदनपन्त, 'प्रसाद', महादेवी से लेकर उन असंख्य प्राणियों तक, जो केवल आपके चित्र दर्शन से ही सन्तुष्ट होने को विवश हैं, रामकुमार-वर्मा पहुँचे हुए हैं। सोचता हूँ कि विभागीय अध्यक्ष-पद से ये सुशोभित होते, या इनसे वह ! हानि किसकी हुई ! डॉक्टर वर्मा पद पा-पाकर खो देते हैं और उसे खो-खोकर प्राप्त करते हैं। वह उन पदों के उपभोक्ताओं में से किसी-किसी को ही मिलता हो तो मिलता हो !

डॉक्टर वर्मा की स्मरणशक्ति असाधारण है। अपनी कविताओं और नाटकों से उद्धरण

पर उद्धरण देते हुए, अन्य कवियों और लेखकों की कृतियों से सुन्दरतम उदाहरण प्रस्तुत करते हुए वे घंटों बातें कर सकते हैं। उनके पास बैठने से जी ऊबता नहीं;- उठकर चलते समय कुछ खो देने की खीझ होती है। वे बोलते हैं तो वातावरण मुखरित रहता है। और बातचीत यदि ज्योतिष पर आ जाय, तो अच्छे ज्योतिषी भी उनकी योग्यता के कायल हो जाते हैं। अध्ययन और कल्पनाशक्ति का सुन्दरतम समन्वय उनमें है। एक एक नाटक लिखने के लिये वे उससे संबंधित अनेक प्रकार की पुस्तकों का गंभीरतम अध्ययन करते हैं। तत्पश्चात् शांत वातावरण में कलाकृति का निर्माण होता है। व्यस्त जीवन में इसके लिये पर्याप्त समय नहीं मिल पाता और इस कारण हिन्दी संसार उनकी अनेक सुन्दर कृतियों से आज भी वंचित है। विद्यार्थियों और मित्रों का आग्रह पर आग्रह होता रहता है और वे कुछ कर नहीं पाते। पुस्तकें लिखवाने के लिये कभी-कभी उनके सामने हम जैसों को सत्याग्रह करना पड़ता है। ऐसा भी हुआ है कि वे कमरे में टहलते हुए बोलते गये हैं। आग्रही विद्यार्थी लिखता गया है। कोई आ गया। कलाकार शान्त हो गया। वह मिल कर घंटों 'बोर' करके चला गया और कलाकार फिर सक्रिय हो उठा। डॉक्टर साहब को अपने ऊपर इतना अधिक अधिकार है. . .इतना . . . इतना कि इस संयम-नियन्त्रण को देखकर आश्चर्य होता है! उनका एकमात्र पुत्र-शिशु जब निठुर-निर्मम हो उठा तो पिता ने उसके मुख के ऊपर से वस्त्र हटवा कर एकबार भर-आँखों उसे देखा और बस! क्या मजाल कि उसके बाद फिर कभी उसके बारे में बात की गई हो। ऐसा संयमी एवं नियन्त्रण परायण व्यक्ति ही जीवन में कुछ कर सकता है। प्रभु पर अडिग आस्था और विश्वास से व्यक्ति को शक्ति मिलती है। रोते वे हैं जो भगवान पर अविचल आस्था नहीं रखते। बेईमानी वे करते हैं जिन्हें प्रभु की न्याय परायणता पर विश्वास नहीं। कुंठित वे होते हैं जिन्हें प्रभु के प्रत्येक कार्य की मंगलात्मकता पर विश्वास नहीं। इसी लिये भक्त प्रवर डॉक्टर रामकुमार वर्मा कभी भी कुण्ठा-ग्रस्त नहीं हुए। उनका साहित्य भी कुण्ठा से उद्भूत नहीं हुआ और न यही हुआ कि उनकी ईमानदारी कुछ कम हो जाती और वे नवीनता के मोह में पड़कर प्रयाग स्थित बँगलों में रहकर भी कुण्ठा की पताका फहराते! डॉक्टर साहब ने कितना पढ़ा है, इसका कोई ठिकाना नहीं। आश्चर्य तो यह है कि वे अब भी पढ़ते ही जाते हैं। इसका कारण है। इनके पूज्यपाद पिता जी कर्मठ व्यक्ति थे। बच्चे के हित में पिता को थोड़ा कठोर बनना पड़ता है और वे बने। उनका विश्वास था कि जो कुछ करना है उसे डट कर करो, खूब करो, इतना करो कि उसमें कोई तुमसे आगे न जा सके क्योंकि उन्नति इसी से होती है। उनका पुत्र जब अध्यापन-क्षेत्र में आया तो उनकी दृष्टि में अधिकाधिक अध्ययन पुत्र का कर्त्तव्य हो गया। थोड़ी प्राप्ति से न उन्हें सन्तोष-तृप्ति मिल सकती थी, न उनके पुत्र को। यह संस्कार की बात है। बात उन दिनों की है जब उनको विश्वविद्यालय में नियुक्त हुए एकाध वर्ष ही बीते थे। पूज्यपाद पिता जी प्रयाग पधारे थे। पुत्र ने अपने पिता के सम्मान में जिस सहभोज का आयोजन किया उसमें विश्वविद्यालय के कई सम्मानित पदाधिकारी भी थे। भोज चल रहा था। रामकुमार जी अपने पिता के पास खड़े हुए भोजन परोसवा रहे थे। पिता ने उन्हें अपने पास से दूर हटा दिया—'बड़ों की बातचीत के बीच छोटों को उनके पास नहीं रहना चाहिये।' भोज के बाद बोले, 'देखो, तुम्हारा अध्ययन कितनी देर तक होता है'। उत्तर मिला कि चार-पाँच घंटे तक। 'इतना काफ़ी नहीं है। इसे और बढ़ाओ। मैंने वाइस चांसलर से पूछा था तुम्हारे बारे में। वे तुमसे असंतुष्ट तो नहीं हैं

मगर कुछ खास खुश भी नहीं।' बरसों बाद वास्तविकता सामने आई। वाइस चांसलर झा ने कहा था, 'वह असाधारण है! वह इतना अच्छा है कि उसे हम जो पद दिए हैं वह उसके-लिए बहुत छोटा है! उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। वह हमारे लिये पुरस्कार-स्वरूप है! वह हमारे लिए तमग़ा है।' लेकिन उन दिनों तो पिता जी ने वह सब कहकर पुत्र—आज्ञाकारी पुत्र-को और भी अधिक अध्ययन-रत कर दिया था। बुद्धि न होती तो यह अध्ययन संभवतः उतना लाभप्रद न होता किन्तु मेधा और अध्यवसाय के समुचित समन्वय ने रामकुमार जी को 'पद्म-भूषण' बना दिया। अध्यापन के क्षेत्र में इसका लाभ यह हुआ कि रामकुमार जी को अध्या-पन-कक्ष में न कभी कॉपी लिखकर ले जाने की आवश्यकता पड़ी और न कभी 'प्लीज़ टेक डाउन' कहने की। उनका अध्यापन 'नोट डिक्टेशन' से बहुत ऊपर उठकर वस्तुतः कला का रूप धारण कर उठा।

डॉक्टर साहब का बहुत बड़ा गुण है दूसरों को 'एकामोडेट' करना—निबाहते रहना। दूसरों की ज्यादतियों को सहते रहने की कोई हद होती हो तो हो लेकिन डॉक्टर साहब के यहाँ उसकी कोई भी सीमा नहीं। विद्यार्थी धोखे पर धोखा दिये जा रहा है, झूठ पर झूठ बोले जा रहा है, भृत्य अपराध पर अपराध किये जा रहा है, मगर आप हैं कि कुछ बोलते ही नहीं। एक बार कुछ छात्र पहुँचे। बड़ी गम्भीर बातें हो रही थीं मगर अध्येता-गण आ ही गये। छाया-वाद क्या है, यह जानने आए थे। मैं आश्चर्य चकित हो गया। कुछ ऐसा ही लगा मानों देव-गुरु से कोई यह पूछ रहा हो कि आठ दुने क्या होता है या धन्वंतरि से जुकाम की दवा माँगी जाय। जब वे चले गये तो बोले, 'तुम्हारा क्या खयाल है! परीक्षा के दि ों में क्या ये सचमुच मुझ से छायावाद समझने आए हैं! जी नहीं, ये परीक्षा के प्रश्न जानने आय थे!' एक बार एक उत्साही छात्र अपनी सम्पादित पत्रिका की अब तक की सारी प्रतियाँ भेंटस्वरूप ले आये। बस, सारा काम बन्द! सारी की सारी प्रतियाँ पढ़ी गईं! बताऊँ क्यों! यह मुझे बाद में मालूम हुआ। न पढ़ते तो छात्र-सम्पादक के दिल को बहुत दुःख होता! मिलने वाले आते हैं तो आते ही रहते हैं—जाने का नाम नहीं लेते! डॉक्टर साहब कवि भी हैं और नाटक कार भी। उनमें शील का अभाव नहीं। चाय ठंडी हो रही है....भोजन बरबाद हो रहा है ....जिनकी अवधि समाप्त हो गई—ऐसी भी उत्तर पुस्तकें अभी जाँचने को पड़ी हैं....दवा पीने का समय निकला जा रहा है....मगर डॉक्टर साहब किसी का दिल कैसे दुखाएँ! हर तरह के प्रतिबंध उन्होंने और उनके शुभचिन्तकों ने उन पर लगाये मगर सब बेकार! काल-बेल (घंटी) तोड़ देनी पड़ी। 'मिलने का समय' पट्टिका लगी जो अपनी निरुपयोगिता या उपेक्षा की कहानी रो-रोकर सिसक-सिसक कर कहती है! फिर भी आदमी आदमी ही है! उसका भी अपना कुछ है! डॉक्टर साहब जैसे थककर एक अँगड़ाई लेते हुए कहते हैं, "क्या अब यह जीवन ऐसे ही व्यर्थ के कामों में बरबाद होता रहेगा।' मगर यह बात कहते हैं भोला से, न कि किसी मिलने वाले से। और, फिर भी यदि वे किसी से न मिल पाये या कुछ देर में मिल पाये तो लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं! सच है, दुनिया कितनी स्वार्थपरायण है!

डॉक्टर साहब का प्रयत्न सदैव इस बात का रहता है कि उनके पास आने वाला व्यक्ति अपना प्राप्य अवश्य पा जाए। उससे वंचित न रह जाए। इस प्रयत्न में वे कभी-कभी क्या प्रायः अधिक ही दे जाते हैं। उनके इस प्रयास से आहत के घावों पर फाहा लग जाता है, कुण्ठित का अहम् तृप्त हो जाता है, और सब प्रकार के पीड़ितों की पीड़ा हर उठती है। एक बड़े प्रसिद्ध 'नये'

साहित्यकार ने, जब वे छात्र थे तब मुझसे कहा था कि डॉक्टर साहब दूसरों की झूठी प्रशंसा करते हैं और वह भी इसलिए कि इसके बदले में वे भी उनकी झूठी तारीफ़ करें। अहंकार-पूर्ण नासमझी की इस दुनिया में कोई दवा नहीं होती! अस्तु, डॉक्टर साहब कभी आहत-अधिकार महेन्द्र को विश्वविद्यालय में बुलाते हैं और कभी लक्ष्मीनारायण की अतिरंजित प्रशंसा करते हैं। शीलवान हैं, इसलिये किसी से 'नहीं' कर नहीं पाते और लोग समझते हैं कि वे वादा किए बैठे हैं। लोगों ने मरहम को शक्ति-बेल समझने की भूल की और जब भूल मालूम हुई तो खीझे। विद्यार्थियों के हित का उनको इतना ध्यान रहता है कि एकबार रात के दो-दो तीन-तीन बजे तक जगकर भी वे फ़ाइलों पर फ़ाइलें और डायरियों पर डारियाँ महज़ इसलिये उलटते रहे कि कोई ऐसी युक्ति या बात मिल जाय जिसके सहारे वे छात्रों की उपस्थिति-न्यूनता उपकुलपति से लड़कर भी माफ़ करवा सकें। गुरु का अधिकार है कि वह शिष्य से अपना काम करवाएँ और शिष्य का कर्त्तव्य है कि 'अनुचित-उचित विचार तजि करै गुरू कौ काम'। यह प्राप्य रामकुमार जी के भी गुरु का था और उन्होंने अपने गुरु को यह इतना दिया कि गुरु उनके बिना अपने को राम-विहीन दशरथ समझने लगा। जहाँ दो बर्तन हों वहाँ कभी टक्कर न हों, यह असम्भव है लेकिन आदर, श्रद्धा और साथ छोटी-मोटी टक्करों से ऊपर की बातें हैं। गुरु और शिष्य के बीच कभी भी टक्करें नहीं हुईं और कभी हुई भी हों तो सिवा भगवान के उन्हें जानता ही कौन है! शिष्य ने गुरु को उसका प्राप्य दिया और भरपूर दिया। शिष्यत्व कभी कलंकित नहीं होने पाया। ऐसा कभी नहीं हुआ कि हम लोगों को, जो विश्वविद्यालय की सीमा से दूर पड़े हैं, यह सुनना पड़ा हो, 'क्यों जी, यह तुम्हारे विश्वविद्यालय के हिंन्दी-विभाग में क्या हो रहा है?'

आज यह बात कहने की नहीं रह गई है कि डॉक्टर साहब का जीवन बहुमुखी रहा है। उच्चकोटि की नैतिकता लिये हुए डॉक्टर साहब जीवन के प्रांगण में—कर्मक्षेत्र में—उतरे। सार्वजनिक सम्पत्ति का एक पैसा भी उन्होंने कभी अपने ऊपर नहीं खर्च किया बल्कि कभी-कभी तो अपने पास से भी खर्च करना पड़ा। एक महत् और व्यापक लक्ष्य—हिन्दी और हिन्दी साहित्य की उज्ज्वलतम सेवा—उनके सामने रहा। कार्यकुशलता और आयोजन और संगठन इतना अच्छा रहा कि जहाँ और लोग दस खर्च कर बैठते हैं वहाँ वे चार-छः बचा ही लेते हैं। सम्मेलन के परीक्षा-मंत्री की हैसियत से जब ये बचा हुआ तीन-चार हज़ार रुपए का धन लेकर स्व० टंडन जी के सामने पहुँचे थे तो वे चकित हो गए थे क्योंकि अन्य मंत्रि-गण तो प्रायः धन की कमी की ही शिकायत करते रहे। डॉक्टर साहब को अपने हर कार्य में सफलता ही मिली और सचमुच उनका हर एक काम 'ए वन' रहा है। इसका कारण है उनकी परिष्कृत एवं कलात्मक रुचि, व्यापक जानकारी, तल्लीनता और सूझ-बूझ। उन्हें थर्ड क्लास की कोई भी चीज़ पसन्द नहीं आती। सुरुचि पूर्ण सिलाई नहीं हुई है तो फाड़ कर फिर से सिला जायगा। मुहर ठीक से नहीं उभरी है तो चपड़ा उधेड़ा ही जायगा। इसी प्रवृत्ति ने आगे बढ़कर उन्हें सौन्दर्य प्रेमी, सौन्दर्य-दृष्टा और सौन्दर्य-स्रष्टा बना दिया। सुन्दर भवन, सुन्दर कपड़ा, सुन्दर-व्यक्तित्व सुन्दर व्यक्ति, सुन्दर चरित्र, सुन्दर कविता, सुन्दर छपाई, सुन्दर काग़ज़, सुन्दर फूल, सुन्दर दृश्य,—सब कुछ सुन्दर उन्हें पसन्द है। सौन्दर्य उन्हें भाव-विभोर कर देता है। व्यापक जानकारी उन्हें चीज़ों को सही ढंग से समझने की समुचित पृष्ठभूमि देती है। तल्लीनता से एकाग्रता (भोजकत्व) प्राप्त होता है। यह तल्लीनता उनके ध्यान को दूसरी ओर बँटने से रोकती

है। उन्होंने एक बार मुझ से कहा था कि मैं जो इतना कुछ कर सका हूँ उसका एकमात्र कारण यह है कि मैं जब कोई एक काम करता हूँ तब मुझे दूसरी बात सूझती ही नहीं। उदाहरणार्थ जो दो-सौ उत्तर पुस्तकें आज रात जँच जानी हैं और जिनके अंक पत्र भी आज ही तैयार हो जाने हैं उनकी याद साढ़े नौ बजे रात तक भी नहीं आयेगी क्योंकि इस समय डॉक्टर साहब जो देख रहे हैं वह चलचित्र बहुत ही अच्छा है ! अस्तु, यह तल्लीनता वस्तु विशेष का मार्मिक पक्ष उद्घाटित करने में सहायक होती है। उनकी नित नई सूझ-बूझ कलात्मकता का समावेश करती है। परिणामस्वरूप डॉक्टर साहब जो-कुछ भी देते हैं उसका प्रस्तुतीकरण आश्चर्यजनक होता है। यह उनका स्वभाव है और इसीके परिणामस्वरूप उनके मुख से निकली हुई वाणी भी अपने आपमें एक कलाकृति होती है। वें जितना सुन्दर बोलते हैं अधिकांश जन-प्रयत्न करके भी उतना सुन्दर लिख तक नहीं पाते।

डॉक्टर साहब आज पूर्ण हैं, परिपक्व हैं, समर्थ हैं। उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली है। किसी विश्व विद्यालय के—संभवतः उस्मानिया—उपकुलपति ने बातचीत के सिलसिले में एक बार कहा था, 'आई हैव यट टु सी ए मैन मोर ईक्विप्ड दैन डॉ० वर्मा' (मुझ उससे अधिक योग्यता वाला व्यक्ति अभी तक नहीं मिला)। जीवन की व्यस्तता के कारण हिन्दी-जगत् इस प्रतिभावान विद्वान कलाकार की अनेक बहुमूल्य कृतियों से अभी वंचित है। डॉक्टर साहब आज दैनंदिन कार्यों की अनेक व्यर्थताओं से मुक्त हो रहे हैं। अब न कोई फ़ीस माफ़ करवाने के लिये घेरेगा, न उपस्थिति पूरी करवाने, अब न नियुक्ति के लिये सिफ़ारिशें परेशान करेंगी, न वीरेन्द्र बाबू हस्ताक्षर करवाने के लिये प्रपत्र-पुंज लिये छेंकेंगे। तुच्छ आवर्त दूर हुए। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के ऊपर से आज दूसरे महान अश्वत्थ की छाया हट रही है। अश्वत्थ चाहे जहाँ रहे, उसका आशीर्वाद विभाग का मंगल कवच बने। डॉक्टर साहब भीड़ से अलग हो रहे हैं। निर्विघ्न साधना का समय आ रहा है। आयु की वृद्धि से अक्षमता का निर्णय करने वाली जड़ व्यवस्था को चुनौती देने वाली उनकी शक्ति अभी जागरूक एवं सक्रिय है। हम तो यहीं प्रार्थना करते है, 'वे सलामत रहें हज़ार बरस, हर बरस के हों दिन पचास हज़ार' और उनके जीवन का प्रत्येक ऐसा दिन कलाकृतियों के सूर्य की उषा छिटकाता आए।

●●●

"जब स्त्री का आत्मसमर्पण पुरुष के मनोविज्ञान का अंग बनता है, तो जीवन मृत्यु के सामने घुटने टेक देता है।"

—'कादम्ब या विष' से

× × ×

"सौन्दर्य और विलास के आवरण में महत्त्वाकांक्षा उसी प्रकार पोसित होती है, जैसे मखमली म्यान में तलवार शयन करती है।"

—'कादम्ब या विष' से

याद की सम्मोहक घाटियों में

डॉ० केशनीप्रसाद चौरसिया, हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय

●

आज से चौदह साल पहले सन् '५२ की जुलाई-अगस्त की कोई सलोनी सुबह, ऊपर उमड़ती-घुमड़ती घटा जो 'गरजि गई ती फेरि गरजन लागी री।' चतुर्दिक दृष्टि-सीमा के अंतिम छोर तक फैली सुआपंखी हरियाली, क्यारियों में राशि-राशि फूले बेले की लहराती खुशबू की मद्धिम-मद्धिम आँच और 'साकेत' के बरामदे पर झर-झर झरते गुलमुहर के फूलों का झुरझुरा बिछौना। ऐसे अयाचित सत्कार से संतृप्त मैं डॉ० साहब की प्रतीक्षा कर ही रहा था कि लो, व्यक्तित्व के वर्चस्व से सारा वातावरण जगमगा उठा। तंजेबी धोती, जिसका एक छोर कंधे पर, सिलवटें पड़ा अद्धी का कुर्त्ता, पैरों में चप्पल, कुर्त्ते के अन्तराल से भुजबंध के पुखराज और नीलम की फूटती किरणें, अंगुलियों पर अँगूठियों की श्रृंखला, अधरोपान्त में विलसित दुग्धाकुलित निश्छल स्मिति की निर्झरिणी।

"बैठिये-बैठिये कहाँ से आये आप ?"

"जी, मैं आपका विद्यार्थी हूँ एम० ए० (प्री०) का छात्र, बुन्देलखण्ड...।"

"काय उतइ कितै के आव, तुम खाँ चीनों नईं, भौत दिन हो गव, अब तो बुन्देलखण्ड की माटी सूँघने खों हमाओं जिव तरस-तरस रय जात ए।"

ठेठ दूध की भाषा की मंजुल मिठास को सुनकर मैं अचकचा-सा गया फिर जैसे-तैसे साहस बटोरकर बोला—"जी मैं ठेठ बुन्देलखण्ड का तो नहीं, बुन्देलखण्ड परिषद् में अवश्य आता-जाता रहा हूँ, मैं बुन्देलखण्ड के सीमावर्ती बघेल-खण्ड का हूँ, चित्रकूट निवासी।" चित्र-कूट का नाम सुनते ही उनकी अगाध श्रद्धा-भक्ति की पयस्विनी प्रवाहित हो चली। भिचे-भिचे से प्रज्ञाचक्षु छलछला उठे, बोले :

"सब दिन चित्रकूट नीको लागत; बरषा ऋतु प्रवेस विसेष गिरि देखत मन अनुरागत। ...मन्दाकिनिहि मिलत झरना झरि-झरि भरि-भरि जल आछे। तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानौ राम भगति के पाछे।"

आध घंटे तक इधर-उधर की बातें होती रहीं, मैंने उनका अधिक समय लेना उचित न समझा, नमस्कार कर उठ खड़ा हुआ। ठीक आज से चौदह वर्ष पूर्व का मेरा डॉ० साहब से वह प्रथम परिचय कुछ-कुछ आतंकित-सा, संकोच-भरा, सम्मान-भरा बरबस आँखों के सामने तैर आता है। प्रथम परिचय में ही वे परम आत्मीय से लगे, स्नेहाकुल संरक्षक। आज के तथाकथित

आत्मकेंद्रित ख्यातिप्राप्त लोगों के बीच मैंने गिने-चुनों में ही इतनी शालीनता, इतनी विनम्रता एवं भावाकुल हृदय की इतनी उन्मुक्तता प्रथम बार के क्षीण परिचय में पाई।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ० रामकुमार वर्मा एक ही साथ कुशल अध्यापक, कवि, एकांकीकार, आलोचक और निबंधकार हैं। न तो मैं यहाँ उनकी साहित्यिक उपलब्धियों की चर्चा करना चाहूँगा और न उनकी उस वशीकरणी अध्यापन-शैली का जिक्र जबकि हमलोग लयवान मौखिक परम्परा में उड़ते उनके व्याख्यानों को साँस रोके मंत्रमुग्ध-से सुनते रहते थे। सौभाग्यशाली हैं वे जो आज भी सुनते हैं। यों, डॉ० वर्मा एक सिद्धहस्त कलाकार हैं लेकिन मेरी समझ में उनका 'मानव' उनके कलाकार को भी पीछे छोड़ देता है। मानव रामकुमार के गुरु-गम्भीर मधुर व्यक्तित्व को जैसे-जैसे मैं पढ़ता गया हूँ वैसे-वैसे इसके नये-नये अर्थ मुझे चमत्कृत करते रहे हैं। लोग कहते हैं कि वे एक सफल आलोचक हैं। मसि-कागद से असंपृक्त अपढ़ कबीर को उन्होंने ही सबसे पहले 'रहस्यवादी' बताया था, आलोचनात्मक इतिहास लिखकर शोध परम्परा को आगे बढ़ाया था, लेकिन पता नहीं क्यों मेरा मन उन्हें आलोचक स्वीकार करने में आनाकानी करता है। सौभाग्य से मुझे उन्हें निकट से देखने का अवसर मिला है—उन्मुक्त ठहाकों के निश्छल क्षणों में और घनघोर मानस मंथन की क्षुब्धकारी घड़ियों में भी; किन्तु मैंने कभी उन्हें डगमगाते नहीं पाया, व्याजस्तुति से किसी के व्यक्तित्व का श्रुतिसुखद विश्लेषण करते नहीं पाया। सदैव वे एकरस स्थितप्रज्ञ अनाहत, विशाल वटवृक्ष की भाँति स्थिर-गंभीर बने रहे हैं।

सन् १९५४। अगहन की कच्ची धूप पोर्टिको पर छुछला रही है। डॉ० साहब आज बड़े प्रसन्न हैं, वे मेरे साथ सपरिवार चित्रकूट जा रहे हैं, वंशी जल्दी-जल्दी गाड़ी पर यात्रा का आवश्यक सामान रख रहा है। डॉक्टर साहब रह-रह कर गुनगुना उठते हैं: 'चित्रकूट में रमि रहे......अरे वंशी! कमरे से उस बन्दूक को तो लाना।'

माताजी खीझ उठती हैं, 'क्याऽऽतीर्थ में शिकार खेलेंगे आप!' और फिर वह खाली, जंग-लगी बन्दूक!! मैं भी विस्मित-सा उनके इस असामयिक आग्रह को देख रहा हूँ। वंशी चुपके से वह भारी-भरकम बन्दूक उठा लाता है।

'ग्यारह बज गये! अब जल्दी कीजिए डाक्टर साहब!' गाड़ी चल पड़ती है। ड्राइव करते हुए वे बड़े याराना लहजे में मुझसे बातें करते जाते हैं, मैं सहज संकोच से भर उठता हूँ।

'अब कितनी दूर है, हम लोग शाम तक पहुँच जायँगे न?' वे पूछते हैं किन्तु रास्ता ऊबड़-खाबड़ होने से शाम रास्ते में ही हो जाती है, अन्धेरा गहराने लगता है, मैं मील के पत्थर देखता हूँ—कर्वी २० मील। कि सहसा इंजन गरमा उठता है, थोड़ा विराम ले लें। लेकिन यह क्या, गाड़ी की तरफ सात-आठ फरसे वाले लठैत लपके चले आ रहे हैं, सूरत-शक्ल से तो भलेमानुस नहीं लगते। आज खैर नहीं। एक दहाड़—'वंशी! जरा बन्दूक तो निकालना और कारतूस भी।'

वंशी बन्दूक लाकर डॉ० साहब को दे देता है, वे हवाई फायर करने की मुद्रा में खड़े हो जाते हैं और वे भलेमानुस खिसक जाते हैं। कलम के धनी डॉ० वर्मा सपरिवार आज भी अवकाश के क्षणों में कारतूस चलाने का अभ्यास किया करते हैं: कलम! कारतूस!!

"चित्रकूट के घाट पर भई सन्तन की भीर', डॉ० साहब रामघाट पर स्नान करके

धोती पहन रहे हैं, मैं घाट की शोभा निरखने में तन्मय हूँ कि एक अवसरवादी बन्दर प्रसाद का दोना उठा कर भाग जाता है। डॉ० साहब के मुख से सूक्ति छलक पड़ती है : 'भाई देखो, सारी दुनिया ही बन्दर है जरा आँख चूकी नहीं कि हाथ का दोना गायब।'

पुरानी लंका (चित्रकूट का एक प्रतिष्ठित मठ) का सरल सात्विक आडम्बरशून्य वातावरण। मातुश्री जानकी जी की स्मितिमयी सजीव मुद्रा। डॉ० साहब साष्टांग प्रणाम करते हैं और पन्द्रह-बीस मिनट तक अनिमेषनयन मूर्ति को ताकते रह जाते हैं : 'देखा केशनी, कितनी दिव्य मूर्ति है, मेरी ममतामयी माँ-जैसी। डॉ० साहब के दृष्टि संकेत से पुनः मैं मातुश्री की ओर देखता हूँ : शान्त-स्निग्ध-विद्युज्ज्योति। माँ ने तो जैसे अपने सपूत पर ममता का कलश उड़ेल दिया है, उन्होंने कई बार मात्र मातुश्री के दर्शन के लिए चित्रकूट की यात्रा की। मध्य-प्रदेश सरकार से जानकी संस्कृत विद्यालय को ढाई हजार का वार्षिक अनुदान दिलाया। अभी आठ-दस दिन पहले वे मुझसे कह रहे थे : 'भाई, तुम मुझे चित्रकूट कब ले चलोगे ?'

नौका-विहार का वह सुखद दृश्य, रामघाट से जानकीकुण्ड की ओर प्रस्थान करते समय के वे विरल क्षण! कुल्हड़ वाली चाय, बड़ी मीठी, जिससे ऊबकर बहन राजलक्ष्मी ने कहा था : 'चित्रकूट की चाय में शक्कर का सत्कार !' डॉ० साहब का वह सुमधुर 'गंगा लहरी' का स्तोत्र पाठ और पयस्विनी की लहरों में बिखरती फेनोज्ज्वल हँसी। अतीत का एक स्वर्णिम पृष्ठ, वर्तमान की सिहरन, अनागत की एक प्रेरणा।

सन् १९६१ : मई की उमसती साँझ। कई महीने बाद 'साकेत' पहुँचता हूँ, सोचता हूँ डॉ० साहब कुछ गंभीर होंगे ? अरे; वे तो कहीं जाने को तैयार हैं। देखा और बोले-- 'क्या आप सिविल लाइन तक मेरा साथ देने की कृपा करेंगे ?' मैं उनके इस महीन व्यंग्य से लज्जित चुपचाप सीट पर बैठ जाता हूँ। भार्गव इंजीनियरिंग हाउस में गाड़ी बैटरी चार्ज के लिए दे दी जाती है; भार्गव साहब आकर अमित श्रद्धा से उन्हें अपने केबिन में ले जाते हैं, मैं रेडियो के नए-नए मॉडल देखने लगता हूँ। सेल्समैन श्रीवास्तव (जो कभी मेरा छात्र था) मुझे नए साल के दो बड़े दर्शनीय कैलेण्डर लाकर श्रद्धा से अर्पित करता है। डॉ० साहब दिल्ली जाने के लिए सीट रिजर्व कराने स्टेशन पहुँचते हैं, खिड़की पर बड़ी भीड़ है; वे अन्दर चले जाते हैं। क्लर्क बड़ा मसखरा है; बातूनी भी। वह डॉ० साहब का काम करके उनसे साहित्यिक चर्चा करने लग जाता है; दोनों कैलेण्डर उसके बड़े रजिस्टर के नीचे छिप जाते हैं : आध घंटा बीत जाता है। डॉ० साहब घड़ी की ओर देखकर उठ खड़े होते हैं; मैं खाली हाथ उनके पीछे-पीछे चल दता हूँ कि वे धीरे से मेरे कान में कहते हैं : 'वे कैलेण्डर ?' बाबू का सारा वाङ्मय और अभिनय-आयोजन विफल हो जाता है।

मासान्त। 'अभी भारती-भंडार से रायल्टी नहीं आयी। भाई ! तुम तो उधर ही रहते हो; गुंठेजी से हिसाब और मेरी किताबें लेते आना।' हिसाब तैयार हो रहा था सिर्फ़ किताबें लेकर वापस लौटा। पैकेट खोलकर उन्होंने अपने नाटकों की एक-एक प्रति मुझे दी। खुले पैकेट को मेरी ओर बढ़ाते हुए बोले--'इसे स्पेसीमेन कापी वाले खाने में रख आओ। पैकेट को ढीलाढाला बाँधकर जब मैं जाने लगा तो बोले, 'रुको' और बिना कुछ कहे इतनी सुन्दरता और मजबूती से पैकेट बाँधा कि मैं दंग रह गया। सृजनशील व्यक्तित्व = सतर्कता + सुघड़ता।

जून ६१ : संदीपित साँझ। चारों ओर किताबें, किताबें, किताबें; परीक्षा-पुस्तकों की पंक्तिबद्ध सजी सेनाएँ, दीवाल से सटा शोध प्रबन्धों का विराट स्तूप। फाइलों के अम्बार में

घिरे बेहद थके-थके -से डॉ० साहब; इनकम टैक्स आफिसर के स्वागत (?) की तैयारी में एक जरूरी काग़ज़ की खोज में लीन हैं; अशोक अलग परेशान हैं; मैं भी पहुँचते ही कुछ वाउचर और रसीदें अलग-अलग करने में लग जाता हूँ। दृष्टि ठिठकी; पाँच सौ रुपये का एक हरा-हरा चेक; फरवरी में मिला था, अभी तक भुनाया नहीं गया; बेचारा लाल फीते की कसमसी फ़िज़ा में अपनी किस्मत को कोस रहा था। 'डॉ० साहब! यह चेक' 'लाओ देखें; कहाँ खो गया था यह! अभी मियाद है न!'

* * *

'अमाँ यार! ऐसे वक्त भी आराम हराम; बस काम-काम! कभी निष्काम भी रहा करो! क्या करोगे इतना रुपया बटोरकर! छोड़ो भी यह रिचेड वर्क; वही घिसे-पिटे सवाल-जवाब। बोर! मैं तो कत्तई बरदाश्त नहीं कर सकता।'

'अरे भाई! तुम्हारी क्या बात है? एक उपन्यास लिखा नहीं कि पाँच हजार हाजिर।

'अरे कहाँ मिलते हैं यार! जिन्दगी में पहली बार तो मिले हैं और तुम्हारे लिए तो हर साल सदाबहार।'

आया था रेडियो के कवि-सम्मेलन में, तबियत मचल पड़ी कि तुम्हारे यहाँ भी हो लूँ, नहीं कहोगे कि कमबख्त आया और चुपके से चला गया।

अन्दर से लगकर कपूरी पान के बीड़े आ गए। 'भई ये पान तो मुझे रास नहीं आते, मैं तो मघई का आशिक हूँ, पान और चूना बस, वाह! क्या लुबाब बनता है', खाली इलाइची ले ली, पान नहीं।

'अरे खा भी लो यार, जानता हूँ कलियों के चिटखने से लखनऊ वालों के कान में दर्द होने लगता है!"

'यार! आजकल तो खूब पैदल घूमता हूँ, खूब डटकर खाता हूँ और खूब कसकर लिखता हूँ। तीन-चार उपन्यास एक साथ फाँद रखे हैं, यूरोप घूम आऊँ फिर इनसे निबटूँ। तुम भी कुछ लिखो-विखो, क्या खामखा जहमत मोल ले रखी हैं'—ढेर-सारी उत्तर पुस्तिकाओं की ओर हिकारत-भरी चितवन उँड़ेलते हुए भगवती चरण वर्मा बोले।

रामकुमार जी ने बड़े दर्द के साथ कहा, 'भाई हर साल सोचता हूँ कि इस दफ़ा सिर्फ़ थीसिस देखने का ही काम करूँगा, कापियाँ नहीं जाँचूँगा। इतना तो मैं नाटक या अन्य दूसरे काम करके बटोर सकता हूँ लेकिन क्या करूँ? जबरन भेज देते हैं। आठ बंडल लौटा चुका हूँ, ये देखो गौहाटी से, बड़ौदा और पंजाब से, बम्बई से। मेरा कवि मुझे कोसता है, एकांकीकार अलग खीझता है लेकिन क्या करूँ मित्र, क्या करूँ, अब अगले साल हरगिज़-हरगिज़ नहीं जाँचूँगा।

* * *

जुलाई का वेदध्वनि गुंजरित सायंकालीन वातावरण। डॉ० साहब पैदल टहलकर अभी-अभी लौटे हैं, सोफे पर फैलकर पसर-से गये हैं। सामने मेज़ पर 'आकाश गंगा' लहरा रही है। योंही अनमने से उठा लेते हैं और मधुर-मंद ध्वनि में गुनगुनाने लगते हैं: 'मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूँ।'

'हजूर खाना मेज माँ लग गवा?'

'......जो तुम्हें कर दे द्रवित वह अश्रुधारा चाहता हूँ।'

'हुजूर' का जानीं हुजूर का गुनगुनात हुईं', महराज की डूबती विवशता-भरी वाणी ड्राइंग-रूम में छटपटाती हुई-सी सुनाई पड़ती है।

'चलिये उठिये, खाना खा लीजिये, ठण्डा हुआ जा रहा है—एक आतुरतामयी व्यस्त आकृति परदे के पार उभरती है।

'......प्राण ! मैं तो मार्गदर्शक एक तारा चाहता हूँ।

मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूँ।'

क्या करूँ मँझधार में ही मैं किनारा चाहता हूँ...' 'आकाशगंगा', का कवि बायें हाथ से शून्य में इन्द्रधनुषी तोरण बनाते हुए बड़ी दर्शनीय मुद्रा में उदात्त स्वर से पुनरावृत्ति करता है: 'प्राण ! मैं तो मार्गदर्शक एक तारा चाहता हूँ।

वे विवश-सी लौट जाती हैं। स्वर अनुगूँजते रहते हैं:

'मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूँ।......'

● ● ●

"यदि स्वर्ग का राज्य भी मेरे अधिकार की परिधि से बाहर है, तो वह मेरे लिए नर्क के समान कष्टदायक है।"

—'भरत का भाग्य' से

× × ×

"प्रजा का असन्तोष राजनीति का अभिशाप है। जो व्यक्ति प्रजा के पैर बनकर चलता है उसे कभी काँटे नहीं चुभ सकते।"

—'स्वर्ण श्री' से

साहित्य संगीत और कला के संगम डॉ० वर्मा

डॉ० व्रजवासी लाल श्रीवास्तव, प्राचार्य, दयानंद वेदिक कालेज, उरई

●

'साहित्य संगीत कला विहीनः' की श्रेणी में कितने आते हैं। मैं उन निरक्षर भट्टाचार्यों की बात नहीं कहता, उन साक्षर आचार्यों की भी बात करना चाहता हूँ। उपर्युक्त सामासिक पद में 'अथवा' की व्यंजना नहीं की जा सकती। तीनों ही क्षेत्रों का समाव मनुष्यत्व के लिए अपेक्षित है। और यदि पशुता और मानवता की किंचित् श्रेणियाँ करना ही अभीष्ट हो तो बात ही दूसरी है। फिर तो कह सकते हैं कि तीनों का समाव जिसमें हो वह मानव और दो का समाव हो तो उससे कम मानव और इसी प्रकार आगे सोच सकते हैं किन्तु इससे अच्छी मान्यता हो सकती है। तीनों का समाव जिसमें हो वह महामानव, दो का वह मानव, एक का वह मनुष्य और एक का भी नहीं वह पशु।

बात एक दीक्षान्त समारोह की है। कदाचित ५१-५२ का वर्ष रहा होगा। मैं डॉ० वर्मा की सेवा में पी–एच०–डी० हेतु शिष्यता ग्रहण कर चुका था। इस दीक्षान्त समारोह के अवसर पर डॉ० साहब द्वारा रचित 'कौमुदी महोत्सव' नामक एकांकी खेला जाना था। छात्र-अभिनेताओं ने बड़ी अच्छी तैयारी की थी। बड़ी चहल पहल थी। एक साथी ने कोई महिला की भूमिका ली थी। अपनी स्त्री वेशभूषा में वह पूछ बैठे, 'मैं कैसा लगता हूँ' तो उधर डॉ० शैलकुमारी तथा इधर डॉ० साहब से नाटक की भूमिका के उपर्युक्त उत्तर मिले 'पहले यों कहिये कि मैं कैसी लगती हूँ ?"

एक-एक पात्र की वेशभूषा, साज-सज्जा तथा शृंगार का बड़ी तन्मयता से निरीक्षण तथा नाटककार की भावना के अनुकूल उनमें संशोधन डॉ० साहब की भूमिका थी। ऐसा लग रहा था जैसे जिस युग की कथा है, वह अतीत डॉ० साहब के लिये ऐसा वर्तमान बन गया है कि उसको वह भलीभांति निखार सकते हैं और सँवार कर प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रथम तैयारी के पश्चात् मुझे ऐसा लगा कि चलो अब शान्ति मिली। डॉ० साहब कहीं अपना स्थान ग्रहण कर लेंगे और उनके पीछे मैं भी बैठ जाऊंगा। किन्तु यह तो एक क्षण का विश्राम था जिसे विश्राम न कह कर आगामी भूमिका की गतिशीलता कहना उचित होगा। यवनिका उठने से पूर्व डॉ० साहब मंच पर उपस्थित थे और मंच के एक ओझल कोने से तन्मय, तद्भाव एवं तद्गति हुये एक-एक भाव भंगिमा और एक-एक भूमिका को देख रहे थे, देख ही नहीं रहे थे बल्कि अपने अंतस और अपनी अनुभूति में एक-एक भाव भंगिमा एवं भूमिका को स्वयं अदा कर रहे थे। भरत ने ऐसे नाटककार की कल्पना की होती जो स्वयं अभिनेता भी होता, रंग व्यवस्थापक और मंच प्रबन्धक भी होता, और होता स्वयं गायक वादक तो

रसनिष्पत्ति की सारी समस्याओं का समाधान हो जाता। किन्तु ऐसे महामानव मनुष्यों में एकाधिक कहाँ होते हैं। भरत इसी लिये, यों अपनी नाटक भूमिका में सब कुछ इस रूप में प्रस्तुत कर गए हैं, फिर भी इस विचार से विरत रहे हैं।

डॉ० साहब की कला साहित्य है और साहित्य संगीत। उनकी गुनगुनाहट संगीत की स्वर लहरियों से आगे बढ़ जाती है तो उनका चिन्तन दर्शन को पीछे छोड़ जाता है। वह भावुक हैं, प्रेमी हैं, प्रिय हैं, और साथ ही अपने दायित्व में कठोर हैं, अडिग हैं, अटल हैं। उनके व्यक्तित्व में इस प्रकार दो ध्रुवों का समन्वय है। एक है प्राचीन परम्परा और उसकी श्रद्धा भक्ति एवं विश्वास, दूसरा है वर्तमान युग की चिन्तना, विचारणा, मूल्य और मानों का आदर्श। वह जितने सरस, सरल और सहृदय हैं तथा जितना युग के पाप-ताप से क्षुब्ध, वह सब उनके साहित्य में प्रतिबिम्बित है। आदर्श पात्रों के माध्यम से डॉ० साहब का आदर्श नहीं वरन् स्वयं उनका व्यक्तित्व झांकता है। वह अपने व्यक्तित्व में इस प्रकार भीतर बाहर एक से हैं उसी प्रकार अपने साहित्य सृजन में भी पूर्ण निष्ठावान हैं तथा दुराव-छिपाव कहीं नहीं है। उनका अपना जीवन दर्शन है जो उनके छात्रों के लिये प्रबल प्रेरणा है, उनका अपना चिंतन है जो युग को मोड़ने की क्षमता रखता है, उनका अपना व्यक्तित्व है जो सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के मनहूस चेहरों पर खुशी की लहर बिखेर देता है। उनमें निश्चय ही साहित्य संगीत और कला का सुंदर संगम हुआ है। यदि आप प्रयाग जाएँ तो संगम में स्नान करने के पश्चात् इस संगम के दर्शन करना न भूलेंगे।

● ● ●
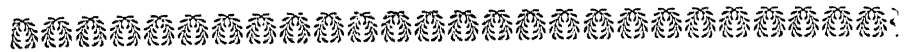
"एक मुस्कान और दो आँसू ही प्रेम की भाषा है।"

—'अंधकार' से

× × ×

"बंधन को उन्नति के रास्ते में रोड़ा मत समझो। बंधन को स्वतंत्रता का सहायक समझो।"

—'रजनी की रात' से

एक युग का समापन

श्री जयकुमार जलज, अध्यक्ष हि० वि० शासकीय महाविद्यालय, बरेली (भोपाल)

●

इलाहाबाद से आया हुआ पत्र मेज पर खुला हुआ है—'डॉ० रामकुमार वर्मा इस सत्रान्त में विश्वविद्यालय की सेवाओं से अवकाश ग्रहण कर रहे हैं। इस अवसर पर हिन्दी विभाग की ओर से कौमुदी का विशेषांक प्रकाशित हो रहा है।' पत्र को कई बार पढ़ गया हूँ और अब उसे उठाकर आँगन में ले आया हूँ। शाम के धुंधलके में फिर पढ़ता हूँ। क्यारियों में उगे हुए पौधों के पास खड़ा हो जाता हूँ। उनकी पत्तियाँ गिनता हूँ। मन ही मन उनकी ऊँचाई को नापता हूँ। हाथ में पत्र फिर कसमसाता है। मैं फिर दूसरी बातों में व्यस्त होना चाहता हूँ। लेकिन कब तक ? स्वीकार करना होता है कि हाँ, रामकुमार जी अवकाश ग्रहण कर रहे हैं और अवकाश ग्रहण करने का अर्थ है वृद्ध होना। दोनों की अवस्थाओं में कोई बहुत बड़ा अन्तर न होने पर भी जैसे देश में गाँधी को सदैव वयोवृद्ध और जवाहरलाल को सदैव युवा समझा गया है वैसे ही प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के सन्दर्भ में धीरेन्द्र जी को सदैव वयोवृद्ध और रामकुमार जी को सदैव युवा समझने के संस्कार हम विद्यार्थियों के रहे हैं।

१९५३, जुलाई का महीना। हिन्दी-विभाग के अध्यापक-कक्ष से कुछ इस तरह ही एक कार रुकी थी और मैं उसमें से उतरते हुए ड्राइवर व्यक्ति को पास से देख सका था—चेहरे पर आँखें और आँखें ही। जैसे सारा मुखमण्डल उनके ही प्रभुत्व में हो। कहानी सुनते हुए बच्चों की-सी विस्मय भरी छोटी आवेशमय आँखें। मुग्ध कुतूहल है जो आँखों में तैर तैर जाता है। आँखों की आवेशमयता को बिखराव देती हुई सुदृढ़ और गरिमापूर्ण नासिका है जो रामकुमार जी को भटकने नहीं देती, परम्पराओं से हटने नहीं देती और नियमित जीवन से बाँधकर रखती है। शरीर के भराव के कारण कुछ कम लम्बा लगने वाला मध्यम से तनिक बड़ा कद; सुन्दर और सुरुचिपूर्ण वेशभूषा; माथे पर तीन-चार गहरी रेखाएँ; सिर के बाल इस असमंजस में कि अवस्था की वृद्धता की बात मानें या जवानी के लक्षण मानसिक उत्साह, उल्लास और सामर्थ्य की, इसलिए न सफेद और न काले; चाल में दृढ़ता और अधिकार,

रंग उनका निराला या मानखनलाल चतुर्वेदी की तरह गोरा नहीं है। व्यक्तित्व में कहीं कोई सुकुमारता नहीं है। छायावादी कवि नारीसुलभ सौन्दर्य से युक्त होते हैं यह प्रचलित धारणा उन्हें देखकर भंग हो जाती है। उनका व्यक्तित्व सौन्दर्य और सुकोमलता को नहीं परिश्रम और संघर्षशीलता को सूचित करता है।

पिछली बार मैंने उन्हें १९६३ में देखा। सब कुछ वही। हाँ, सिर पर सफेद केशों को अवश्य स्पष्ट बहुमत मिल गया है। उनके घर पर मुझे उनकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। दाहिनी

ओर के कमरे में मुझे बिठा दिया गया। वे कहीं बाहर गए हुए थे। कमरे में जिस कुर्सी पर मैं बैठा हुआ हूं उसके सामने वह उनकी माँ का चित्र है—श्रीमती राजरानी का। मेरे सिर के पीछे ऊपर की ओर टँगे चित्र में भारतीय गणतंत्र के राष्ट्रपति उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित कर रहे हैं। इसी चित्र के बगल में बड़े बड़े विशेषणों से युक्त एक मानपत्र टँगा है जो शायद विद्यार्थियों की किसी संस्था ने उन्हें उनके जन्म दिन पर दिया है। विद्यार्थियों का मन रह जाय, इसलिए यह भी सम्मानित स्थान पर टँगा हुआ है। बीच में रखी छोटी मेज पर यह कोई महाप्रबन्ध है, यह शमशेर की नयी किताब और यह नयी कविता का नया अंक। दाहिनी ओर के दरवाजे पर सम्भवत: निकल भागने के लिए छटपटाता हुआ वह कोई हिन्दी दैनिक है और सामने की कुर्सी के पीछे कोई अंग्रेजी दैनिक समूचा खुल गया है। गौरैया चिड़ियों का एक दल, पता नहीं कब से, उसे अपने घोंसले में ले जाने का प्रयत्न कर रहा है। कमरा करीने से नहीं सजा है। मैं उसमें आराम का अनुभव करता हूँ। कमरे का व्यक्तित्व मुझे हीन सिद्ध करने की चेष्टा नहीं करता।

बाहर कोई सीढ़ियाँ चढ़ता है। 'यह पगध्वनि मेरी पहचानी' बच्चन की इस पंक्ति की सच्चाई को मैं परखना चाहता हूँ और तभी—'अरे, तुम कब आए ?' आँखों में तैरता हुआ मुग्ध कुतूहल वाणी में उतर आता है। रामकुमार जी घूम कर लौटे हैं। छड़ी लिए हैं। धोती पहिने हैं। ऊनी कपड़े हैं। गले में गुलूबन्द है। हाथ में रूमाल में कुछ बंधा है। वे पिता की तरह मेज पर रूमाल खोल देते हैं। उसमें अभी सिकी मूंगफलियाँ हैं। फिर वे मुझे भीतर ले जाते हैं। वहाँ माता जी हैं। उनके भगवान हैं, भगवान का प्रसाद है। माता जी की रसोई है। रसोई की पवित्रता है। रामकुमार जी की एकमात्र पुत्री राजलक्ष्मी है। अपने पिता को लेकर दिनभर में संचित की गईं उसकी शिकायतें हैं। मैं जो पहुंच गया हूँ सो मुझ से प्रश्न पर प्रश्न पूछे जा रहे हैं। वातावरण ऐसा हो गया है जैसे कोई भागा हुआ लड़का बहुत दिन बाद अचानक अपने घर लौटा हो।

बाहर कहीं मिल जाएंगे तो जैसे उनका सारा स्नेह बरस पड़ेगा। उन्हें इस बात से प्रसन्नता होती है कि उनके विद्यार्थी सिर्फ पढ़ाकू ही नहीं हैं। एक दिन नुमाइश देखकर बाहर निकला तो एक पान की दुकान पर दोस्तों से गप्पें लड़ाने लगा। दो मिनट भी नहीं हुए होंगे कि मुझे रामकुमारजी भी नुमाइश देखकर बाहर आते दिखाई दिए। मैं उन दिनों एम० ए० के दूसरे वर्ष का विद्यार्थी था। स्वभावत: आज की अपेक्षा उन दिनों उनसे अधिक डरता था। घूमकर दोस्तों की ओट में खड़ा हो गया। दुर्भाग्य (?) कि उन्हें भी वहीं से निकलना था। मेरे पीछे कन्धे पर हाथ रखकर अपने घर की बोली में बोले—'काय जयकुमार, देख लई नुमायस ?'

यह पारिवारिकता उनके चरित्र की बड़ी विशेषता है। उनका यही गुण उनसे मतभेद रखने वाले के हथियार रखवा देता है। विभाग की सीढ़ियाँ उतरते हुए या कार में बैठने के पूर्व जब आपके कन्धे पर हाथ रखकर वे कहते हैं—'नहीं भाई, यह बात ऐसी है' तब अपने मत के प्रति आपका सारा आग्रह अपनी पकड़ ढीली कर देता है।

इस पारिवारिकता से उन्हें हानि भी होती है। एम० ए० की कक्षाओं से हर साल कुछ विद्यार्थी ऐसे निकल आते हैं जो उनकी इस पारिवारिकता को अपने प्रति विशिष्ट व्यवहार

मान बैठते हैं। वे लोग प्रायः उनके नाम का शोषण करते हैं और शुद्ध लाभों की उम्मीद में उन्हें घेर लेते हैं, घेरे रहते हैं और उनके चिन्तन को पैना नहीं होने देते। दूसरों की सहायता अच्छी चीज है। पर, उसकी एक सीमा होती है। यह कि जिसे आप कुछ दें वह उसे लेकर चलता बने। यदि वह रुक जाता है, आपके प्रदेय की प्रशंसा करता रहता है तो वह आपके समय और मेधा का शोषण करता है। आजादी के वाद हमारे देश में ऐसे लोगों की संख्या बहुत बढ़ी है और हर बड़ी प्रतिभा को इससे खतरा है। रामकुमार जी ऐसे लोगों को पहचानते हैं। लेकिन वे-जान कर अनजान बन जा' का निर्वाह आवश्यकता से अधिक करते हैं।

चाहे साधारण बातचीत हो, चाहे कोई भाषण रामकुमार जी सदैव एक काव्यमय वातावरण की सृष्टि करते हैं। उनकी भाषा और वाणी का माधुर्य मास्को के चौराहों, सभाभवनों आदि से लेकर भारत के सबसे दक्षिण भागों तक बिखरता है। हिन्दी के उन कवियों में जो श्रेष्ठ वक्ता भी हैं रामकुमार जी का नाम माखनलाल चतुर्वेदी तथा महादेवी वर्मा के साथ त्रयी का निर्माण करता है। वे बहुत रुक रुक कर बोलते हैं। दो वाक्यों के बीच में ही नहीं, कभी-कभी दो शब्दों के बीच में भी विराम देते हुए चलते हैं। बोलते-बोलते रुक जाते हैं, खोए हुए से लगते हैं और फिर अचानक बोलना आरम्भ कर देते हैं। इस सारी प्रक्रिया के समय उनका मुखमण्डल अत्यन्त भावपूर्ण होता है। उनके बोलने में प्रवाह कम और माधुर्य अधिक है। पर यदि उन्हें छोड़ दिया जाय तो उन जैसा प्रवाह कम लोगों में सुनने को मिलेगा। अपनी इस आदत में वे आचार्य कृपलानी के निकट हैं। बातचीत के दौरान वह बोलेंगे कम और सुनेंगे अधिक। आगन्तुक के चेहरे पर, उसकी वेशभूषा और आकार प्रकार पर वे इस प्रकार आँखें गड़ाए रहेंगे कि जैसे उसे सम्पूर्णतः पढ़ लेना चाहते हों। उनके नाटकों के अधिकाँश पात्र सम्भवतः इसी तरह ढूंढ़े गए हैं।

डॉ० रामकुमार वर्मा हिन्दी के उन साहित्यकारों में से हैं, जिनके साथ किसी मतवाद का आग्रह नहीं है। आग्रह से ही आवेश का जन्म होता है। रामकुमार जी के वार्तालापों, भाषणों और साहित्य में भी आवेश के अभाव का एक बड़ा कारण यही है कि वे किसी मतवाद का आग्रह लेकर नहीं चलते। रसवाद में विश्वास करने के कारण उनका साहित्य, उनके भाषण या वार्तालाप रस में पर्यवसित होते हैं। रस में आवेग या आवेश तिरोहित हो जाता है। आवेग या आवेश तो भाव या भावना में होता है। रस में पर्यवसित होने के कारण ही उनका भाषण या साहित्य झकझोरता कम है, तीव्र प्रहार कम करता है। उसमें बेधने का गुण कम और रसविभोर कर लेने का गुण अधिक है।

जीवन और व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी गहरी पैठ है और उनका कवि, समालोचक, नाटककार या प्राध्यापक उनके एक सामान्य व्यक्ति होने में किसी प्रकार बाधा नहीं डाल पाता। अपनी खरीदी हुई वस्तुओं को वे प्रायः आगन्तुकों को दिखाते हुए बताएंगे कि किस तरह दुकानदार कुछ भी कम करने को तैयार नहीं था, फिर किस तरह उन्होंने कहा, भाई, इतने में देना हो तो दे दो और वह राजी हो गया; यद्यपि चीज इतनी अच्छी थी कि यदि वह राजी न होता तो वे और भी अधिक दाम दे सकते थे; किस तरह अमुक चीज उन्हें अमुक दुकान पर अचानक दिखाई दे गई, आदि। मुझे लगता है, कोई नई कविता, नया निबन्ध, नई समालोचना या नया एकांकी लिख लेने पर उन्हें जितनी प्रसन्नता होती है उससे कम प्रसन्नता इस बात में नहीं होती कि वे ठीक दाम पर एक बढ़िया चीज खरीद लाए हैं और दुकानदार

उन्हें ठग नहीं पाया है । उनके जीवन के ही नहीं उनकी प्रतिभा के मूल में भी संतुलन है । एक ओर जहाँ उनका काव्य उच्छृंखल भावुकता से दूर है वहाँ दूसरी ओर शोध के रेगिस्तान में भटककर भी वे नखलिस्तान का रास्ता नहीं भूलते ।

कुतूहल सदैव आगे देखता है । मैंने कहा न रामकुमार जी की आँखों में मुग्ध कुतूहल है । आप उन्हें नया बाँध दिखाइए, नई फैक्टरी में ले जाइए, नया नगर, नया तीर्थस्थान, नए व्यक्ति दिखाइए, वे बहुत प्रसन्न होंगे । वे छोटी से छोटी बात को देखेंगे, उसके बारे में जानना चाहेंगे । यों उन्हें विराट दृश्य बहुत आकर्षित करते हैं। सिर उठाती हुई लहरोंवाला उफनता हुआ समुद्र, बरसात के दिनों की चढ़ी हुई गंगा, आकाश का स्पर्श करने वाली दूर तक फैली हुई पर्वतश्रेणियाँ देखते हुए उन्हें आप देखें तो उनके चेहरे पर आपको ऋग्वेद की ऋचाओं के भाव लिखे हुए मिलेंगे ।

सदैव आगे देखने का एक दूसरा पक्ष भी है। पीछे की साजसँवार, विगत का लेखाजोखा, किए हुए कामों का जायजा लेना हाथ से छूट जाता है । रामकुमार जी नया राज्य जीत सकते हैं पर जीते हुए राज्य की व्यवस्था वे विवशता में ही करते हैं । वे नई कविता, नाटक या निबन्ध या कुछ भी नया लिख सकते हैं, पर लिखे हुए की प्रतिलिपि करना उनके लिए विवशता की स्थिति में ही सम्भव है । अपने व्यक्तित्व और प्रतिभा के स्वाभाविक सन्तुलन के कारण इन विशेषताओं का निर्वाह तो वे करते हैं, पर , मेरा तात्पर्य यह है कि इनमें उनका मन रमता नहीं है । मैं उनका विद्यार्थी रहा हूँ और उनके विभाग में अध्यापक भी और मैंने उन्हें इतने बड़े विभाग के अध्यक्ष-पद पर रात-दिन परिश्रम करते हुए देखा है । पर मुझे कई बार लगा है कि जैसे वे भागना चाहते हैं––किसी नए स्थान को, किसी नए काव्य के सृजन के लिए, किसी नए एकांकी नाटक को लिखने के लिए ।

उनके अंतरंग मित्रों की संख्या बहुत अधिक नहीं है। हिन्दी के सैकड़ों प्रसिद्ध साहित्यकार उनके विद्यार्थी रहे हैं। इसीलिए सब कुछ होते हुए भी वे यह कभी नहीं भूलते कि रामकुमार जी ने उन्हें पढ़ाया है । इसलिए सहज अन्तरंगता उन्हें प्राप्त नहीं हो पाती । फिर मित्रता के लिए साजसँवार आवश्यक है। व्यस्तता के कारण या शायद स्वभाव के विरुद्ध बैठने के कारण रामकुमार जी साजसँवार कर नहीं पाते । इसलिए भी बहुत से लोग धीरे-धीरे एक दूरी का अनुभव करने लग जाते हैं । चाहे विद्यार्थी का पत्र हो, चाहे किसी अन्तरंग मित्र का वे देर से उत्तर दे पाते हैं। लेकिन इसके लिए क्या उनके स्नेह पर सन्देह किया जासकता है ? मैं समझता हूँ, नहीं। वे चाहते हैं कि वे भले ही पत्र न लिख सकें पर उनके मित्र और विद्यार्थी उन्हें अपनी कुशलता के समाचार देते रहें । ये समाचार न मिलने पर उनका मन कैसा छटपटाता है, इसका एक सहज अनुमान निम्नलिखित पत्र से लग सकता है ––

हिन्दी विभाग,
विश्वविद्यालय, प्रयाग,
२३. ११. १९३६

प्रियवर जलज,

बहुत दिनों के बाद एक पत्र श्री हरिप्रसाद हरि के स्मारक ग्रन्थ के सम्बन्ध में तुम्हारे छपे हुए नाम के साथ मिला । तुम यहाँ से चले क्या गए, हम लोगों को और विभाग को

बिल्कुल ही भूल गए ? कैसे हो ? कैसा कार्य कर रहे हो ? कैसी साहित्य सृजन की गति है--आदि बातों पर तो कुछ लिखना चाहिए न ? इस अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्बन्ध में तुम मुझसे क्या चाहते हो--लिखना ।

आशा है, सपरिवार सानन्द हो ।

भवदीय,
रामकुमार वर्मा,

हिन्दी नवलेखन के प्रसिद्ध विचारक डॉ० रघुवंश के यहाँ एक दावत में मैंने रामकुमार-जी और पन्त जी (सुमित्रानन्दन पन्त) को दो बालमित्रों की तरह बातें करते हुए--एक दूसरे का हाथ पकड़ कर उसको थपथपाते हुए, हंसते हुए देखा है । रामकुमार जी ने एकलव्य महाकाव्य का समर्पण भी 'अपने आत्मीय महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त' को किया है। आचार्य जगदीश- चन्द्र मिश्र के साथ भी मैंने उन्हें जी भर हँसते हुए, निजी चर्चाएं करते हुए और सहज होते हुए देखा है ।

भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रति डॉ० रामकुमार वर्मा में भारी मोह है । सम्भवतः जयशंकर प्रसाद के प्रति उनके अनुराग ने और उनसे हुई उनकी भेंटों ने इस मोह को और प्रगाढ़ कर दिया है । ऊपर कह आया हूँ कि वे सहज ही परम्पराओं से विद्रोह नहीं कर पाते । उनकी बाँह में बँधा हुआ, अँगूठियों में जड़े हुए विभिन्न कीमती पत्थर उनकी इसी बात की स्थूल सूचना देते हैं । अष्टग्रह योग के दिनों में मैंने उन्हें उसकी चर्चा और चिन्ता करते हुए देखा है । जन्मपत्री में उनका विश्वास है । जवाहरलाल नेहरू की जन्मपत्री की बात करते हुए एक दिन उन्होंने कहा था--'जवाहरलाल इन्द्रजीत के अवतार हैं । उन्हें चरम यश मिलेगा लेकिन उनका स्वर्गवास अचानक होगा, जैसा लक्ष्मण के विरुद्ध युद्ध में इन्द्रजीत का स्वर्गवास अचानक हुआ था ।'

वे रूस में बहुत समय रहने के बाद जब लौटने वाले थे तो मैंने सोचा था, एक उच्चतर अर्थ और समाज व्यवस्था में इतने दिन जी आने के बाद उनकी जीवन दृष्टि बदली होगी, चिन्तन बदला होगा, शायद समूचा सांस्कृतिक व्यक्तित्व ही बदल गया होगा । पर पाया कि परिवर्तन सिर्फ इतना ही हुआ है कि वे अब रूसी भाषा बोल लेते हैं । वे जैसे भारतीय गए थे वैसे ही भारतीय लौट आए । भारत के अतीत गौरव के प्रति उनके मोह के बावजूद मैं यह अनुभव करता हूँ कि शोषणहीन उच्चतर समाज व्यवस्था के प्रभाव उनके उपचेतन के भीतर उनके गहरे संस्कारों में बदल रहे हैं । एक दिन ये संस्कार विद्रोह कर सकते हैं । यह एक महान काव्य की भूमिका होगी । उनके साहित्य में युद्ध त्रस्त, पीड़ित तथा शोषित मनुष्यता की संयमित किन्तु दृढ़ आवाज सुनाई दे सकेगी । वह साहित्य क्षणजीवी राजनैतिक नारेबाजी भर न होगा । वह टिकने और युग को बदलने के लिए होगा ।

डॉ० रामकुमार वर्मा के अवकाश ग्रहण से एक बहुत बड़े और पुराने हिन्दी विभाग की जो हानि होगी उसे वह कोई भी व्यक्ति समझ सकता है जो उस विभाग से किसी भी रूप में सम्बन्धित रहा है । उनका अवकाश लेना जैसे विभाग के एक युग का समाप्त होना है । डॉ० वर्मा अब साहित्य के चिन्तन और लेखन के लिए अधिक समय दे सकेंगे--निश्चय ही उनका अवकाशग्रहण हिन्दी साहित्य की समृद्धि के लिए एक मंगलमय संकेत है । ●●●

सौम्य प्रतिभा के धनी

डॉ० स्नेहलता श्रीवास्तव, इन्द्रप्रस्थ कालेज, दिल्ली

डॉ० रामकुमार वर्मा की साहित्यिक प्रतिभा का विवेचन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन विद्वानों का कार्य है और जागरूक आलोचक इस ओर सजग भी हैं। मैं उनकी एक साधारण छात्रा रही हूँ। कवि, एकांकीकार, इतिहास लेखक अथवा आलोचक की अपेक्षा मेरा उनसे प्रथम परिचय गुरु शिष्य रूप में ही हुआ। मैंने उन्हें एक सहृदय प्राध्यापक के रूप में जाना जिनसे मुझे निरंतर प्रोत्साहन, सत्परामर्श, स्नेहमिश्रित सम्मान एवं सहानुभूति पूर्ण स्निग्ध व्यवहार ही मिला।

प्रयाग में रहने के कारण डॉ० रामकुमार वर्मा का नाम मैंने बचपन में ही सुना था। कवि सम्मेलनों में उनके दर्शन का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था किन्तु उन्हें निकट से जाने का अवसर एम० ए० पूर्वार्द्ध की मौखिक परीक्षा के अवसर पर ही मिल सका। उस समय वे स्थानीय परीक्षक की दृष्टि से वहाँ उपस्थित थे। पंडित शुकदेव विहारी मिश्र जी बाहर से पधारे थे जिनके कठिन प्रश्नों से छात्र वर्ग आशंकित हो उठा था। परीक्षा का नाम तो बड़े-बड़े साहसी व्यक्तियों का धैर्य डिगा देता है फिर मौखिक परीक्षा तो कुछ छात्रों के लिए वैतरणी पार करने के सदृश दुष्कर जान पड़ती थी। मुझे परीक्षा से यद्यपि विशेष भय नहीं लगता था किन्तु परीक्षा कक्ष में प्रवेश करते समय हृदय के किसी कोने में भय अवश्य समा गया था। मैं दोनों परीक्षकों को प्रणाम कर कुर्सी पर बैठ गई। सर्व प्रथम डॉ० वर्मा ने ही नागरी लिपि पर प्रश्न किया। विचार विमर्श के मध्य उनकी संतोषपूर्ण मुखमुद्रा ने मुझ में आत्मविश्वास उत्पन्न कर दिया। पंडित शुकदेव विहारी मिश्र के प्रश्नों का उत्तर देते समय मुझे ऐसा जान पड़ा कि मेरा संरक्षक निकट ही है, भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। इस प्रथम परिचय के अवसर पर मुझे यह भी अनुभव हुआ कि उनके अन्दर कहीं कोई वात्सल्यमय अभिभावक भी है जो अपने छात्रों पर स्नेह की वर्षा करता हुआ, उन्हें आश्वस्त भी करता है।

सहृदय परीक्षक के पश्चात् ही मुझे उनके प्राध्यापक रूप के दर्शन हुए। उनके रसमग्न कर देने वाले भाषणों के संबंध में अनुमान की अपेक्षा अनुभूति ही प्रमाण हो सकती है। विद्वत्ता और अभिनय के मधुर मिश्रण के साथ ही उनके भाषणों में मंत्र मुग्ध कर देने की अपूर्व क्षमता है। भाषण प्रारम्भ होते ही एक सम्मोहन सा छा जाता और छात्र वर्ग उस भाव गंगा में आनंद मग्न हो जाते। गत जीवन की वह स्मृति आज भी कम मोहक नहीं है।

एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने पश्चात मेरे सामन आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनने की समस्या थी। सहारनपुर, मिर्जापुर और मथुरा के कालेजों से नियुक्ति पत्र प्राप्त

हो चुके थे किन्तु मेरे पिता जी बराबर मेरे बाहर जाने का विरोध ही करते रहे, परिणाम-स्वरूप मैंने सभी स्थानों पर अस्वीकृति की सूचना भज दी थी। अब मरे पास केवल इन्द्रप्रस्थ कालेज का इन्टरव्यू पत्र था। इस अवसर को छोड़ देने से वर्ष पर्यन्त बैठना पड़ता किन्तु पिता जी की अनुमति के बिना मैं कुछ करना भी नहीं चाहती थी। हृदय घोर निराशा से शिथिल हो रहा था। भविष्य अंधकारमय जान पड़ता था। ऐसी स्थिति में कुछ संकोच के साथ मैं डॉ० वर्मा से मिलने गई। उनसे बात करने के पश्चात् मेरे मन पर अवसाद का जो घना कुहासा छा गया था वह धीरे धीरे समाप्त होने लगा। आशा और उत्साह से नए कर्म-क्षेत्र में प्रतियोगिता के लिए मैं आगे बढ़ी। उन्होंन कहा था मथुरा, सहारनपुर या मिर्जापुर से दिल्ली जाना श्रयस्कर है। स्थान की दूरी से भयभीत होना उचित नहीं। उन्होंने आशीर्वाद देकर मेरा पथ प्रशस्त किया। उनके परामर्श से पिताजी ने अनुमति दे दी। इस प्रकार डॉ० वर्मा की प्रेरणा से ही मैं दिल्ली आ सकी।

पारिवारिक समस्याओं के प्रति उनके सहानुभूति पूर्ण व्यवहार से जहाँ एक ओर उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ गई थी वहाँ दूसरी ओर मेरा संकोच भी कम हो गया था। मेरे अनुज ने भी हिन्दी एम० ए० में प्रवेश लिया था जिससे डॉ० साहब के साथ हमारे परिवार का संबंध और अधिक घनिष्ट हो गया और जब कभी मैं प्रयाग गई उनसे मिलना मेरे कार्य-क्रम का अनिवार्य अंग बन गया। एक बार सन् १९५६ में जब हम दोनों भाई बहिन डॉ० साहब से मिलने गए तो उन्होंने मुझे 'ऋतुराज' भी एक प्रति पर निम्न पंक्तियाँ लिख कर दीं——

रवि मंडल दंखत लघु लागा।
उदय नाम त्रिभुवन तम भागा॥

मानवता में एकांकी स्वरूपा
स्नेह को

पंक्तियों को पढ़कर मैं संकुचित हो उठी। क्या मैं इन पंक्तियों के वस्तुतः योग्य हूँ। मुझे उस समय उनकी महानता का भान हुआ। अकिंचन पर इतना सम्मान उदार हृदय ही लुटा सकता है। संतान की उन्नति देखकर पिता और शिष्य की प्रगति से सच्चा गुरु ही प्रसन्न होता है।

जब कभी मैं उनके घर गई मुझे कभी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। मार्ग में यदि कभी वे मिले तो स्वयं ही अपनी कार रोक कर उन्होंने मुझे अनुग्रहीत किया। वार्तालाप में मैंने सदैव सौहार्द और आत्मीयता की अपूर्व झलक देखी। उन्हें कार्य करने और अपने छात्रों से शीघ्र कार्य करवाने में समान रुचि है। उनके सतत् प्रोत्साहन से ही शोध छात्र अपना कार्य यथा शीघ्र समाप्त कर लेते हैं। यद्यपि ऐसा करने में उन्हें भी विशेष परिश्रम करना पड़ता जिसकी अपने विद्यार्थियों के हित में उन्होंने कभी चिंता नहीं की।

एक बार किसी प्रसंगवश डॉ० साहब ने कहा था मेरा जन्म वृश्चिक राशि में हुआ अतएव मेरा डंक अति तीखा है किन्तु विश्वविद्यालय के हित में मैंने उसे तोड़ दिया है। साहित्यकार अपनी रचना के माध्यम से कोमल एवं कटु भाव उत्पन्न करता है। आलोचना के व्याज से किसी को वृश्चिक दंश की अनुभूति हुई हो तो यह अन्य बात है व्यवहार में मैंने उन्हें सदैव सौम्य ही पाया है। यह वस्तुतः सौभाग्य की बात है कि मेरे व्यक्तिगत अनुभवों में उल्लास और संतोष ही प्रधान है उनकी स्नेहछाया मेरे पथ को शीतल एवं सरल बनाती रहे, यही मेरी कामना है।

यहीं आज अर्पण हो

भोलानाथ सिंह यादव, बी० ए०, द्वितीय वर्ष

●

ओ गुरुवर ! इस समारोह में कौन भेंट अर्पण हो ।

आती हैं जो वस्तु दृष्टि में वे सब अर्थहीन लगती हैं ।
जिन पर तेरी अमिट छाप है, वे सब मर्म हीन लगती हैं ।
तेरे कर के अस्त्र-शस्त्र से सभी निरन्तर घिसी पिटी हैं,

आखिर नयी वस्तु की प्रतिमा कैसी आमन्त्रण हो ?

एकांकी के पात्र तुम्हारे हमसे मूंक व्यंग करते है ।
करना चाहूँ जो मैं प्रवचन उतनी शक्ति स्वयं रखते हैं ।
किस वाणी में उर भावों को, जो समक्ष आने में गुम हैं,

रीति नहीं आती कहने की; कहो, कौन प्रवचन हो ?

जितने छन्द बनाए तुमने, वे मेरे उर के बन्धन हैं ।
जितने शब्द गढ़े हैं तुमने, वे ही मेरे भाव सुमन हैं ।
जितनी पंक्ति गढ़ी है तुमने, वे ही मेरे प्रेम रज्जु हैं;

किसी रीति से बाँध सकूं मैं; यही हमारा प्रण हो ।

तुमने जितने पौध लगाए, उनके सुमन खिले फल आगे ।
जितने क्यारी में बैठाए पृथक्-पृथक् अपना यश माँगे ।
वनमाली साहित्य चमन के, भारत के तुम चिर कुमार हो,
जितने बिधि से इसे सजाया, यही आज अर्पण हो ।

●●●

गुरुवर थोड़ा विश्राम करो !

राजकिशोर पाण्डेय एम० ए० (उत्तरार्द्ध)

●

थके नहीं हो साधक
फिर भी रुककर अल्प विराम करो !!

तेरे रोम रोम से फूट रही अब भी,
उद्धर्वगामि दिनकर सी किरणें चमकीली ।
तेरी आँखें द्रवीभूत दुखियों के दुख से,
सावन की धरती सी कुछ गीली गीली ।।

सृष्टि गूंजती आज अमंगल गीतों से,
निकल रहा है प्रलयंकर, पुच्छल तारा ।
तब भी तुम हिन्दी के निर्मल सागर में,
घोल रहे हो वाणी की अमरित धारा ।।

नीलकंठ बनकर वसुधा को--
वाणी-सुधा प्रदान करो !....गुरुवर थोड़ा विश्राम करो !

तुम से युग की जटिल समस्याएँ सुलझी ।
तृषित भारती के सपनों की प्यास बुझी ।।
हिन्दी का इतिहास आज वासंती है ।
एकांकी बाला अनन्त रसवंती है ।।

काव्य-कला में एकलव्य सी निष्ठा है ।
भाव-लोक में तेरी चरम प्रतिष्ठा है ।।
गद्य-खण्ड अद्भुत अखंडता पाया है ।
काव्य-कलेवर में ही घुल मिल आया है ।।

बढ़ो, और साहित्य वाक्य का--
भरत वाक्य अविराम करो !....गुरूवर थोड़ा विश्राम करो !

अब तेरा संकेत पन्थ अपनाना है ।
प्राप्त प्रेरणा से प्रभुता को पाना है ।।
जहाँ रहो स्मृतियों से तेरी मूरत को ।
श्रद्धा के सुमनों से नित्य सजाना है ।।

एकलव्य अंगुष्ठ दानकर तृप्त हुआ,
कोटि कोटि मस्तक चरणों में मेरा है ।
संध्या की इस अलसाई सी वेला में,
सुधि की ऊषाओं का अंबर घेरा है ।।

दिन के दिनकर रजनी में, अब
चंद्र प्रभा से स्नान करो !....गुरूवर थोड़ा विश्राम करो !

●●●

"शेर पिंजड़े में बन्द रहकर भी शेर कहलाता है ।"
—'पृथ्वीराज की आँखें' से

× × ×

"जल जैसी कोमल वस्तु को भी संसार के संघर्ष का अनुभव करना पड़ता ।"
—'एक्ट्रेस' से

× × ×

"सौन्दर्य एक दैवी वरदान है, उसके लिये शब्दों की आवश्यकता नहीं है ।"
—'शिवाजी' से

× × ×

"धर्म का उपदेश तो उसे करना चाहिये जो धर्म की बात सुनता है ।"
—'रम्य रास' से

विद्यार्थी जीवन के मेरे साथी रामकुमार

प्रो० ओंकार प्रसाद भटनागर, अध्यक्ष, इतिहास, विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय

मेरे मित्र और सहयोगी डॉ० रामकुमार वर्मा इस वर्ष मई मास में यूनीवर्सिटी से अवकाश ग्रहण कर लेंगे। मेरा उनका सन् १९२७ से साथ है। इस वर्ष मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में बी. ए. की प्रथम वर्ष की कक्षा में प्रवेश के लिये आया और हालैण्ड हाल छात्रावास में प्रविष्ट हुआ। डॉ० रामकुमार उस समय एम. ए. हिन्दी के विद्यार्थी थे। प्रथम वर्ष के विद्यार्थी को छात्रावास में कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। किन्तु रामकुमार की सहानुभूति तथा सहृदयता से मुझे कोई कठिनाई अनुभव न हुई। हम दोनों हालैण्डहाल छात्रावास के आक्सफ़र्ड कोर्ट के एक ही ब्लाक में रहते थे और प्रतिदिन भेंट होती थी।

हालैण्डहाल छात्रावास का जीवन बड़ा सखमय था। वातावरण स्वच्छन्द था और सभी बातें सुसंगठित थीं। आपस में छात्रों में स्नेह और मैत्रीपूर्ण भावना थी। सन् १९२७ से १९३१ का समय ऐसा था जिसमें नवयुवकों के सामने देश की स्वतन्त्रता का महान् आदर्श था। प्रतिदिन प्रातः काल समाचार पत्रों में गांधी जी के विचारों को पढ़कर हम सब प्रेरणा पाते और घण्टों उन पर तर्क-वितर्क करते रहते। महीने में छात्रावास में एक-न-एक गोष्ठी होती रहती जिसकी चर्चा सदैव रहती। राम कुमार को हम सब कविवर कहा करते और उनसे आग्रह करते कि वे अपनी कविता सुनाएँ। देश और गाँधी जी के प्रति उनके अनुराग से हम सब भलीभाँति परिचित थे।

अंग्रेज़ी भाषा का उस समय आधिपत्य था और हम सब अंग्रेज़ी में ही अधिक बोलते थे किन्तु रामकुमार के बोलचाल की और काव्य की भाषा से हम सब मुग्ध हो जाते थे उनका कविता सुनाने का ढंग ही अनूठा था। कंठ तो अब भी मीठा है किन्तु उस समय तो उनकी कविता सुन कर हम सब थकते ही न थे, और एक के बाद दूसरी कविता सुनाने का सदैव आग्रह करते रहते थे। छात्रावास में प्रति वर्ष वार्षिक समारोह के अवसर पर अंग्रेज़ी और हिन्दी नाटक खेले जाते थे। एक वर्ष रामकुमार ने नाट्य निर्देशन किया और समारोह बड़ा सफल रहा। उस समय हम न जानते थे कि रामकुमार इतने बड़े नाट्यकार हो जावेंगे।

विश्वविद्यालय से डिग्री प्राप्त कर राम कुमार जहाँ तक मुझे स्मरण है सन् १९२९ में हिन्दी विभाग के अध्यापक नियुक्त हुए। प्रारंभ से ही उनके व्यक्तित्व और विद्वत्ता का प्रभाव सब पर पड़ा। कुछ वर्षों बाद विश्वविद्यालय में मुझे भी अध्यापक बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और मेरा और उनका विद्यार्थी जीवन का सम्पर्क और भी दृढ़ होता गया। रामकुमार

की जो सांस्कृतिक देन है और जिन क्षेत्रों में उन्होंने कार्य किया है उससे सभी साहित्यिक परिचित हैं और उस पर मुझे कहने का अधिकार भी नहीं है।

मेरा और रामकुमार का साथ अनेक अवसरों पर सांस्कृतिक योजनाओं में कार्य करने का हुआ है। विश्वविद्यालय की कई संस्थाओं में मैंने उनके साथ हिस्सा बँटाया है। मुझे उनसे वही स्नेह और सहानुभूति मिली जो मुझे छात्रावास के प्रथम वर्ष के जीवन में मिली थी। उनका स्नेह मेरे प्रति न केवल मित्र का किन्तु भाई का भी है।

मन यह सोचना ही नहीं चाहता कि रामकुमार इस वर्ष अवकाश ग्रहण कर लेंगे। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी विभाग के पहिले अध्यक्ष थे उनके उत्तराधिकारी रामकुमार हुए। दोनों की लगन और साधना ही द्वारा हिन्दी विभाग को देश के विश्वविद्यालयों में प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। हिन्दी भवन के निर्माण के लिए रामकुमार को ही श्रेय है। इस विभाग की बहुत-सी योजनाएँ उनकी प्रेरणा द्वारा ही सफल हुई हैं। स्वाभाविक है, विश्वविद्यालय से ऐसे विद्वान और साहित्यिक का जाना हम सब को खले। उनको और हम सबको सांत्वना इसी में है कि विभाग में ऐसी परम्परा बन गई है जिससे स्तर दिन पर दिन बढ़ता ही रहेगा।

अवकाश ग्रहण करने के बाद हमें पूर्ण आशा है कि रामकुमार की प्रतिभा और भी विकसित होगी और उनकी साहित्यिक साधना का प्रभाव और अधिक बढ़ेगा। समय की गति बड़ी प्रबल है। शैशव, यौवन और वृद्धावस्था प्रकृति के नियम हैं उनके आगे किसी का बस नहीं चलता। मैं रामकुमार से शुभस्नेह की सदैव आशा रखता हूँ, और उनके स्वास्थ और शतायु होने की शुभकामना करता हूँ।

● ● ●

"जो अपने को जितना शरीफ साबित करना चाहता है, उस पर उतने ही ज्यादे शक की गुंजाइश हो जाती है।"

—'रंगीन स्वप्न' से

*   *   *

"दुनिया बन गयी है रेसकोर्स और हर एक आदमी बन गया है घोड़ा—तेज़ भागने वाला घोड़ा।"

—'पृथ्वी का स्वर्ग' से

हिन्दी विभाग और उसकी उदार बौद्धिक परम्परा

डॉ० रघुवंश, हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय

●

कभी सोचता हूँ कि यह मैं निर्वाधित और स्वच्छन्द कैसे बढ़ सका हूँ ? और इस बात का अनुभव तब और अधिक हुआ है जब मैंने अन्य जगहों के वातावरण के बीच घुटन का एहसास किया है। यह इलाहाबाद शायद ऐसी जगह है, यहाँ के वातावरण में भी कहीं कुछ ऐसा है जो समर्पित और आरोपित व्यक्तित्वों के अनुकूल नहीं है। यहाँ हर आदमी को अपने पैरों पर खड़े होने का अभ्यास करना होता है, और हर व्यक्ति जैसे खुद खड़े होने की कोशिश में गौरव का अनुभव करता है, वैसे ही दूसरे की कोशिश को सम्मान की दृष्टि से भी देखता है। बाहर के लोग इसे शंका की नज़रों से देखते हैं, हमें लगता है कि शुद्ध और खुला जलवायु उन्हें ख़तरनाक लगता है।

इलाहाबाद की यह फ़िज़ा इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सहयोग के बिना शायद पैदा न हो पाती और साहित्य के माहौल में उसके हिन्दी विभाग का भी अपना हाथ रहा है, ऐसा माना जा सकता है। इस दृष्टि से रामकुमार वर्मा विभाग के केन्द्रीय व्यक्ति माने जा सकते हैं। धीरेन्द्र जी यदि इसके व्यापक प्रतीक रहे हैं तो रामकुमार जी केन्द्रीय व्यक्तित्व। वे साहित्यिक दृष्टि से एक खास युग के व्यक्ति रहे हैं, और वह युग समग्र रूप से भी विशिष्ट रहा है। फिर भी उन्होंने अपने को किसी रूप में कभी आरोपित नहीं किया, सभी प्रवृत्तियों को विकसित होने का मौका दिया। उनके साथ और उनके सम्पर्क में, कभी तो उनके संरक्षण में ही ऐसी विचार-धाराओं और रचनात्मक प्रतिभाओं को विकसित और सक्रिय होने का मौका मिला जो उनके संस्कार और विश्वास के प्रतिकूल रही हैं।

मैं कह सकता हूँ कि उनके इस व्यापक और उदार व्यक्तित्व का मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है। उनसे पढ़ते समय, उनके साथ विचार करते समय, शोध कार्य में निर्देशन लेते समय और बहस करने में भी कभी ऐसा नहीं लगा वे अपने विचारों पर बल दे रहे हैं, सदा उनका प्रभाव व्यक्तित्व को स्वच्छन्द विकसित होने देने में ही परिलक्षित हुआ। अपने आप को खोलने में उनके सामने हमको कभी कोई संकोच नहीं हुआ और वे सरल सहज ढंग से सभी को आगे बढ़ा देते रहे हैं। प्रायः प्रतिभाओं के व्यक्तित्व में यह भारी कमी विकृति की सीमा तक पायी जाती है कि वे अपने संरक्षण में पनपने वाले पौधों का रस स्वयं ग्रहण तो करते हैं पर उन्हें विकसित होने का अवसर नहीं देते, यह उनकी प्रतिभा का अंग ही लगता है। रामकुमारजी ऐसी रचनात्मक प्रतिभा रहे हैं जिसने अपने नीचे बढ़ने वाले सभी पौधों को खुलकर बढ़ने और विकसित होने का अवसर इस सीमा तक दिया है कि लोग उनकी निहित प्रतिमा को पहचानने में ही भ्रम करते हैं।

डॉ० साहब के व्यक्तित्व में ऐसी सहज सरलता है जो व्यावहारिक दृष्टि से दोष की सीमा तक जान पड़ती है। वे न तो किसी का जी दुखा सकते हैं और न किसी को दण्ड दे

सकते हैं। शायद उनके मन का गहरा आस्तिक संस्कार उन्हें यह वैष्णव भाव देता है, पर इसका परिणाम प्रायः यह भी होता है कि अयोग्य और अवांछित व्यक्ति उनके समीप आ जाते हैं और उन्हें मन या बेमन से उनके कुछ कार्यों में सहयोग देना पड़ जाता है। पर यह भी है कि वे अपनी आन्तरिक कोमलता के कारण ऐसे लोगों के चक्र विफल भी कर देते हैं। उनमें आसक्त होकर भी अनासक्त रहने की सहज प्रतिभा है, जो एक ओर स्वतंत्र विकास का सबको अवसर देती है, तो दूसरी ओर अनधिकारियों से उनकी रक्षा भी कर लेती है।

[२] डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, हि० वि० प्रयाग विश्वविद्यालय

बिना किसी अतिरंजना या दंभ का खतरा मोल लिए हुए यह कहा जा सकता है कि प्रयाग विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग राष्ट्रीय स्तर पर यश और सम्मान का भागी रहा है। इस स्थिति का अधिकतर श्रेय विभाग के पहले अध्यक्ष डॉ० धीरेन्द्र वर्मा को है। उन की जिन अनेक कार्य-पद्धितियों के आधार पर यह विकास संभव हो सका उन में प्रमुख है विभाग के प्रत्येक सहयोगी को अपने ढंग से विकसित होने के लिए पूरे अवसर और समुचित वातावरण प्रदान करना। डॉ० वर्मा की कई पद्धतियों का उपयोग अन्य स्थानीय विभागों के गठन में सफलतापूर्वक किया जाता रहा है, पर इस अपेक्षया सूक्ष्म और कठिन प्रक्रिया को सर्वत्र कार्यान्वित करना हमेशा संभव नहीं हुआ।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा वैदिक संस्कृत के विद्यार्थी थे, और भाषाशास्त्र उनका प्रमुख कार्य-क्षेत्र रहा। इन उपकरणों के साथ उन्होंने आधुनिक साहित्य के एकदम नए विभाग को जिस कुशलता और संवेदनशीलता से संचालित किया उससे आज हिन्दी का प्रत्येक जागरूक विद्यार्थी परिचित है। सिद्ध-साहित्य से लेकर अज्ञेय तक के आस्वादन में उन्होंने अपने को खुला रक्खा, और छायावाद से लेकर नयी कविता तक का विकास प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के सहयोग में चलता रहा।

डॉ० रामकुमार वर्मा स्वयं इस सर्जनात्मक संचरण की आरंभिक और श्रेष्ठतम उपलब्धियों में से हैं। जब विभाग के संचालन का दायित्व डॉ० धीरेन्द्र जी के अवकाश ग्रहण करने के बाद उन के ऊपर आया तो बड़ी सावधानी के साथ उन्होंने विभाग की इस मर्यादा और कार्य-प्रक्रिया को समझा। डॉ० रामकुमारजी स्वयं एक सर्जनशील साहित्यकार होने के कारण साहित्यिक पक्षधरता से आक्रांत होने की स्थिति में अधिक थे। पर उन्होंने अपने सिद्धान्तों को विभाग के अन्य सहयोगियों—खास तौर से जब कि वे उनके शिष्य भी रहे हों—के लिए आग्रह कभी नहीं होने दिया। इस तरह रचना और विचार-प्रक्रिया की संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्नता को उन्होंने सम्मान दिया, और विभाग के बौद्धिक संचरण की प्रजातांत्रिक पद्धतियों को सदैव ऊपर रक्खा। जो कार्य डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने आरंभ किया था उसे डॉ० रामकुमार वर्मा ने निष्ठा और समझ के साथ आगे बढ़ाया, और इसी का परिणाम है कि छायावाद और नयी कविता के बीच वैयक्तिक स्तर का मनोमालिन्य या संघर्ष उन्होंने कभी नहीं होने दिया। भविष्य के इतिहासकार विश्वविद्यालयीय क्षेत्र में साहित्य के इस स्वाधीन विकास का समुचित मूल्याँकन करेंगे; इस समय जब सैंतीस वर्षों की लम्बी अवधि तक अध्यापन करने के बाद डॉ० राम-कुमार जी अवकाश ग्रहण कर रहे हैं तो हम जो उनके शिष्य और सहयोगी रहे हैं, उनके प्रति सहज कृतज्ञता का अनुभव करते हैं। यह अनुभव हमारे लिए अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है, जो गुरु और शिष्य दोनों ही के व्यक्तित्वों को एक साथ समृद्ध करता है।

डॉ० रामकुमार वर्मा

आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र

●

यथार्थ जीवन की अनुकृति ही नाटक है। दैनिक जीवन में मोड़ लानेवाली घटनाओं का अनुसरण करने में ही नाटक का मूल सन्निहित है, जीवन की छाया ही नाटक में प्रतिविम्बित होती दिखायी देती है। नाट्यशास्त्र के आचार्य भरतमनि ने नाटक को "त्रैलोकस्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्त्तनम्' कहा है अर्थात् नाटक तीनों लोकों के भावों का अनुकरण है। वास्तव में नाटक इस प्रकार का काव्य है जो रंगमंच पर दर्शकों के समक्ष विभिन्न हावों भावों द्वारा अभिनीत किया जाता है।

नाटक साहित्य की एक विशेष विधा है। वैसे तो साधारण साहित्य की प्रभाविष्णुता ही बहुत तीव्र और स्थायिनी होती है। जितनी शीघ्रता के साथ साहित्य का प्रभाव मनुष्य मात्र के ऊपर पड़ता है उतना किसी और वस्तु का नहीं। उसकी भावात्मक सत्ता इतनी गहराई तक उस प्रभाव से आक्रान्त होती है कि शीघ्रता से मुक्त नहीं हो पाती। मनुष्य चिरकाल तक साहित्य की उन भावानुभूतियों को अपने हृदय से निष्कासित नहीं कर सकता। किन्तु नाटकों के रूप में उदित हुए असाधारण साहित्य की प्रभविष्णुता उस प्रकार के साहित्य से चतुर्गणा तीव्र और स्थायिनी होती है। और साथ साथ नाटकों के साहित्य में आनन्द सृष्टि अपनी क्षमता भी उससे कई गुणा अधिक होती है। पर ऐसी नाटककृतियाँ साहित्य में बहुत ही कम उपलब्ध होती हैं जिनमें यथार्थ जीवन की अनुकृति या दैनिक जीवन में मोड़ देनेवाली घटनाओं को अनुसरण करने की प्रतिभा के सम्यक्रूप से दर्शन होते हों। ऐसी नाटककृतियों के सृजन करने में वे ही नाटककार समर्थ होते हैं जो सम्पूर्णसाहित्य अपनी समस्त विचारधाराओं एवं दर्शन की अनुभूति से भविष्यदृष्टि, समग्रयुग जीवन और साहित्य को एकसूत्र में बाँधने की क्षमता रखते हों।

डॉक्टर रामकुमार वर्मा इसी कोटि के नाटककार हैं। वास्तव में देखा जाय तो डॉ० रामकुमार वर्मा ने जिस समय एकांकी नाटकों का लिखना प्रारम्भ किया था उस समय हिन्दी साहित्य में एकांकी का रूप प्राय: अनिश्चित सा ही था। असाधारण विशिष्ट प्रतिभाशाली डॉ० रामकुमार वर्मा ने युग और रंगमंच की कठोर शिला पर अपने अनुभव और संस्कार द्वारा जो मनोरम मनोभावात्मक पुष्प खिलाये वे भारतीय भूमि पर अमर सौरभ से परिपूर्ण हैं। डॉ० वर्मा ने सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक समस्याप्रधान और व्यंग्यपूर्ण अनेक मौलिक सफल एकांकियों की सृष्टि की है। और हृदय को अधिक से अधिक स्वाभाविकता के साथ स्पर्श करनेवाली परिस्थितियों एवं पात्रों का निर्माण करने में वे अपने ढंग के हिन्दी साहित्य में

अद्वितीय लेखक हैं। पात्रों की मानसिक परिस्थितियों के अनुसार ही घटनाओं की क्रिया और प्रतिक्रियाओं के रूप में सम्वादों का प्रयोग डॉ० वर्मा की अपनी एक ऐसी विशिष्टता है जो प्राय: दूसरे एकांकियों में नहीं है। भाषा के कलात्मक सौन्दर्य के साथ हृदय को स्पर्श करने-वाली अनुभूतिजन्य लयात्मक सरस पंक्तियों का प्रयोग भी डॉ० वर्मा का अपना एक अद्भुत कौशल है। इनके ऐसे एकांकियों को देखकर कौन ऐसा साहित्यिक है जिसका मन उनकी लेखनी को शतबार धन्य कहने के लिए मचल नहीं उठता। निस्सन्देह डॉ० वर्मा अपनी इन विशिष्टताओं के कारण प्रेमचन्द की तरह अपने एकांकीक्षेत्र में एकांकी सम्राट् हैं।

प्रारम्भ में ही सन् १९३० में रचित उनके सर्वप्रथम 'बादल की मृत्यु' ने अपना राह में भटकते हिन्दी साहित्य के एकांकीजगत को उसका अपना सही रास्ता बताया, सच्चा पथ दिखाया। यह एकांकीसम्राट् डॉ० रामकुमार वर्मा का नाटकीय क्षेत्र में एक युगान्तरकारी कार्य था।

तब से आजतक वे एकांकी नाटकों के जागत को अपना विशिष्ट प्रतिमा के धन से निरन्तर समृद्ध से समृद्धतम बनाते जा रहे हैं। उनके नाटकों में वर्तमान जीवन संघर्ष के बीच भारतीय आदर्श और भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा का ऐसा पूर्णप्रयास देखने को मिलता है जो प्राय: अन्य नाटकों में नहीं मिलता।

डॉ० रामकुमार वर्मा केवल एकांकी नाटकों के जगत के ही सबसे अधिक सम्पन्न व्यक्ति नहीं हैं, उनकी प्रतिभा ने साहित्य की अन्य दूसरी विधाओं में भी अपना चमत्कार प्रदर्शित किया है। वे जैसे सफल नाटककार हैं वैसे ही सफल कवि भी हैं। उनकी अनेक रससम्पृक्त भावभीनी कविताओं के साथ उनका एकलव्य महाकाव्य कविता क्षेत्र में बहुत ही सफल और पांडित्यपूर्ण कृति है। साथ साथ आलोचना निबन्ध आदि हिन्दी साहित्य में उनके और भी अनेक प्रशंसनीय कार्य हैं।

हिन्दी साहित्य के भन्डार को अपनी विशिष्ट प्रतिभा के धन से समृद्ध से समृद्धतम बनाकर भी जैसे नाटककार और सुकवि डॉ० रामकुमार वर्मा का मन अभी भी भरा नहीं है। जब अवकाश मिलता है लिखते ही रहते हैं और लगता है जब तक कर्मठ रामकुमार वर्मा के हाथों में अपनी लेखनी को ग्रहण करने की क्षमता बनी रहेगी वे लिखते ही जायंगे। हिन्दी साहित्य के भन्डार को अपने रत्नों से भरते ही जायेंगे।

ऐसे विशिष्ट प्रतिभाशाली साहित्यकार के विषय में कुछ अधिक कहना जिसे उसकी युगान्तरकारी रचनाओं ने अपने युग का प्रतिनिधि बना दिया हो, सूर्य को दीपक दिखाना है।

बस मैं इतना ही कहकर हिन्दी साहित्य का एक छोटा सा भक्त होने के कारण स्वनामधन्य डॉ० रामकुमार वर्मा के लिए कामना करता हूँ, हिन्दी साहित्य में उनकी लेखनी द्वारा विकसित सुरभित पुष्प भारतीय भूमि पर जन जन के प्रिय कंठहार बनें और सर्वदा विश्वभर के हृदय को अपनी सुरभि से स्पर्श करते रहें।

● ● ●

पाँच-व्यक्तित्व

हरिश्चन्द्र पाठक एम० ए० पूर्वार्द्ध (हिन्दी)

पात्र

●

१. श्री रामकुमार वर्मा (वर्मा जी)
२. कवि रामकुमार वर्मा
३. डॉ० रामकुमार वर्मा
४. प्रोफेसर रामकुमार वर्मा
५. नाटककार रामकुमार वर्मा

[स्थान : श्री रामकुमार वर्मा जी का मानस पटल]

वर्मा जी : बाल भी सफेद हो चले। और बालों का सफेद होना बुढ़ापे की निशानी है। बुढ़ापा ? यह तो यौवन के बाद की अवस्था हैं। क्या यौवन बीत गया ! क्या वह हमेशा के लिए चला गया। क्या वह कभी नहीं आएगा ? क्यों कवि ! क्या यौवन के दिन बीत गए !

कवि : निस्संदेह वर्मा जी। वह दिन हवा हुए जब पसीना गुलाब था। कली जीवन में केवल एक बार खिलती है। यह प्रकृति का शाश्वत नियम है।

वर्मा जी : (विश्वास न करत हुए) क्यों डॉक्टर ! क्या कवि सच कह रहा है ? क्या यौवन दुबारा नहीं आ सकता।

डॉक्टर : (परेशान सी मुद्रा में) क्या बेकार की बातें सोचते रहते हो। मैं नहीं जानता, कवि से ही करो ये बातें।

वर्मा जी : तुम तो नाराज हो गए डॉक्टर ! तुम पढ़े-लिखे हो, इसलिए मैंने तुमसे समर्थन चाहा था। तुम ही नहीं जानते तो और कौन बताएगा।

डॉक्टर : तुम्हारी बोलने की आदत दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। जब देखो कोई न कोई समस्या लिये रहते हो।

वर्मा जी : और, तुम्हारी आदत दिन पर दिन चिड़चिड़ी होती चली जा रही है। कोई बात पूछो तो, जवाब ही नहीं देते। झल्ला उठते हैं। तुम्हें मेरी बातें पसन्द नहीं तो मैं नहीं बोलूँगा।

[अचानक प्रोफ़ेसर साहब की आवाज]

प्रोफेसर : क्या बक-बक लगा रक्खी है । कभी भी चैन से कुछ मनन नहीं करने देते । क्या बात है डॉक्टर !

डॉक्टर : कुछ नहीं, हाँ एक बात है ।

प्रोफेसर : कहिए, क्या सोच रहे हैं ?

डॉक्टर : बात यह है प्रोफेसर ! कल तुम कक्षा मत लेना ।

प्रोफेसर : क्यों ? यह कैसे हो सकता है ? मेरा कोर्स पिछड़ा पड़ा है, और तुम कहते हो क्लास मत लेना । मैं नहीं मानता ।

डॉक्टर : सुनिए तो सही ।

प्रोफेसर : कहिए ।

डॉक्टर : मुझे एक आवश्यक कार्य से बाहर जाना पड़ रहा है । वैसे मैं कल रात तक लौट आऊँगा ।

प्रोफेसर : देखिए, आप की वजह से मेरा कोर्स पिछड़ जाता है । और आप हैं कि आज कहीं जा रहे हैं, कल कहीं ।

कवि : जाने क्यों नहीं देते । जब कहीं से आदर पूर्वक निमन्त्रण आता है, तो उसे टाला नहीं जाता ।

प्रोफेसर : तुम चुप रहो कवि ! हर बात में टाँग मत अड़ाया करो ।

डॉक्टर : अरे, नाराज न होइए, प्रोफेसर साहब !

प्रोफेसर : आप नहीं जानते डॉक्टर ! ये कवि जी सदैव ऐसी ही बातें करते हैं । मैं तो इनसे वैसे भी परेशान हूँ । कक्षा में मैं पढ़ा रहा होता हूँ तब भी ये बीच में आ टपकते हैं । मैं तो विषयगत चर्चा कर रहा होता हूँ, और ये जबरदस्ती बीच-बीच में बोलने लगते हैं ।

डॉक्टर : क्यों कवि ! क्या बात है ?

कवि : बात साधारण सी है । प्रोफेसर साहब हिन्दी पढ़ाते हैं, और आप जानते हैं कि हिन्दी से मुझे कितना प्रेम है । इसीलिए सरस प्रसंग आने पर मुझसे रहा नहीं जाता ।

डॉक्टर : खैर छोड़िए ये बातें । मुझे जाने की तय्यारी करनी है ।

नाटककार : तय्यारी ? तय्यारी क्या करनी है । गाड़ी दस बजे जाती है । अभी सात बजा है । तीन घंटे बाकी हैं । मैं तब तक अपना नाटक लिख लूं । थोड़ा सा ही भाग लिखना शेष रह गया है ।

डॉक्टर : अरे, लौटकर लिख लीजिएगा ।

नाटककार : लौटकर कैसे ? परसों को मुझे उसे विद्यार्थियों को दे देना है । वे इसे स्टेज पर प्रस्तुत करने वाले हैं । उन सब से मैंने परसों का वादा किया है ।

डॉक्टर : जब आपके पास समय नहीं रहता तो आप ये झंझट मोल क्यों ले लेते हैं ?

नाटककार : यह विभाग का मामला है ।

डॉक्टर : तो फिर पूरा कीजिए वादा ।

कवि : वादा नही वादे डॉक्टर साहब !

डॉक्टर : क्या मतलब

कवि : मतलब यह कि इन्होंने, परसों जो सम्पादकजी आए थे, उन्हें एक कविता देने का वादा भी किया है ।

डॉक्टर : यह कविता कब तक देनी है ?

कवि : शीघ्रातिशीघ्र ।

डॉक्टर : तो क्या यह भी आप अभी ही लिखेंगे ?

कवि : देखिए समय मिला तो । वैसे वर्मा जी आज काफी थके हुए से लग रहे हैं । क्यों वर्मा जी ?

वर्मा जी : हाँ भई, जरा सा समय है, इतने सारे काम हैं । मैं क्या करूँ और क्या न करूँ, समझ में कुछ नहीं आता । अब इस उम्र में जहाँ आराम मिलना चाहिए, वहाँ काम पर काम बढ़ते चले जाते हैं । समय कम है, और जिम्मेदारियाँ ज्यादा हैं, देखो, कहाँ तक चल पाता हूँ......।

[सरकार, खाना खा लीजिए । नौकर की इस आवाज से चौंककर वर्मा जी का ध्यान टूट जाता है ।]

● ● ●

"राजनीति स्त्रियों की विनयशीलता से तरल नहीं हुआ करती ।"

—'सम्राट् विक्रमादित्य' से

× × ×

"राजनीति भी कोई राजनीति है यदि उससे सच्ची सेवा और सच्चे प्रेम में सन्देह उत्पन्न हो जाय ।"

—'चारुमित्रा' से

डॉ० रामकुमार वर्मा के बहुमुखी व्यक्तित्व का एक पहलू

[राष्ट्र कवि के रूप में डॉ० रामकुमार वर्मा]

राधेश्याम त्रिपाठी, एम० ए० उत्तरार्द्ध (हिन्दी)
(साहित्यिक सचिव, सर प्र० च० बनर्जी छात्रावास, प्र० वि०)

●

अध्यात्म लोक की सुरम्य वीथिकाओं में भ्रमण करने वाला महाकवि इसी लोक से वहाँ तक पहुँचा था तथा आज भी उसने इस लोक को छोड़ा नहीं है। डॉ० वर्मा के छायावादी तथा रहस्यवादी व्यक्तित्व ने उनके व्यक्तित्व के एक महत्वपूर्ण पक्ष को धूमिल सा कर दिया है, परन्तु जब महाकवि के जीवन तथा उसके काव्य के विकास पर विचार किया जाता है तो स्पष्ट होता है कि डॉ० वर्मा का सच्चा व्यक्तित्व तो कुछ और ही है।

सन् १९२१। राष्ट्रीय-स्वतन्त्रता संग्राम तेजी से चल रहा था। श्री रामकुमार जी दसवीं कक्षा के छात्र थे। नरसिंहपुर में मौलाना शौकत अली ने विद्यार्थियों की भरी सभा में ललकारा:—"बच्चों ! तुम गुलाम बनाने वाली तालीम को क्यों पढ़ते हो।.........। यहाँ बैठे हुए विद्यार्थियों में से कोई ऐसा माई का लाल है जो खड़ा होकर यह कह सके कि 'मैं कल से स्कूल छोड़ रहा हूँ।' बोलो है कोई ऐसा माई का लाल ?" वातावरण शान्त हो गया। कुछ ही क्षण बीत पाये थे कि वातावरण की नीरवता एकाएक भंग हो गयी। किशोर रामकुमार ने अध्ययन स्थगित करने की सौगन्ध ले ली। परिवार के लोगों के तीव्र विरोध करने पर भी आपने पढ़ना छोड़ दिया तथा कांग्रेस के कार्यकर्त्ता बन गये। गाँवों में घूम-घूमकर वक्तृता देने तथा प्रभात फेरी में सम्मिलित होने लगा डिप्टी कलक्टर का यह सुकुमार बालक। यहीं से काव्य प्रतिभा का जन्म भी इस किशोर में हुआ। प्रभातफेरी के लिए गीतों की रचना की आवश्यकता ने आपको गीत रचने के लिए विवश किया। इस प्रकार डॉ० वर्मा के काव्य की प्रमुख प्रेरणा राष्ट्र भक्ति रही है। सन् १९२२ में 'देशसेवा' नामक कविता पर १६-१७ वर्ष के 'कुमार' को 'खन्ना पुरस्कार' मिला। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

"जिस भारत की धूल लगी है मेरे तन में।
क्या मैं उसको कभी भूल सकता जीवन में।

× × ×

सेवा करना देश की बस मेरा उद्देश्य है।
मैं भारत का हूँ सदा, भारत मेरा देश है॥"

प्रभात फेरी के लिए जिन गीतों की रचना यह तरुण कवि करता था वे स्वभावत: राष्ट्र-भक्ति से ओत-प्रोत थे। इन गीतों में से एक की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार थीं:—

"नहीं डरेंगे, नहीं डरेंगे तोपों से तलवारों से,
नहीं डरेंगे, पैने पैने हथियारों के वारों से,
नहीं डरेंगे, दिल दहलाने वाले अत्याचारों से,
नहीं डरेंगे, लेशमात्र भी भीषण कारागारों से,

× × ×

मरने की परवाह नहीं, स्वाधीन देश बस हो जावे।
सारा क्लेश पंक भारत का क्षणभर में ही घुल जावे॥
फिर स्वतन्त्रता का प्रिय झंडा दिग-दिगन्त फहराएगा।
यह भारत फिर से स्वतन्त्र हो देश रत्न कहलाएगा॥"

आज तो राष्ट्र-प्रेम की राग अलापने वाले करोड़ों मिलेंगे पर उस समय स्वतन्त्रता का नाम लेना कारागार जाने की तैयारी था। डॉ० वर्मा के उक्त गीत ने कितने सोते हुए नवयुवकों की नींद खोली होगी, कितनों को मातृ-भू के लिए बलिदान हो जाने के लिए आमन्त्रित किया होगा।

डॉ० वर्मा ने उस समय गाँधी जी की प्रशस्ति में भी कुछ गीत लिखे थे जिनमें से एक का कुछ अंश निम्नांकित था—

घोरि घन छाय रहे, बारि बरसाय रहे,
घुरवा घुमड़ तम-तोम व्योम कीनो है।

× × ×

ऐसे अवसर बीच धीर वीर गान्धी ने,
जाहिर जहान को महान ज्ञान दीनो है।
सुख के दिवाकर को पूर्ण प्रकाश कियो,
मोहन की मुरली ने विश्व मोह लीनो है।"

उस समय गाँधी की प्रशस्ति भारत-राष्ट्र की ही प्रशस्ति थी। उस समय गाँधी राष्ट्र का पर्याय बनते जा रहे थे।

वर्मा जी के गीतों में भी राष्ट्रीयता का मन्दस्वर कभी-कभी सुनाई पड़ जाता है। '१४ अगस्त की रात्रि में'—नामक गीत में वर्मा जी की राष्ट्रीय भावना मुखरित हुयी है। आपके इस गीत के अनुसार जैसे कृष्ण ने आधी रात में जन्म लिया था, कंस के अत्याचारों से मुक्ति दिलाने के लिए, उसी प्रकार परतन्त्रता की बेड़ी से मुक्ति दिलाने के लिए स्वराज्य का उदय भी आधी रात में ही हुआ।

डॉ० वर्मा ने अपने ऐतिहासिक खण्ड काव्य 'वीर-हमीर' का मंगलाचरण भी जिन शब्दों में किया है उससे आपका राष्ट्र-प्रेम ही व्यक्त होता है:—

'हे दयामय इस हृदय में मातृ भू की भक्ति दो।
सर्वदा परहित करें ऐसी सदा शुभ शक्ति दो॥

स्वर्ग-सुख अनुभव करें, जग में असार शरीर से।
भव्य भारतवर्ष में हो पुत्र वीर हमीर से॥"

भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्र भक्ति का स्वरूप स्वभावतः ही बदल गया, आज तो समाजवाद, वर्गभेद का विनाश तथा राष्ट्र का भावानात्मक एकीकरण-यही राष्ट्र प्रेम के मुख्य अंग हैं। आपके महाकाव्य 'एकलव्य' में ये विचार धारायें पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं।

भारतीय समाज में अछूतोद्धार की महत्वपूर्ण समस्या आज भी पूर्ववत् बनी हुयी है। वर्ग-भेद तथा साम्प्रदायिकता को मिटाने के लिए गाँधी जी जैसे महामानव ने अपने प्राणों की आहुति दे दी पर समस्या का अन्त न हुआ। महाकवि डॉ० वर्मा ने अपने अप्रतिम महाकाव्य द्वारा इस समस्या पर विचार किया है। एकलव्य के द्वारा इसकी व्यर्थता पर आक्रोश व्यक्त कराया है। किसी एक पात्र के माध्यम से कवि बोलता है। इसमें भी एकलव्य के मुख से कवि बोल रहा है—

'किन्तु जब मानव को विद्या का निषेध हो,
बात क्या नहीं है क्रान्तिकारी बन जाने की।'

१६-१७ वर्ष की अवस्था में जो व्यक्ति राष्ट्र-प्रेम के कारण गली गली खद्दर बेचा करता था वह समाज के इस कोढ़ को मिटाने के लिए,—क्रान्तिकारी बन सकता है—ऐसा मेरा विश्वास है। भूमिपति तथा भूमिपुत्र शब्दों का प्रयोग कर के कवि बार-बार समाजवाद तथा शोषक एवं शोषित वर्ग की याद दिला रहा है। समाजवाद की वर्ग संघर्ष की मान्यता में भी कवि का विश्वास टपकता है। वैसे, महाकवि का किसी राजनैतिक दल से कोई सम्बन्ध नहीं पर वर्ग हीन समाज की व्यवस्था का स्वप्न तो वह देखता ही है।

इस ग्रन्थ द्वारा कवि 'जन जन मानस को एकरूप...' कर देना चाहता है। भारत को आज आवश्यकता भी तो भावनात्मक एकीकरण की है।

इस प्रकार पद्मभूषण डॉ० रामकुमार जी वर्मा एक सच्चे राष्ट्र-कवि के रूप में भी किसी महाकवि से पीछे नहीं हैं। उनकी बहुमुखी प्रतिभा का सम्यक् मूल्यांकन इस पहलू को भूलकर नहीं किया जा सकता।

● ● ●

"युद्ध अधिकार लिप्सा है, अन्त नहीं"
—'चारुमित्रा' से

श्रद्धेय डॉ० रामकुमार वर्मा

विजय नारायण शिलावन 'मनोज' बी० ए० प्रथमवर्ष

●

यदि संतुलन और समन्वय जीवन की कला है, तो डॉ० रामकुमार वर्मा सफलता और कुशलता के साथ जीने की कला के एक आदर्श एवं अनुकरणीय कलाकार हैं। कैसे जीना चाहिए, यह कोई उनसे सीखे। उनकी कला केवल साहित्य के ही क्षेत्र में नहीं निखरती, वह जीवन के क्षेत्र में उसी कुशलता के साथ दिखाई पड़ती है। प्रत्येक कार्य को सुन्दर और व्यवस्थित रूप से करने की उनमें चाह है और यहीं वे अन्यों से भी आशा करते हैं। साहित्य में उच्छृङ्-खलता को वर्मा जी सहन नहीं करते हैं।

वर्मा जी अपने विद्यार्थी, साहित्यिक एवं मानवीय तीनों रूपों में सफल रहे हैं। आरम्भ से ही वे अत्यंत कुशाग्रबुद्धि के बालक थे। आपने समस्त परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० (हिन्दी) में प्रथम श्रेणी प्राप्त करने वाले आप प्रथम विद्यार्थी हैं। आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने उसी वर्ष आपकी नियुक्ति हिन्दी विभाग के व्याख्याता के रूप में कर दी।

विनोद आपके स्वभाव की प्रमुख विशेषता है। कभी-कभी तो ईश्वर से भी विनोद करने लगते हैं। जब वे आठवीं कक्षा के छात्र थे, तब उन्होंने इस प्रकार तुकबन्दी की थी—

ईश्वर मुझको पास कराओ अब,
और मिठाई खूब सी खाओ तब।

डॉक्टर वर्मा आधुनिक हिन्दी निर्माताओं में से एक हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य की महत्व-पूर्ण सेवा की है। विद्यार्थी काल से उनका साहित्यिक रूप निखरने लगा था। जब वे इन्टर-मीडिएट के विद्यार्थी थे, उस समय उन्होंने 'वीर हम्मीर' नामक रचना की, जिस पर उन्हें ३० रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। बी० ए० के छात्र के रूप में उन्होंने 'चित्तौड़ की चिता' की रचना की। सन् १९३० में वर्मा जी की प्रथम छायावादी रचना 'रूपराशि' प्रकाशित हुई। 'कुल ललना' उनकी प्रारम्भिक कृति है। सन् १९२२ में देश सेवा नामक कविता पर वर्मा जी को 'खन्ना पुरस्कार' मिला। इस पुरस्कार ने उनको साहित्यकार या कवि बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की। कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार थीं—

जिस भारत की धूल लगी है मेरे तन में।
क्या मैं उसको कभी भूल सकता जीवन में।
चाहे घर में रहूँ, रहूँ अथवा मैं वन में।
पर मेरा मन लगा हुआ है, इसी वतन में।

सेवा करना देश की बस मेरा उद्देश्य है।
मैं भारत का हूँ सदा, भारत मेरा देश है।

विद्यार्थी जीवन से ही उन्हें अनेक पुरस्कार मिलने लगे थे। स्वच्छता पर उन्हें अपने छात्रावास का सर्वश्रेष्ठ 'हालैण्डहाल पुरस्कार' प्राप्त हुआ था। उन्हें ५०० रुपये से लेकर २५०० रुपये तक के लगभग दस बड़े पुरस्कार मिल चुके हैं। २६ जनवरी १९६३ को उन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि प्राप्त हुई। 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पर आपको नागपुर विश्वविद्यालय ने पी० एच० डी० की उपाधि प्रदान की। सन् १९३६ में वर्मा जी को उनकी काव्य कृति 'चित्रलेखा' पर हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ 'देवपुरस्कार' प्राप्त हुआ तथा १९३७ में 'चक्रधर' पुरस्कार प्राप्त हुआ। सन् १९३४ में जबलपुर में हुए अखिल भारतीय कवि सम्मेलन की अध्यक्षता आपके द्वारा संपन्न हुई। तीन वर्षों तक आप साहित्य सम्मेलन के प्रधान सचिव और सम्मेलन पत्रिका के संपादक भी रहे।

डॉ० रामकुमार वर्मा की प्रतिभा विभिन्न दिशाओं में प्रगट हुई है। काव्य, एकांकी, आलोचना, गद्य-गीत और निबंध के क्षेत्र में वे पर्याप्त यश प्राप्त कर चुके हैं। परंतु वे मुख्यतः कवि और एकांकीकार ही हैं। 'कबीर का रहस्यवाद' 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' 'साहित्य समालोचना' 'साहित्य शास्त्र' 'एकांकी कला' आदि आपकी प्रसिद्ध आलोचनात्मक कृतियाँ हैं। 'हिमहास' वर्मा जी का गद्य गीत है।

वर्मा जी कवि के रूप में जितने प्रसिद्ध हैं एकांकीकार के रूप में उससे भी अधिक। उनके एकांकी न केवल भारत में ही अभिनीत होते रहे हैं, अपितु वे समय-समय पर रूस पोलैण्ड हंगरी आदि देशों में भी अभिनीत हुए हैं! उनके कतिपय एकांकी नाटकों का भारत की प्रांतीय भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है। उनके प्रसिद्ध एकांकी संग्रह इस प्रकार हैं:—

१. पृथ्वीराज की आँखें २. रेशमी टाई ३. चारुमित्रा ४. शिवाजी ५. विभूति ६. चार ऐतिहासिक एकांकी ७. सप्त किरण ८. कौमुदी महोत्सव ९. ध्रुवतारिका १०. विक्रमार्चन ११. रम्यरास १२. सरस एकांकी १३. रजत रश्मि १४. ऋतुराज १५. दीपदान १६. इन्द्रधनुष १७. रिमझिम।

वर्मा जी के एकांकी ऐतिहासिक और सामाजिक हैं। इन नाटकों में वह कलुष के भीतर से पवित्रता, उद्दंडता के भीतर से शालीनता, वासना के भीतर से आत्म संयम एवं क्षुद्रता के भीतर से महानता का अन्वेषण करने में समर्थ हुए हैं। और यह सब उन्होंने पात्रों और परिस्थितियों के संघर्ष से स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया है। उनमें उच्च कोटि की राष्ट्रीय भावना है। उनके अधिकांश नाटक दुखांत होते हैं और इस कारण सामाजिकों पर गहरा प्रभाव डालते हैं।

वर्मा जी प्रसाद जी की तरह अंतर्मुखी प्रवृत्ति के नहीं हैं। उनकी प्रवृत्ति बहिर्मुखी है। इस क्षेत्र में वे प्रसाद की अपेक्षा निराला के अधिक निकट हैं। वर्मा जी अपने आस-पास के वातावरण, मान्यताओं एवं परम्पराओं आदि में विशेष रुचि लेते हैं। यद्यपि वे किसी पार्टी विशेष में आस्था नहीं रखते परन्तु उनके विचार से जो पार्टी भारत में वास्तविक वर्गहीन समाज और मानववाद की स्थापना का प्रयास करेगी उसके साथ उनकी सहानुभूति है। वर्माजी

के हृदय में अछूतों के प्रति ममता है। वे गाँधी जी के अछूतोद्धार आन्दोलन से बहुत प्रभावित हुए हैं। उसी से प्रेरित होकर उन्होंने 'एकलव्य महाकाव्य' की रचना की है।

कुछ आलोचक उनकी कविताओं के आधार पर यह आरोप लगाते हैं कि वे निराशा-वादी हैं। पर यह तथ्य निर्मूल है। उनमें इतनी कर्मठता है, जिसे कोई निराशावादी व्यक्ति नहीं कर सकता। रूस से लौटने पर उन्होंने कहा था—"यदि मेरे अन्दर कहीं किसी कोने में निराशा छिपी भी रही हो, तो रूस यात्रा ने उसे आमूल निकाल फेंका है। मैं पहले से भी अधिक कर्मठ होकर आया हूँ।" उनकी निराशा की सीपी में उनकी आस्था और विश्वास का मोती छिपा रहता है। किन्तु उसकी आभा को बहुत कम लोग देख पाते हैं। 'एकलव्य' में हमें उनकी आशावादिता और आशामूलक अंतर्दृष्टि का दर्शन होता है। उनका कहना है, "आदि को लौटाना ही अन्त का दूसरा नाम है। अतः विकास और विनाश में विरोध नहीं है। वे चिर प्रवास के विश्राम हैं।" इस सन्दर्भ में 'एकलव्य' नामक महाकाव्य की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं:—

> जीवन नैराश्य की है भूमि नहीं मानवो !
> सुख-दुःख बादलों की भांति उड़े जाते हैं।
> शक्ति मिटती नहीं है, अवतार लेती है।
> तुममें सदैव, तुम योग्य तो बनो सही।

उपनिषदों का जो रहस्यवाद सिद्ध साहित्य और नाथ साहित्य के अतल को स्पर्श करता हुआ, निर्गुण धारा के संत काव्य में विकसित हुआ है और जिसका महत्वपूर्ण अंश कबीर और दादू की रचनाओं में सुन्दर रूप से प्रकट हुआ है वही रहस्यवाद वर्माजी की कविताओं में प्रस्फुटित हुआ है। इन पर कबीर की रहस्यानुभूति का गम्भीर प्रभाव पड़ा है। अतः इनके काव्य में हमें जिस रहस्यानुभूति के दर्शन होते हैं, सम्भवतः उसका उद्‌गम स्रोत कबीर का साहित्य है। कबीर की आत्मा विरहिणी बनकर उस प्रियतम की प्राप्ति के लिए रोती है कहीं-कहीं उसमें निराशा की भी भावना लक्षित हुई है। वर्मा जी ने इसी निराशा की भावना को अपने काव्य में स्वर प्रदान किया है।

वर्माजी के व्यक्तित्व की शालीनता, कोमलता, और कर्मठता पग-पग पर दिखाई पड़ती है। जो व्यक्ति उनसे जिस प्रकार की याचना करता है, उसे पूरा करने में वे कोई कसर नहीं उठा रखते। कभी कभी उन्हें अपने ही परिचितों से धोखा हो जाता है—उनकी इस धूर्तता को वे उनकी कमजोरी समझते हैं। उनका कहना है—"जो मेरा अहित करना चाहते हैं, मैं उनका भला अवश्य करना चाहता हूँ। यह मेरी आन्तरिक इच्छा और भगवान से सच्ची प्रार्थना है।" यह वीर अपने प्रतिपक्षी को जीतना तो चाहता है किन्तु उसे प्रताड़ित और अपमानित करना नहीं चाहता। मानवता के प्रति उनकी आस्था असीम, अखंड और अनन्त है। अध्यापक के रूप में डॉ० वर्मा असाधारण रूप से सफल हैं। विद्यार्थियों को वे अपना बच्चा समझते हैं उनके अध्यापन का आदर्श वैदिक कालीन है। सभी विद्यार्थियों को वे समान दृष्टि से देखते हैं।

●●●

मूल्यांकन

डॉ० रामकुमार वर्मा की काव्य-साधना

डॉ० राजेंद्रकुमार, हिन्दी-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

●

आधुनिक युग के साहित्यकारों में बहुमुखी प्रतिभा की दृष्टि से डॉ० रामकुमार वर्मा का महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्य के सृजन और अनुशीलन दोनों ही क्षेत्रों में उनके कृतित्व का विकास हुआ है। यद्यपि डा० वर्मा की काव्य, नाटक, इतिहास, समालोचना आदि विविध साहित्यिक विधाओं से सम्बद्ध मौलिक एवं आलोचनात्मक कृतियों ने हिन्दी साहित्य को सम्पन्न बनाया है, किन्तु उनके सम्पूर्ण कृतित्व को ध्यान में रखते हुए नाटक और काव्य-रचना में अपेक्षाकृत उनका योग अधिक रहा है। द्विवेदी युग के अंतिम चरण से लेकर वर्तमान, प्रयोग-वादी युग तक उनकी काव्यसाधना का क्षेत्र विस्तीर्ण होते हुए भी कतिपय प्रवृत्तियों के कारण उनके काव्य का वैशिष्ट्य सुरक्षित है।

प्रेरणा और काव्य-सिद्धान्त :—छायावाद के प्रतिनिध कवियों में प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी के साथ डॉ० रामकुमार वर्मा का भी नाम लिया जाता है। ये छायावाद के द्वितीय उत्थान के कवि हैं। बुन्देलखण्ड के पर्वतीय प्रदेश का प्राकृतिक सौंदर्य, यौवन काल की राष्ट्रीय चेतना, इतिहास एवं गौरवमय अतीत के प्रति अनुराग, धार्मिक संस्कार आदि उनके काव्य के प्रेरक उपादान रहे हैं। भावुक कवि के साथ आध्यात्मिक और चिन्तक के सम्मिलित व्यक्तित्व के कारण उनके काव्य के अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्षों में एक अपूर्व संतुलन दिखाई पड़ता है। विविध काव्य शैलियों, काव्य रूपों, ललित भाषा के प्रयोग, छायावादी काव्य संस्कारों के पोषण, रहस्यवाद की मार्मिक अभिव्यक्ति आदि के कारण उनके काव्य का अपना व्यक्तित्व है। वर्मा जी की काव्य गंगा, इतिहास, राष्ट्रीय गौरव एवं कल्पना के दुर्गम किन्तु मनोहर पर्वतों से निकल कर वस्तु एवं भावना के विविध धरातलों पर प्रवाहित हुई है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने नाटकों, काव्यग्रन्थों की भूमिकाओं, आलोचनात्मक लेखों आदि में अपने काव्यसिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। वर्मा जी के अनुसार आत्मानुभूति और भावुक वृत्ति काव्य के संयोजक तत्व हैं। "आत्मा की गूढ़ और अव्यक्त सौंदर्यराशि का भावना के आलोक से प्रकाशित हो उठना ही कविता है।" 'उन्होंने रस को काव्य की आत्मा माना है। 'रसविहीन काव्य भाव-जगत का स्पष्ट चित्र उतारने में असमर्थ रहता है। सत् काव्य में रस के साथ गुण अथवा वृत्तियों की व्यवस्था भी शैली का अभिन्न अंग बन जाती है। करुणा अन्य भावों की अपेक्षा मन को अधिक स्पर्श करती है। करुण स्वर के छन्द में हे लीन कविता आयु भर ली।"—आकाशगंगा

इसके अतिरिक्त उन्होंने काव्य को एक दैवी वरदान के रूप में स्वीकार किया है:—

"एक बार मा निषाद कह कर तुमने
रोकी थी सुगति एक निर्दय निषाद की ।
आज दूसरे निषाद के सुकीर्ति गान में
चाहता सुमति मैं काव्य के प्रसाद की ।

—एकलव्य

डॉ० वर्मा के अनुसार, अध्ययन, लोकानुभूति और प्रकृति-दर्शन सफल काव्य-रचना के आवश्यक उपकरण हैं। कवि की वैयक्तिक दृष्टि का लोक से तादात्म्य उसे स्थायित्व प्रदान करता है। अतएव जीवनगत संघर्ष ही साहित्य का वास्तविक प्रेरणा स्रोत है। उपत्यकाओं हिम शैल, बादल, पुष्प राशि, वृक्ष, रात्रि आदि ने उन्हें अगणित भावनाएं और कल्पनाएं दी हैं। इतिहास में सुलभ वीर नायकों के चरित्र भी उन्हें काव्य रचना में प्रेरणा देते रहे हैं। इसीलिए उनकी रचनाओं में अपने गौरवमय अतीत की झाँकी दिखाई पड़ती है। वर्मा जी के अनुसार वस्तुतत्व एवं कल्पना की सार्थकता का मूलाधार अनुभूति की शुद्धता है। कल्पना कविता के अन्तर्गत एक नए संसार की सृष्टि करती है। उसके द्वारा अभिव्यक्ति में विशिष्ट सौंदर्य आ जाता है :—

मेरी अनुभूति रंगहीन पुष्प जैसी है
किन्तु वह खिलती है मेरे भाव वृन्त में।
कल्पना पराग के भले ही कण थोड़े हों
किन्तु उनका है योग सत्य बिन्दु में।.

—एकलव्य, सर्ग १४

प्रारम्भिक रचनाएँ :—डॉ० रामकुमार वर्मा का कवि रूप में आविर्भाव उनकी ऐतिहासिक इतिवृत्त पर आधारित रचना 'वीर हम्मीर' (सन् १९२२) के साथ हुआ। इसके अनन्तर उनकी 'कुल ललना', 'चितवन' और 'चित्तोड़ की चिता' आदि रचनाएँ प्रकाश में आईं। वर्मा जी की ये रचनाएँ वर्णनात्मक हैं। अनुभूति, दृष्टिकोण, अभिव्यक्ति आदि के विचार से ये रचनाएँ उनकी छायावादी गीति रचनाओं की कोटि में नहीं आतीं। यद्यपि अनुभूति और कल्पना के स्थान पर घटनाओं के रोचक संगुफन में ही कवि का कौशल दिखाई देता है, तथापि उसका सर्वथा अभाव नहीं कहा जा सकता है। इनमें कवि का प्रयोग–शील व्यक्तित्व स्पष्टतापूर्वक देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन रचनाओं में वर्मा जी के प्रबन्धकार के उस व्यक्तित्व की सूचना मिल जाती है जो आगे चलकर जौहर (सन् १९३९) और एकलव्य (सन् १९५८) के अन्तर्गत पल्लवित हुआ। इन रचनाओं के अन्तर्गत इतिहास के क्रोड़ में कवि की राष्ट्रीयता एवं देशानुराग की भावना भी व्यक्त हुई है। एक उदाहरण देखिए :–

भारत भू की ओर आकर्षण बढ़े क्षण क्षण।
उसकी सेवा हेतु बढ़े चाहे शोषित कण।
तन मन धन सर्वस्व देश हित ही हो अर्पण।
कर्म क्षेत्र में बढ़ूँ यही मुख से निकले प्रण।

प्यारे भारत देश की माला हाथों में बसे।
हृदय कमल के देश में सेवा भ्रमरी आ फंसे।

—चित्तौड़ की चिता

आत्मानुभूति प्रधान छायावादी गीत रचनाओं में प्रवृत्त होने पर भी यद्यपि वर्मा जी का इतिहास के प्रति अनुराग लुप्त तो नहीं हुआ, तथापि उसका स्वरूप बदल गया। इतिवृत्तों का अखिल प्रबन्धकाव्यों में रखने की प्रवृत्ति वर्तमान रही तथा स्थूल की लाक्षणिकता सूक्ष्म के द्वारा प्रकट करने में ही वे अधिक यत्नशील दिखाई पड़ते हैं। अपनी परवर्ती रचनाओं में उन्होंने जहाँ जीवन की अनुभूतियों का चित्रण करके छायावाद की पृष्ठभूमि सशक्त बनाई है, वहीं इतिहास के विविध पात्रों एवं घटनाओं से सम्बन्धित प्रभान्विति भाव पक्ष के द्वारा उद्घाटित की है। घटनाओं की अपेक्षा उनमें अन्तर्निहित चरित्र एवं स्वभाव की अभिव्यक्ति जीवन को किसी महत्वपूर्ण बिन्दु पर लाकर चित्रित करने में दृष्टिगत होती है। उदाहरणार्थ 'शुजा' में अराकान की विभीषिका का चित्रण इसलिए अमर है, क्योंकि वह उसके अन्तर्जगत का उद्घाटन करता है :—

मौन राशि ओ अराकान !
क्रम-विहीन और इति-हीन मौन,
यह मन है, तन भी यही मौन,
निर्जनता की बहुमुखी धार,
अविदित गति से है वही मौन !
यह मौन ! विश्व का व्यथित प्यार,
तुझमें क्यों करता है निवास ?
क्या व्योम देखकर अरे व्योम
में तारों का है मुक्त हास।
ये शिलाखण्ड—काले, कठोर—
वर्षा के मेघों से कुरूप !
दानव से बैठे या कि खड़े
अपनी भीषणता में अनूप !
ये शिलाखण्ड मानो अनेक
पापों के फैले हैं समूह !
या नीरसता ने चिर निवास
के लिए रचा है चक्रव्यूह।

इसी प्रकार 'नूरजहाँ' में उसके सौंदर्य का चित्रण घटनात्मक न होकर भावात्मक अधिक है।

छायावादी व्यक्तित्व का अंकुरण :—डॉ॰ रामकुमार वर्मा का छायावादी संस्कारों से प्रभावित कवि रूप सर्वप्रथम उनकी रचना अभिशाप (सन् १९३०) के माध्यम से प्रकाश में आया। इस रचना के गीतों में नैराश्य और वैराग्य का सुन्दर निरूपण हुआ है। अभिशाप के अनन्तर अंजलि (सन् १९३०), रूपराशि (सन् १९३१) 'निशीथ' (सन् १९३१) में

उनका छायावादी गीतकार का व्यक्तित्व उत्तरोत्तर उभरता गया है। भावनाओं की कोमलता और कल्पना की उन्मुक्त उड़ान की दृष्टि से 'अंजलि' और 'रूपराशि' की कविताएं पर्याप्त सुन्दर हैं। इनमें वेदना, करुणा, और नैराश्य के सम्मिलित सन्निवेश के द्वारा प्रेम तत्व का सुन्दर निदर्शन हुआ है। वस्तु, भाव, भाषा, शैली और अभिव्यक्ति आदि सभी दृष्टियों से वर्मा जी की ये रचनाएं उनकी इतिवृत्त प्रधान प्रारम्भिक रचनाओं की अपेक्षा कहीं प्रौढ़ हैं तथा इनमें गीत रचना की ओर उनका विशेष झुकाव दिखाई पड़ता है।

उत्कर्ष :—इसके अनन्तर चित्ररेखा (सन् १९३५) चंद्रकिरण (सन् १९३७) और आकाश गंगा' (सन् १९५७) आदि रचनाओं तथा स्फुट गीतों के अन्तर्गत वर्मा जी के छायावादी गीतकार के व्यक्तित्व का उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। प्रकृति चित्रण, सौंदर्य निरूपण, रहस्यवादी अभिव्यक्तियों एवं गीति-काव्य की दृष्टि से 'चित्ररेखा' के रचनाकाल के आसपास के गीत अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। एक गीत देखिए:—

प्रिय, तुम भूले मैं क्या गाऊँ ?
जिस ध्वनि में तुम बसे उसे,
जग के कण कण में क्या विखराऊँ ?
शब्दों के अधखुले द्वार से,
अभिलाषाएँ निकल न पातीं
उच्छ्वासों के लघु-लघु पथ पर
इच्छाएं चलकर थक जातीं !
शून्य स्वप्न संकेतों से मैं,
कैसे तुमको पास बुलाऊँ ?
जहाँ सुरभि की एक लहर से ,
निशा बढ़ गई डूबे तारे।
अश्रु बिन्दु में डूब डूब कर,
दृग तारे ये कभी न हारे।
दुख की इस जागृति में कैसे,
तुम्हें जगाकर मैं सुख पाऊँ ?
प्रिय तुम भूले मैं क्या गाऊँ ?—आधुनिक कवि

इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक भूमिका में भाव की संगुफित अभिव्यक्ति भाषा के लालित्य, संगीतात्मकता, चित्रात्मकता आदि गुणों के कारण चन्द्रकिरण और आकाश गंगा के गीत वर्मा जी के श्रेष्ठ गीतकार के व्यक्तित्व के परिचायक हैं।

एकलव्य : एक नया मोड़ :—यों तो वर्मा जी के प्रबन्धकार के व्यक्तित्व की सूचना हमें उनकी वीर हम्मीर, चित्तौड़ की चिता, जौहर आदि प्रबंधात्मक रचनाओं में प्रारम्भ में ही मिल जाती है, किन्तु एकलव्य (सन् १९५८) के प्रकाशन के साथ उनके महाकाव्यकार के व्यक्तित्व की पूर्ण प्रतिष्ठा ज्ञात होती है ! प्रकारान्तर से प्रारम्भिक ऐतिहासिक वृत्तों पर आधारित प्रबंध रचना की प्रवृत्ति का चरमोत्कर्ष एकलव्य में दिखाई देता है। 'एकलव्य' की कथा महाभारत (संभव पर्व, अ० १३२। ३१-६०) से ली गई है। एकलव्य १४ सर्गों में विभाजित है। इस रचना में वर्मा जी का उद्देश्य निषाद संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष का उद्घाटन

रहा है। उन्होंने महाभारत के एतद्विषयक सूत्रों से प्रेरणा प्राप्त करके उस युग की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में आचार्य द्रोण के अर्थ संकट और द्रुपद द्वारा उनके अपमान तथा एकलव्य के आशावाद को मनोवैज्ञानिक भूमिका प्रदान की है। युग विशेष की सांस्कृतिक भूमिका, यथार्थ एवं आदर्श के समन्वय, अछूतोद्धार के उदात्त एवं क्रान्तिकारी दृष्टि-कोण आदि अभिनव गुणों के कारण एकलब्य आधुनिक महाकाव्यों में 'कामायनी की परम्परा का क्रान्तिकारी महाकाव्य है। इसका अपना वैशिष्ट्य है। उसके नायक की परिकल्पना कवि की मौलिक एवं उदात्त सामाजिक दृष्टि की परिचायक है। एकलव्य उच्चकुलोद्भव न होकर भी उनके लिए आदर्श है। उसका शील, कर्त्तव्य परायणता, संघर्ष एवं आशावाद निश्चय ही भारतीय साहित्य के नायकों की परम्परा में एक महान उपलब्धि है। एकलव्य के कथानक, संवाद, चरित्र-चित्रण, बिम्ब विधान आदि में नाटकीय शैली का अनुकरण उसे और की उत्कृष्टता प्रदान करने में सहायक हुआ है। एकलव्य के उपेक्षित कथानक एवं चरित्र को महा-काव्योचित गौरव प्रदान कर रामकुमार जी ने महाकाव्य की नायक विषयक परम्परागत मान्यताओं पर कुठाराघात किया है। इसके अतिरिक्त इस रचना के अन्तर्गत उन्होंने आधुनिक युग की परिस्थितियों में मानवता के मूल्यों को आँकने का यत्न किया है। बंगला के 'अमित्रा-क्षर' छंद के प्रयोग के कारण छंद-प्रयोग की दृष्टि से भी 'एकलव्य' का अपना महत्व है। एक संक्षिप्त उद्धरण देखिए :—

> राज-सभा शोभित है। शक्ति के अपांग में,
> शोभा की छहर है। शिल्प जैसे ऋतुराज है।
> प्रस्तर स्तंभों में खिलाए पुष्प जिसने है,
> कलियों की एक-एक पंखड़ी है खिलती,
> लतिका के बीच पुष्प, पुष्प बीच लतिका,
> काव्य-बीच कल्पना है, कल्पना में काव्य है।
> एक एक प्रस्तर में शत शत चित्र हैं
> निर्मल सरोवर में, मंच में या तरु में,
> हंस, क्रौंच, पारावत, कोकिल, मयूर हैं,
> नारियों की शोभा खिंची शत-शत रूप में।
>
> —एकलव्य

रामकुमार जी के काव्य विकास को ध्यान में रखते हुए उनकी रचनाओं को ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक प्रबंध, मुक्तक तथा गीतिकाव्यात्मक रचनाओं के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है। गीतात्मक और प्रबंधात्मक दोनों ही प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत करने की दृष्टि से छायावादी कवियों में उनका व्यक्तित्व प्रसाद के अधिक निकट हैं। इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि अपवादों को छोड़कर उनकी गीत रचनाएं प्रबन्ध रचनाओं की तुलना में अधिक सफल बन पड़ी हैं।

रहस्यवाद :—खड़ी बोली के रहस्यवादी कवियों में रामकुमार जी का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने छायावाद को रहस्यवाद की उदात्त भूमिका प्रदान की। अध्ययन की गंभीरता, कल्पना एवं अनुभूति के संयोग के कारण इनकी रहस्यवादी रचनाएं अत्यन्त सरस एवं प्रेषणीय बन गई हैं। उनके एतद्विषयक गीत प्रिय के रूप सौदर्य की उदात्त कल्पना, करुणा की छाया,

प्रेम विरह के मार्मिक चित्र प्रकृति के आवरण में अत्यन्त प्रभावशाली बन गए हैं। रहस्यानुभूति में आत्मानंद की भावना चिन्तन के धरातल पर अनेक मनोहर चित्रों के सृजन में सहायक हुई हैं। इन गीतों में रामकुमार जी की रहस्यानुभूति अधिकतर प्रकृति के सौंदर्य, संसार की क्षणभंगुरता, करुणा एवं निराशा के संदर्भों में व्यक्त हुई है। इसके अतिरिक्त रहस्यवादी गीतों के अन्तर्गत उन्होंने प्रतीकों की भी सफल योजना की है। ब्रह्म को दीपक, आत्मा को किरण-कण, माया को दीप-शिखा से निःसृत धूम्र, सूर्य को आध्यात्मिक चेतना, संसार को रात्रि तथा वृत्तियों को 'शलभ' का प्रतीक मानते हुए प्रस्तुत गीत में उन्होंने आत्म व्यक्तित्व का कितना सुन्दर निरूपण किया है :—

एक दीपक किरण कण हूँ।
धूम्र जिसके क्रोड़ में है, उस अनल का हाथ हूँ मैं।
नव प्रभा लेकर चला हूँ पर जलन के साथ हूँ मैं।
सिद्धि पाकर भी तुम्हारी साधना का ज्वलित क्षण हूँ।
शलभ को अमरत्व देकर प्रेम पर मरना सिखाया।
सूर्य का संदेश लेकर रात्रि के उर में समाया।
पर तुम्हारा स्नेह खोकर भी तुम्हारी ही शरण हूँ।

ऐसे ही अनेक प्रतीक उनके गीतों में सरलतापूर्वक खोजे जा सकते हैं। साथ ही वे हृदयस्थ दिव्य प्रेरणा के संधान में तन्मय दिखाई पड़ते हैं :—

एक वेदना विद्युत सी खिंच खिंच घुस कर जाती है।
एक रागिनी चातक स्वर में सिहर सिहर कर गाती है।
कौन समझावे गान।
छिपा कोई उर में अनजान।

वर्मा जी के रहस्यवाद पर कबीर के रहस्यवाद और रवीन्द्र की गीतान्जलि का प्रभाव परिलक्षित होता है। यद्यपि वह आधुनिक युग की मनोवैज्ञानिक उपलब्धियों की भूमि पर विस्तीर्ण है, किन्तु उसमें कहीं भी सिद्धान्त प्रतिपादन का आग्रह नहीं दिखाई पड़ता। कबीर की रहस्यानुभूति से उत्प्रेरित होते हुए भी वर्मा जी के रहस्यवाद में उल्टवासियों की क्लिष्ट कल्पना के स्थान पर अनुभूति का निश्छल उद्वेग दिखाई पड़ता है। ऐसे गीतों में प्रकृति उनकी रहस्य-भावना एवं उद्देश्य की विराटता का आवश्यक उपकरण बन कर आई है :—

मैं आज बनूंगा जलद जाल।
मेरी करुणा का वारि सींचता रहे अवनि का अन्तराल।
नभ के नीरस मन में महान् बन सरस भावना के समान।
मैं पृथ्वी का उच्छवासपूर्ण परिचय हूँ बन कर अश्रुमाल।
हा! यहाँ सदासुख के समीप दुख छिपकर करता है निवास।
अब किसी ओर चीत्कार न हो उठूँ न अब दुःख से कराह।
मैं भूल गया हूँ कठिन राह।

किन्तु उनके गीतों में प्रकृति का स्वीकृत स्वरूप अधिकतर सुकुमार व्यंजनाओं पर ही आधारित रहा है।

प्रेम और रहस्यवाद के क्रोड़ में निराशावाद :—रामकुमार जी के रहस्यवादी एवं प्रेम-भावना प्रधान गीतों में दुखात्मक अनुभूतियों तथा निराशावादी विचारों का समन्वय द्रष्टव्य है—

नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ आज अनश्वर गीत ?
जीवन की इस प्रथम हार में कैसे देखूं जीत ?

०

कह सकता है कौन, देखता हूँ मैं भी चुपचाप।
किसका गायन बने न जाने मेरे प्रति अभिशाप।

—अभिशाप

प्रारम्भिक रचनाओं में वेदना और जिज्ञासा का जो रूप स्फुरित हुआ था, वह परवर्ती रचनाओं 'रूपराशि', 'अञ्जलि', 'चित्र रेखा', और 'चन्द्रकिरण' आदि में उत्तरोत्तर विकसित होता गया है :—

मैं बैठा था भावों के क्षण पर गति थी कितनी तेज,
किन्तु न जाने बीत गई कब यह वियोग की रात।
तारे डूबे किन्तु कथा उतनी ही विरह असंख्य,
धूमिल सा बेसुध सा आया है यह व्यर्थ प्रभात।

—चन्द्रकिरण

किन्तु रहस्यानुभूति पूर्ण अन्तर्गत वेदना प्रियतम के मधुर रूप की कल्पना एवं उसके हास में विलीन हो जाती है:—

यह तुम्हारा हास आया।
इन फटे से बादलों में कौन सा मधुमास आया।
आँख में नीरव व्यथा के दो बड़े आँसू बहे हैं,
सिसकियों में वेदना के व्यूह ये कैसे रचे हैं !
एक उज्ज्वल तीर सा रवि-रश्मि का उल्लास आया।।

—चित्ररेखा

वर्मा जी के निराशावाद में बौद्धिक चेतना के दर्शन होते हैं। कुछ गीतों में उनकी यही बौद्धिक चेतना निराशा के क्रोड़ में आशावाद को पल्लवित कर सकने में सहायक हुई है, जिसके कारण उनके काव्य में स्वस्थ जीवन-दर्शन का विधान सम्भव हो सका है:—

मेरे सुख की किरन अमर।
मेरे जीवन नभ के नीचे, जब हो अंधकार सागर।
तब तुम धीरे धीरे आ, फेनिल सी सजना सुखकर
मेरे जीवन में जब आवे अंधकार के श्याम प्रहर।
तब तुम खद्योतों में छिप कर आ जाना चुपचाप उतर

—अंजलि

निराशावादी अभिव्यक्तियों के कारण उनके गीतों में करुण रस की निर्झरिणी का प्रवाह मिलता है। रामकुमार जी की करुणा का भी स्वरूप विराट है। वह उनके व्यक्तित्व को 'अहं' में केन्द्रीभूत न करके सामान्य मानवीय अनुभूति के धरातल पर प्रस्तुत करती है।

गीतिकाव्य:—छायावादी गीतिकाव्य में रामकुमार जी के गीतों का अत्यंत महत्व है। उनके गीतों में भाव की प्रभावान्विति, संक्षिप्तता, संगीतमयता, कोमलकान्त पदावली, अनुभूति की तीव्रता आदि गीतिकाव्य के आवश्यकीय गुणों का सफलतापूर्वक समावेश हुआ है। कल्पनासंयुक्त आत्माभिव्यक्ति और आत्मसमर्पण की भावना ने गीतों की भाषा को अपूर्व प्रवाहमयता प्रदान की है। प्रतीकों की योजना ने सौंदर्य की कल्पना को सजीव एवं सुन्दर बनाया है। उनके गीतों में छोटे-छोटे भाव-चित्रों को सजाने की क्षमता दृष्टिगोचर होती है:—

> वियोगिनी यह विरह की रात।
> आँसुओं की बूंद ही में बह गई अज्ञात।
> कब मिले थे वे तुझे क्या है न कुछ भी याद ?
> खोजती ही रह गई जग का बुझा सा प्रभात।
> अंधकार प्रशान्त था नभ के हृदय में और
> तू न उसको पार कर जग में रही अज्ञात।
>
> —आधुनिक कवि

वर्मा जी के गीतों पर यत्र तंत्र उर्दू की विरोधात्मक शैली का भी प्रभाव मिलता है, जिससे अभिव्यक्ति में प्रभावगत सौंदर्य आ गया है। गीतों में उनका चिन्तनशील व्यक्तित्व भी मुखरित हुआ है। काव्यविकास के साथ रामकुमार जी के गीतों में भाव, भाषा, अभिव्यंजना आदि सभी दृष्टियों से प्रौढ़ता आती गयी है। उनके गीतों में अनुभूति का धरातल पर्याप्त विस्तीर्ण है। पीड़ा, दुख, विषाद, निराशा, उल्लास आदि सहज मानवीय वृत्तियों का उनके गीतों में सुन्दर चित्रण हुआ है। गीतों का शिल्प उनमें सन्निहित अनुभूति के अनुरूप ही है। अतः उनके अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्षों में एक संतुलन दृष्टिगोचर होता है। अनुभूति गीत की शैली का संधान स्वतः कर लेती है, अतएव वह आरोपित सी नहीं प्रतीत होती।

प्रकृति चित्रण:—अन्य छायावादी कवियों के समान डॉ० रामकुमार वर्मा के काव्य में भी अधिकतर प्रकृति उसका आवश्यक उपकरण बन कर आई है। उनकी प्रबंध और गीत दोनों ही प्रकार की रचनाओं में प्रकृति चित्रण काव्यरूपों की प्रकृति के अनुकूल हुआ है। प्रकृति के रूप चित्रण की मनोरम कल्पना एवं उसके चेतन रूप की व्यंजना रामकुमार जी के प्रकृति-चित्रण की उल्लेखनीय विशेषता है। निर्झर, बसंत, पावस, इन्द्रधनुष, रात्रि, तारिकाओं आदि प्राकृतिक उपादानों ने उनकी कल्पना के कोष को सम्पन्न बनाया है। प्रबंध काव्यों में प्रकृति चित्रण अधिकतर पृष्ठभूमि तथा भाषा कथा-प्रवाह में भावजगत का निर्माण करने के ही उद्देश्य से हुआ है। किन्तु गीतों में उसका विविध रूपों में प्रयोग परिलक्षित होता है। जहाँ कवि आत्मानुभूति एवं मानवीय चेतना के निदर्शन में यत्नशील दिखाई देता है वहाँ प्रकृति के चित्रण में उसका चिन्तनशील व्यक्तित्व उभर आया है:—

> तरुवर के ओ पीले पात।
> किस आशा के तंतु सम्हाले रहते हैं दिन रात ?
> रात हो या कि प्रभात।
> पतले एक हाथ से पकड़े हो तरुवर का गात।

अन्य तुम्हारे स्वजन हरे रंगों का ले परिधान।
हंसते हैं पीलेपन पर क्या मर्-मर कर गान?
सुनते हो चुपचाप अन्य पत्रों का यह अभिशाप।
उनका है आनन्द तुम्हारा यह विस्मय संताप।
गिर जाना भू पर समीर में, हिल डुलकर इस बार।
दिखला देना पत्रों को उनका अंतिम संसार।

प्रकृति के मानवीकरण द्वारा दृश्य चित्रों को सजाने में वर्मा जी सिद्धहस्त हैं। ऐसे गीतों में उनकी कल्पना का उद्वेग, भावना को तीव्रता प्रदान करता हुआ प्रवाहमयता एवं संगीतात्मकता का युगपत सन्निवेश करने में विशेष सफल हुआ है। प्रस्तुत गीत में तारिकाओं एवं ओस कणों से सुसज्जित रात्रि की बाला का चित्रण कितना सजीव बन गया है:—

इस सोते संसार बीच सज जग कर रजनी बाले।
कहाँ बेचने ले जाती हो ये गजरे तारों वाले?
मोल करेगा कौन सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी।
मत कुम्हलाने दो सूनेपन में हिला-हिला कर धोना।
लहर लहर कर यदि चूमे तो किन्चित् विचलित मत होना।
होने दो प्रतिबिम्ब विचुम्बित लहरों ही में लहराना।
लो मेरे तारों के गजरे निर्झर स्वर में यह गाना।।
यदि प्रभात तक कोई आकर तुमसे हाय न मोल करे।
तो फूलों पर ओस रूप में बिखरा देना ये गजरे।

—चित्ररेखा

प्रकृति के छायाचित्र खींचने में भी वर्मा जी को सर्वत्र सफलता मिली है। गीतस्थ भाषा की प्रवाहमयता में वस्तुस्थिति का पूरा चित्र उभर आता है, उन्हें किसी अन्य भाव की आवश्यकता नहीं पड़ती:—

मेघों का यह मण्डल अपार।
जिसमें तम पढ़कर एक बार ही
कर उठता है चीत्कार।
ये काले काले भाग्य अंक
नभ के जीवन में लिखे हाय
यह अश्रु बूंद भी सरल बूंद भी
आज बनी है निराधार।
यह पूर्व दिशा जो थी, प्रकाश,
जननी छविमय प्रभापूर्ण
निज मृत शिशु पर रख कर नमित माथ
बिखराती घन केशान्धकार।

—चित्ररेखा।

भाषा, अलंकार और छन्दः—भाषा के सम्बन्ध में रामकुमार जी विशुद्धतावादी दिखाई पड़ते हैं। उनकी काव्य-भाषा में संस्कृत की तत्सम शब्दावली की प्रधानता है। किन्तु प्रबन्ध और गीत दोनों ही प्रकार की रचनाओं में भाषा प्रवाहमयता, एवं चित्रात्मकता के गुणों से युक्त है। उसमें अरबी, फारसी और जनपदीय बोलियों के शब्दों का प्रयोग विरले ही हुआ है। अन्य छायावादी कवियों की भाषा की अपेक्षा उनकी भाषा अधिक प्रेषणीय है। यही कारण है कि प्रतीकात्मकता एवं लाक्षणिकता के फलस्वरूप भी भाषा कहीं भी सजीवता का परित्याग नहीं करती। भाषा को सौंदर्य प्रदान करने के लिए उसे अलंकारों से सुसज्जित करना उन्हें अभीष्ट नहीं है। उनके काव्य में अलंकारों का प्रयोग भावोद्दीपन के ही निमित्त हुआ है। प्रस्तुत गीत में प्रयुक्त सादृश्यमूलक अलंकारों से यह स्पष्ट हो जायेगा:—

तारे नभ में अंकुरित हुए
जिस भांति तुम्हारे विविध रूप मेरे मन में संचरित हुए ॥
यह आभा है क्या कुछ मलीन
पर दुग्धधार से किरण गान
मुझ से मिलकर है स्वरित हुए ॥
देखो इतना है लघु विकास
मेरे जीवन के आस पास
पर सघन अंधेरे के समान ही
दूर दैत्य दुख दुरित हुए

× × ×

वारिधि के मुख में रखी हुई,
यह लघु पृथ्वी है एक आस।

उनके काव्य में अलंकारों का प्रयोग अधिकतर भाषा की परिष्कृति, अभिव्यक्ति, नाद की परिव्याप्ति, चमत्कार प्रवणता, भाव की तीव्रता अथवा वस्तु जगत के प्रच्छन्न भाव को विभिन्न दृष्टियों से उभार कर गति प्रदान करने के उद्देश्य से हुआ है।

रामकुमार जी ने छन्द को काव्य का अनिवार्य उपकरण माना है। उनके विचार से कविता को हृदयस्पर्शी बनाने के लिए उसका छंदबद्ध होना आवश्यक है। छन्द की लय से भाव उद्दीप्त होते हैं। गीतों में संतुलित पद विन्यास एवं विविध छन्दों का प्रयोग दिखलायी पड़ता है। इससे उनके काव्य में नादात्मक सौंदर्य पग-पग पर स्फुरित हुआ है। गीतों की सीमित परिधि-छन्द-बन्धन के साथ ही भावोर्मियों का आविर्भाव और शमन जिस पूर्णता के साथ होता है, वह वर्मा जी के छन्द अधिकार का परिचायक है। प्रबन्धकाव्यों में वस्तु निर्वाह, भाषा की प्रवाहमयता एवं कथोपकथनों के अन्तर्गत उन्हें छन्द-विधान में अपूर्व सफलता मिली है। एकलव्य का प्रस्तुत उद्धरण देखिए:—

'महाराज ने हटा ली दृष्टि उस भेंट से,
मैंने कहा लीजिए न तुच्छ भेंट फल की।
फल उस पेड़ के हैं, जो न लगा मुझसे,
आपने लगाया था, नवीन आल बाल में,

यह तो अवश्य ही स्मरण होगा आपको ।
सींचा उसे नित्य कर कम..........
बस शान्त हों ।
महाराज ने विचित्र क्षुब्ध कण्ठ से कहा
विप्र ! व्यर्थ बातों के लिए न अवकाश है ।

—एकलव्य

रामकुमार जी ने छन्दों के नए प्रयोग भी किए हैं ।'एकलव्य' में बंगला के 'अमित्राक्षर' छन्द का किन्चित् परिवर्तन के साथ प्रबन्धोचित प्रयोग पर्याप्त सफल कहा जा सकता है । इसके अतिरिक्त मुक्तक रचनाओं के अन्तर्गत पद शैली के प्रयोग से गीतिमयता की सृष्टि हुई है ।

अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की प्रौढ़ता, कल्पना की उन्मुक्त उड़ान, संवेदनशीलता, लाक्षणिकता, भावों की गहनता, नाद सर्जना, चित्रात्मकता, गेयता, भाषा की प्रवाहमयता और माधुर्यता आदि गुणों के कारण रामकुमार जी की रचनाएँ खड़ी बोली काव्य की परम्परा में श्रेष्ठ स्थान की अधिकारिणी हैं । इतिवृत्त प्रधान ऐतिहासिक एवं राष्ट्रीयता विषयक रचनाओं से लेकर छायावाद की प्रतिनिध गीति काव्यात्मक कृतियों एवं 'एकलव्य' महाकाव्य की रचना तक उनके काव्य विकास की रेखाएँ स्पष्ट हैं । वर्मा जी ने अन्य छायावादी कवियों के समान खड़ी बोली हिन्दी काव्य को गीतियों की अभूतपूर्व राशि से सम्पन्न बनाया । 'एकलव्य' की रचना द्वारा महाकाव्य की परम्परागत मान्यताओं पर कुठाराघात करके तद्-विषयक नवीन आदर्श की स्थापना की । छायावाद को रहस्यवाद की उदात्त भूमिका प्रदान करने में उनका योग असंदिग्ध है । छायावादी काव्यादर्शों के अनुसरण के फलस्वरूप भी उन्होंने काव्य और भाषा को अभूतपूर्व प्रेषणीयता एवं संगीतमयता से संयुक्त किया है, जिन गुणों का युगपत स्वरूप अन्य छायावादी कवियों के काव्य में नहीं मिलता ।

● ● ●

"संगीत ईश्वरीय-विभूति की वह किरण है जिससे मनुष्य देवता बन जाता है ।"

—'समुद्रगुप्त पराक्रमांक' से

एकलव्य : एक विश्लेषणात्मक अनुशीलन

डॉ० वीरेन्द्र सिंह, हिन्दी विभाग जयपुर विश्वविद्यालय

●

आधुनिक महाकाव्य और 'एकलव्य'

'एकलव्य' महाकाव्य, हिन्दी महाकाव्यों की परंपरा में एक नई कड़ी के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। दूसरी ओर, उसके प्रति यह कहना कि वह प्राचीन परम्पराओं को ही लेकर चला है उसके प्रति पूर्ण न्याय नहीं कर सकता है। यह अवश्य है कि कवि ने प्राचीन परम्पराओं की जान बूझ कर अवहेलना नहीं की है, पर उन्हें आधुनिक काव्य शिल्प में यथोचित स्थान अवश्य देने का प्रयत्न किया है। उदाहरणस्वरूप मंगलाचरण, देवी देवताओं की प्रशस्तियाँ, कथानक के संगठन में संधियों, अर्थप्रकृतियों, अवस्थाओं की योजना (?) आदि ऐसे संकेत मिलते हैं, जो आलोचकों को बरबस प्राचीन मान्यताओं के प्रकाश में विवेचन के लिए कटिबद्ध करते हैं। श्री राधेकृष्ण श्रीवास्तव[1] तथा श्री प्रेमनाथ त्रिपाठी[2] ने अपने ग्रन्थों में एकलव्य के कथानक को इसी दृष्टि से विवेचित किया है। मैं उस दृष्टि को अपने विवेचन में अपनाने में असमर्थ रहा हूँ क्योंकि 'एकलव्य' के कलात्मक सौंदर्य को, उस दृष्टि से देखने पर उसे सीमित बंधी बंधाई परम्पराओं में बाँधना ही होगा जो उसके प्रति अन्याय ही कहा जा सकता है। मैं शिल्प-विधान के अन्तर्गत, इस विषय को आगे के पृष्ठों में लूंगा !

आधुनिक महाकाव्यों की परम्परा का सूत्रपात बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण से माना जा सकता है। जब गुप्त जी तथा हरिऔध ने अनेक खण्डकाव्यों तथा महाकाव्यों का प्रणयन प्रारंभ किया। इस समय के महाकाव्यों का सबसे प्रमुख स्वर पौराणिक कथाओं का नवीन संदर्भ में अवतीर्ण करना था। इसी कारण, इस काल के महाकाव्यों में वर्णनात्मकता तथा घटनाओं का क्रिया प्रतिक्रियात्मक रूप प्राप्त होता है। 'प्रिय प्रवास'; 'जयद्रथबध'; 'साकेत' आदि काव्यों में घटना तथा वर्णन का मुखरित रूप मिलता है; परन्तु गुप्त जी के 'साकेत' 'जय भारत' तथा 'यशोधरा' काव्यों में हमें नाटकीय गीति-शैली का भी यदा कदा संकेत मिलता है जो वर्णनात्मकता को अधिक संवेदनशील बनाने में समर्थ है। आगे के महाकाव्यों में इस वर्णनात्मकता तथा घटनात्मकता का अभाव प्रतीत होता है जो 'कामायनी' 'कुरुक्षेत्र' तथा 'उर्वशी' के शिल्प-विधान में द्रष्टव्य है। इन महाकाव्यों की शैली कहीं अधिक संकेतात्मक एवं व्यंजनापूर्ण हो गई है। 'कुरुक्षेत्र' में कथानक नहीं के बराबर है, और उसमें विचारों का जो

---

१. एकलव्य—एक अध्ययन, पृ० ३७-४५

२. डॉ० रामकुमार वर्मा का काव्य, प्रेमनाथ त्रिपाठी, पृ० १६९-१७३

आलोड़न प्राप्त होता है, वह आधुनिक भावबोध को मुखर करता है। इसी परम्परा में 'एक-लव्य' महाकाव्य एक नई कड़ी के रूप में आता है, जिसमें आधुनिक युग-बोध के साथ, पौरा-णिक-आख्यान के एक धूमिल पात्र का सहारा लेकर, कवि ने नाटकीयता एवं संकेतात्मकता के साथ जो वैचारिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है, वह सत्य में, एकलव्य की महानता का परि-चायक है। इस महाकाव्य का वैचारिक वैभव, कथानक के घटनाचक्र में समाहित न होकर, पात्रों तथा स्थितियों के संघर्ष में सन्निहित है। इस मत का पूर्ण विवेचन यथास्थान किया जाएगा।

प्रारम्भ के महाकाव्यों में उद्देश्य अथवा आदर्श का स्वर इतना प्रमुख हो जाता था कि कहीं-कहीं पर वह ऊपर से थोपा हुआ सा प्रतीत होता था। गुप्त जी तथा हरिऔध जी में यह प्रवृत्ति अत्यन्त स्पष्ट है। यहाँ तक कि 'कामायनी' में भी इस प्रवृत्ति को कवि बचा नहीं सका है। यह दूसरी बात है कि कवि ने उसे अधिक व्यंजनात्मक रूप से रखने का प्रयत्न किया है। इस दृष्टि से 'एकलव्य' का स्थान अपनी विशिष्टता को लिये हुए है। यहाँ पर उद्देश्य तो है, पर वह उद्देश्य ऊपर से थोपा हुआ सा नहीं ज्ञात होता है। मेरा यह अर्थ नहीं है कि कोई भी महान् कृति उद्देश्यहीन होती है, पर इतना स्वयंसिद्ध है कि उसका उद्देश्य इस प्रकार से व्यंजित होना चाहिए कि वह पात्रों तथा स्थितियों के विकास में इस प्रकार से घुला मिला हो कि पाठक एक को दूसरे से अलग करके देखने में असमर्थ हो। 'एकलव्य' के उद्देश्य का विकास कवि ने इसी शिल्प से प्रस्तुत किया है। एकलव्य तथा आचार्य द्रोण की मनोवैज्ञा-निक प्रतिक्रियाओं में उद्देश्य जैसे स्वयं मुखर सा हो जाता है; कवि को इसकी आवश्यकता कहीं पर भी नहीं पड़ी है कि वह स्वयं अपने विचारों को पाठकों के ऊपर थोपने का प्रयत्न करें।

आधुनिक महाकाव्यों की प्रारम्भिक दशा में नायक के महत्त्व तथा महानता को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया जाता रहा है। 'साकेत' 'यशोधरा' 'कृष्णायन' 'कामायनी' 'उर्वशी' आदि महाकाव्यों में नायक अथवा नायिका के कुल-शील का अवश्य ध्यान रहता था। परन्तु 'एकलव्य' की स्थिति इस परम्परा से नितान्त भिन्न है। यहाँ पर 'नायक' निषाद या अनार्य संस्कृति का प्रतीक है जिसे कवि ने एक ऐसे व्यक्तित्व का रूप दिया है जिसकी महानता, उसके 'कुल-शील' का परिचायक है जो इस तथ्य को प्रकट करता है कि व्यक्ति जन्म से नहीं, पर कार्य से महान् होता है। जहाँ तक आदर्शों का प्रश्न है, उसे डॉ० वर्मा ने 'एक-लव्य' के चरित्र द्वारा व्यंजित किया है और उस आदर्श-निर्माण में आधुनिक भाव-बोध का भी यथोचित सहारा लिया है जो स्वाभाविक भी है और अनिवार्य भी। प्रसिद्ध इतिहास-दार्श-निक टायनबी का मत है कि हम सम्पूर्ण इतिहास को अपने समय की दृष्टि से ही आँकते हैं और उसका मूल्यांकन करते हैं[1]; यही बात कवि के लिए भी सत्य है जो किसी ऐतिहासिक अथवा पौराणिक आख्यान को ग्रहण कर, अपने 'समय की दृष्टि' को उसमें अन्तर्हित भी करता है और साथ ही साथ, उस आख्यान को एक नवीन परिप्रेक्ष्य में अवतीर्ण करने का प्रयत्न करता है। इस दृष्टि से 'एकलव्य' महाकाव्य आधुनिक दृष्टि को और आधुनिक विचार धारा को सुन्दर रूप में समक्ष रखता है। इस विचार धारा का क्या रूप है और उसकी अन्विति किस धरातल पर हुई है, इसका सम्यक् विवेचन यथास्थान किया जाएगा।

---

१. ए स्टडी इन हिस्ट्री, टायनबी, पृ० २९

शिल्प-संगठन—शिल्प संगठन महाकाव्य का प्राण है क्योंकि इसी के आधार पर कवि अपने विषय को संप्रेषित करता है। अनेक सौंदर्य-शास्त्रियों ने शिल्प को, विषय की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया है; परन्तु महाकाव्य की दृष्टि से दोनों का समान महत्त्व है, क्योंकि 'विषय' उसी समय महत्त्व ग्रहण करता है (जहाँ तक सर्जनात्मक साहित्य का प्रश्न है) जब वह 'शिल्प' के सौंदर्य का निखार प्राप्त करता है। 'एकलव्य' के शिल्प में ऐसा ही सौंदर्य प्राप्त होता है क्योंकि उसका विषय जहाँ दो संस्कृतियों के संघर्ष को लेकर चलता है, वहीं एकलव्य एवं आचार्य द्रोण के मानसिक संघर्ष को भी अपना विषय बनाता है। वैसे तो 'विषय' का विस्तार सीमित है, पर कवि ने उस सीमा के अन्दर ही शिल्प के सौंदर्य को इस प्रकार उभारा है कि महाकाव्य में शिल्प और विषय दोनों एकरस हो गए हैं।

(१) कथावस्तु की संगठना:—कथावस्तु में विषय के प्रतिपादन को कलात्मक रूप में रखा जाता है। एकलव्य की 'वस्तु' महाभारत की एकलव्य कथा से ली गई है जिसकी ओर स्वयं कवि ने 'भूमिका' के अन्तर्गत संकेत किया है। इस कथा को, जहाँ तक वस्तु-नियोजना का प्रश्न है, कवि ने अतीव कलात्मकता से उसे कल्पना तथा मनोविज्ञान के आधार पर संगठित किया है। इस दृष्टि से, जिन आलोचकों ने एकलव्य की कथावस्तु को प्राचीन नाट्य सिद्धांत पर आधारित माना है और उसी के प्रकाश में 'वस्तु' का विवेचन प्रस्तुत किया है, उनके दृष्टिकोण को मैं गलत नहीं मानता हूँ, पर वह एक पिटी-पिटाई परम्परा मात्र है जो यांत्रिक (Mechanical) सी हो गई है। मैं तो समझता हूँ कि आलोचक अपनी भी एक दृष्टि रखता है, वह केवल परम्परा से चालित नहीं होता है। जैसा कि कहा गया है कि 'एकलव्य' की 'वस्तु' नियोजना में तीन तत्त्व प्रमुख हैं—

(क) कल्पना
(ख) मनोविज्ञान
(ग) राजनीति

और इन्हीं तीन तत्त्वों के सम्मिलित प्रकाश में, कवि ने दो संस्कृतियों के संघर्ष तथा मनोविज्ञान को, राजनीति के फलक पर उभारने का प्रयत्न किया है।

महाकाव्य में कल्पना का प्रयोग अत्यंत दुर्लभ कार्य है। कल्पना कदापि दूर की उड़ान नहीं है, वह सर्जनात्मक प्रक्रिया में मूलतः सृजनात्मक (Creative) है। उसके द्वारा रचनाकार कथातंतुओं को एक तर्कमय रूप में अनुस्यूत करता है। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक कल्पना का प्रयोग तर्क तथा संयम से करता है, उसी प्रकार एक कृतिकार की कल्पना, जब संयम को तिलांजलि दे देती है, तो वह कल्पना सृजनात्मक नहीं हो सकेगी। आज के वैज्ञानिक युग में कल्पना इसी रूप में मान्य हो सकती है! वह अब केवल उपमानों तथा असंयमित तथा भावनाओं का रंगस्थल नहीं है। 'एकलव्य' में कल्पना कहीं अधिक सृजनात्मक हो सकी है क्योंकि कवि ने उच्छृंखल कल्पना का बहुत कम आश्रय लिया है। एकलव्य का आचार्य द्रोण के द्वारा अस्वीकृत होने का कारण कल्पना द्वारा शासित होने के साथ ही साथ, समसामयिक राजनीति के प्रकाश में एक नवीन संदर्भ उपस्थित करता है। एकलव्य में 'कल्पना' अनेक रूपों में प्रयुक्त हुई है। पात्रों के मनोवैज्ञानिक संघर्ष में, एकलव्य जननी तथा नागदत्त जैसे पात्रों का सृजन, जिनके द्वारा कथावस्तु के संवेदनशील स्थलों को कवि सुन्दरता से उभार

सका है। इसी प्रकार आचार्य द्रोण का एकलव्य विषयक साधना का स्वप्न देखना और एकलव्य द्वारा सार्थवाहों से अपनी माँ के पास संदेश भेजना आदि प्रसंग कल्पित हैं, पर कथानक की गति में, और पात्रों के चरित्र विकास में, इनका योगदान अत्यन्त स्पष्ट है। इसी स्थान पर पात्रों का जो मनोवैज्ञानिक संघर्ष दिया गया है, वह भी कथा वस्तु को एक गरिमा देने में समर्थ है। संक्षेप, में उपर्युक्त तीनों तत्त्वों का एक समन्वित रूप हमें इस महाकाव्य में प्राप्त होता है जिसका यदा कदा विवेचन प्रसंगवश होता रहेगा।

कथावस्तु के संदर्भ में कल्पना का तर्कमय रूप हमें सर्ग-विभाजन में प्राप्त होता है। कवि ने चौदह सर्गों के अन्तर्गत एकलव्य कथा को सत्य तथा कल्पना के आयामों में बाँधा है। प्रारम्भ के ७ सर्ग (दर्शन, परिचय, अभ्यास, प्रेरणा, प्रदर्शन, और आत्म-निवेदन) महाभारत के अन्य प्रसंगों से जुड़े हुए हैं। जिसमें आचार्य द्रोण की विगत कथा तथा एकलव्य से उनका सम्बन्ध-निर्देश प्राप्त होता है जो कथा की पृष्ठभूमि तथा वस्तु संगठना को एक निश्चित रूप प्रदान करता है। इस प्रकार, प्रारम्भ के ये सर्ग प्रधानतया क्षत्रिय-नीति के संदर्भ में आचार्य द्रोण के मनोविज्ञान को समझने के लिए आवश्यक हैं। सबसे बड़ी विशेषता इन सर्गों की यह है कि इनका सम्बन्ध घटनाओं की अपेक्षा पात्रों के मनोविज्ञान को मुखर करने में अधिक सहायक होते हैं; और यही कारण है कि महाकाव्य में घटनाओं का जो भी तारतम्य है, वह मनोविश्लेषण पद्धति पर अधिक आश्रित है न कि घटनाचक्र के घात-प्रतिघात में। इसी प्रकार अंत के ५ सर्ग (साधना, स्वप्न, लाघव, द्वन्द्व और दक्षिणा) मुख्यतः एकलव्य से सम्बन्धित हैं जो उसके चरित्र को मुखर करते हैं और महाकाव्य के उद्देश्य को व्यंजित मात्र करते हैं।

(२) चरित्र-विश्लेषण शिल्पः—सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो सर्गों का विभाजन, पात्रों के चरित्र-विश्लेषण के अनुसार ही किया गया है। इस शिल्प के अन्तर्गत कवि ने मूलतः मनोवैज्ञानिक आधार ही ग्रहण किया है। इस मनोवैज्ञानिक स्थिति को कवि ने अनेक रूपों में रखने का प्रयत्न किया है जो मनोविज्ञान के सिद्धांतों को किसी न किसी रूप में रखते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि मनोविज्ञान का यांत्रिक प्रयोग काव्य की कसौटी हैं, पर इतना निश्चित है कि यदि, कृतिकार को मनोविज्ञान का ज्ञान है, तो वह अपने पात्रों को विभिन्न स्थितियों में डालकर उनकी मनोवृत्तियों को अधिक स्वाभाविक विकास दे सकता है। यदि 'एकलव्य' के चरित्र-विश्लेषण-शिल्प का निरीक्षण किया जाए तो उसके प्रमुख पात्रों (एकलव्य, द्रोण, अर्जुन आदि) को अनेक स्थितियों में डालकर, आत्मकथन-शैली के द्वारा, उनके चरित्र की रेखाओं को उभारा गया है। एकलव्य में यह आत्मकथन शैली, पात्रों को स्वयं आत्मविश्लेषण की ओर प्रेरित करती है जिसके द्वारा पाठक स्वयं पात्रों के मनोविज्ञान में क्रमशः प्रविष्ट होता जाता है और कृतिकार पात्रों को एक स्वतंत्र वातावरण देता है कि वे नाटकीयता से स्वयं अपना विकास कर सकें।

दूसरा तत्त्व जो चरित्र-विश्लेषण-शिल्प के अन्तर्गत प्राप्त होता है, वह मनोविज्ञान के अनेक क्षेत्रों का है। इसके अन्तर्गत स्वप्न-मनोविज्ञान, परा-मनोविज्ञान, बाल-मनोविज्ञान, तथा ओडीपस-ग्रंथि का एक 'सम्मिलित' रूप मिलता है। एक अन्य विशेषता जो इस महाकाव्य में प्राप्त होती है, वह यह है कि उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक प्रकारों का एक सम्मिलित रूप

ही प्राप्त होता है, उन्हें हम नितांत एक दूसरे से विलग कर नहीं देख सकते हैं। उदाहरणस्वरूप "स्वप्न सर्ग" के अन्तर्गत आचार्य द्रोण का स्वप्न अचेतन मन की प्रक्रिया भी है और दूसरी ओर 'एकलव्य' का वह बालहठ (मनोविज्ञान) है जो असम्भाव्य को संभाव्य बना देता है। इसी प्रकार, बालमनोविज्ञान का वह प्रसंग जब एकलव्य अपनी माता से हठ करता है, और वह उसके हठ को स्वाभाविक रूप से 'स्वीकारती' हैं, पर इस प्रसंग में मनोविज्ञान की बहु-चर्चित मान्यता 'ओडीपस-ग्रंथि' का वह रूप भी मिलता है जो माता तथा पुत्र का एक दूसरे के प्रति आकर्षण भाव है। यह मान्यता सभी स्थितियों तथा सम्बन्धों में मान्य नहीं है, पर इस स्थल पर हम उस मान्यता के केवल एक अंश को कार्यान्वित देखते हैं। ये सभी सम्बन्ध (माता-पुत्र, पिता-पुत्री तथा बहन-भाई) यौनपरक (Sexual) माने गए हैं और मैं समझता हूँ कि इसमें कोई अन्याय नहीं है क्योंकि संसार के जितने भी सम्बन्ध हैं, वे सब यौन पर ही आधारित हैं, परन्तु उनका रूप सभी स्थलों पर एक सा नहीं होता है। प्रत्येक संबंध में भावना का बदलता हुआ रूप प्राप्त होता है और इसी भावना के परिवर्तन के साथ, यौन-सम्बन्ध भी परिवर्तित होते जाते हैं। 'एकलव्य' का माता-पुत्र सम्बन्ध, इस दृष्टि से, पवित्र तथा महान ही है क्योंकि उसमें भावना का परिवर्तित रूप है। स्वयं कवि ने बाल-हठ को इसी रूप में ग्रहण किया है जिसमें नाटकीयता भी है और माता-पुत्र का प्रेम संबंध भी—

> "एक बात मेरी भी पड़ेगी तुम्हें माननी'
> "कौन सी रे एकलव्य ? बात कभी टाली है ?"
> "तब तो माँ ! कह दो कि बात तेरी मानूंगी'
> कह दो न, माँ कि तेरी बात[1].......!"

अंतिम दो पंक्तियों में बाल हठ का सुन्दर रूप प्राप्त होता है।

'एकलव्य' में स्वप्न और परामनोविज्ञान का भी सुन्दर समाहार मिलता है। आधुनिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत जहाँ इन्द्रियों की सहायता के बिना ज्ञान प्राप्त किया जाता हैं,[2] उसे परामनोविज्ञान की संज्ञा दी जाती है। इसे ही हम प्रतिभाज्ञान (Intuition) भी कहते हैं जिसका सुन्दर विवेचन आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक "रहस्यवाद" में प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से, एकलव्य के 'प्रेरणा-सर्ग' का स्वप्न महत्त्वपूर्ण है क्योंकि स्वप्न-बिम्बों के द्वारा कवि ने एकलव्य के भावी जीवन का संकेत प्रस्तुत किया हैं। स्वप्न में वह देखता है (पृ० ७४-७६) कि उसके सम्मुख आचार्य द्रोण खड़े हैं। मंत्र का एक चक्र आता है और वह भयभीत हो जाता है। पास ही कूप की वीटिका पड़ी है। वह आश्वासन देती है—

कि "मंत्रशक्ति तुमको भी कूप से उठावेगी"

फिर एक मेघ खंड आता है जिसमें आचार्य द्रोण छिप जाते हैं। तत्पश्चात् एक मृत्तिका के ढेर में अनेक पुष्प दृष्टिगोचर होते हैं। उनमें द्रोण का मुख दिखाई देता है और तभी एक-लव्य, अपना दाहिना हाथ बढ़ाता है और उसी समय एक सर्प उसके अंगूठे को डस लेता है। इस प्रसंग में अनेक बिम्बों का प्रयोग किया गया है जो भावी घटनाओं का संकेत करते हैं। द्रोण का बादल के पीछे छिप जाना इस बात को स्पष्ट करता है कि वे एकलव्य की साधना में सहयोग न देंगे। वीटिका का आश्वासन एकलव्य की सफलता का प्रतिरूप है। मृत्तिका

---

१. एकलव्य, प्रेरणा सर्ग, पृ० ७८

२. द न्यू आउट लाइन ऑफ मार्डर्न नालेज, जे० बी० राइन, पृ० १९३

का ढेर, एकलव्य द्वारा निर्मित द्रोण की मूर्ति है; पुष्प श्रद्धा भावना के प्रतीक हैं तथा सर्प वह राजनीति का दंश हैं जो एकलव्य का अहित करता है। इस प्रकार प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक युंग (Junq) का यह मत 'कि स्वप्न भावी जीवन का भी संकेत करते हैं[3]" एक सत्य प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'ममता' सर्ग में एकलव्य जननी का स्वप्न और एकलव्य-साधना का आचार्य द्रोण को आने वाला स्वप्न– ये ऐसे प्रसंग हैं जिनके द्वारा कवि ने एकलव्य और आचार्य द्रोण के मनः-संघर्ष को तीव्रतम करने की भूमिका प्रस्तुत की है जो आगे विकास को प्राप्त करती हैं। इस परा विज्ञान के अंतराल में, चरित्र-विश्लेषण की दृष्टि से, एक अन्य तत्त्व भी प्राप्त होता है। जो अध्यात्म की ओर संकेत करता है जिसके द्वारा कोई ऐसी आन्तरिक शक्ति अवश्य है जो साधना के कठिन व्रत को पूरा करने में समर्थ होती है जबकि साधक के सामने साध्य तो है, पर प्रेरणा तथा मार्ग देने वाला गुरु नहीं। स्पष्टतः, यहाँ पर मनोविज्ञान आकर रुक जाता है और आत्मिक शक्ति का ऊर्ध्व लोक प्रकट होता है। यही भारतीय चिंतन पर आश्रित आध्यात्मिक-मनोविज्ञान (Spiritual Psychology) है जिसका संधिस्थल हमें एकलव्य के अंतिम सर्गों में प्राप्त होता है। इन सब प्रसंगों के द्वारा एकलव्य और द्रोण के चारित्रिक वैभव को साकार ही नहीं किया गया है, पर द्रोण के घुटते हुए मनोविज्ञान को सुंदरता से उभारा गया है।

(३) बिम्ब-विधानः—स्वप्न-मनोविज्ञान के अन्तर्गत 'बिम्ब' शब्द का प्रयोग किया गया है। आधुनिक भाषा प्रयोग में 'बिम्ब' प्रयोग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मैं 'एकलव्य' की भाषा और बिम्ब-विधान को ही लूंगा, पर भाषा के विवेचन के अन्तर्गत नाद, अर्थ, गुण और अलंकारों की परम्परागत परिपाटी का पालन करना मैं व्यर्थ समझता हूँ क्योंकि इस दृष्टि से भी एकलव्य पर अनेक समीक्षकों ने विचार किया है।[1]

काव्य-भाषा में बिम्ब विधान एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है क्योंकि जीवन में एक बिम्ब का प्रस्तुतीकरण कहीं अधिक महत्त्व रखता है अपेक्षाकृत बहुत सी कृतियों की रचना से।[1] यही कारण है कि आधुनिक बिम्बवादियों ने केन्द्रीभूत अर्थ को काव्य-भाषा का प्राण माना है। बिम्ब का कार्य अनुभूत वस्तु का प्रस्तुतीकरण है और प्रतीक का कार्य किसी विचार या प्रत्यय का प्रतिनिधित्व करना है। बिम्बात्मक-प्रतीक में प्रस्तुति तथा प्रतिनिधित्व दोनों का संयोग होता है। 'एकलव्य' के बिम्ब इसी कोटि में आते हैं। उनमें से सबसे प्रमुख बिम्ब 'धनुर्वेद' का है जो जीवन तथा दर्शन दोनों क्षेत्रों की प्रस्तुति तथा प्रतिनिधित्व करता है। उदाहरणस्वरूप, प्रकृति वर्णन के संकेत के लिए धनुष-संधान का जो बिम्ब कवि ने लिया है, वह सृष्टि को ही एक संधान-रूपक दे देता है। इस बिम्ब में प्रस्तुति ही मुख्य है, यथा—

रवि रश्मियाँ उठीं ज्यों सूची-मुख तीर हों
छूटने ही वाले हों, जो क्षितिज के चाप से।

---

३. साइकलाजी आफ द अनकांशस द्वारा युंग, पृ० ७८

१. उदाहरणस्वरूप "एकलव्य एक अध्ययन" में तथा "डा० रामकुमार वर्मा का काव्य" नामक पुस्तकों में इसी दृष्टिकोण का पालन किया गया है।

२. एज़रा पाउंड का अभिमत, उद्धृत 'नई कविता' से, डॉ० जगदीश गुप्त के निबंध से पृ० १८८

मात्र संधान में ही तिमिर वेध हो गया
प्रेरित हुआ है, खग कलरव मंत्र से ।।[१]

इसी प्रकार धनुर्वेद का बिम्ब 'एकलव्य' की साधना का चित्र ही खड़ा कर देता है और कहीं पर एकलव्य का संधान चित्र भूत, भविष्य और वर्तमान का संधिस्थल हो जाता है ।[२] ऐसे स्थलों पर हमें बिम्बात्मक-प्रतीक की प्रस्तुति मिलती है ।

'एकलव्य' महाकाव्य के विराट-फलक पर हमें कुछ ऐसे प्रकृति-चित्रण भी प्राप्त होते हैं जो चित्र-बिम्ब की सृष्टि करते हैं । इसमें ऐसे उदाहरण आते हैं जो किसी बिम्ब के द्वारा, प्रकृति के किसी पक्ष का चित्र साकार करते हैं । डा० वर्मा ने प्रकृति-चित्रों के ऐसे प्रयोग अनेक ग्रन्थों में किए हैं, पर एकलव्य में ऐसे चित्र 'बिम्ब' की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं । प्रात: काल का वर्णन है जब आकाश पर श्वेत रंग आ जाता है और नक्षत्र धूमिल पड़ने लगते हैं । इस चित्र, को कवि ने, स्वप्न और नींद के बिम्ब-विधान से सांकेतिक प्रस्तुति की है—

अम्बर की नीलिमा में श्वेत रंग आ गया,
तारे कुछ फीके पड़े, वायु बही धीरे से ।'
जैसे स्वप्न सरक रहे हैं मन्द गति से,
और जीर्ण नींद-पत्र गिरा दृग-वृन्त से ।[3]

इसी प्रकार एक शरद् चित्र में, शरद् आगमन का संकेत 'मंथन' के बिम्ब से लिया गया है—

आया शरद् प्रकृति का मीत ।
वर्षा के मंथन से निकला
जैसे यह नवनीत ।।[४]

यहाँ पर हमें परम्परागत षट्ऋतुओं का वर्णन मिलता है जिसमें रीतिकालीन वियोगिनी नायिका के दर्शन तो होते हैं, पर संदर्भ के परिवर्तन के कारण, वैसी अनुभूति नहीं होती है, क्योंकि यह माँ के पवित्र ममत्व से उद्भूत उद्गार हैं । इसके अतिरिक्त, मुझे 'एकलव्य' में और सुन्दर बिम्ब नहीं मिल सकें, उदाहरण, दृष्टांत तथा उपमाओं का एक अनोखा कल्पना-विलास ही मिला है जो सदा से कवि की प्रवृत्ति ही रही है ।

वैचरिक परिप्रेक्ष्य:—उपर्युक्त शिल्प-संगठना के विभिन्न तत्त्वों के प्रकाश में यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि 'एकलव्य' का कला-पक्ष जितना उन्नत है, उससे कम उसका वैचारिक नहीं है । मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इस महाकाव्य में विचार और शिल्प का एक संयमित रूप प्राप्त होता है । अधिकांशत: वैचारिक स्थलों पर शिल्प-पक्ष कमजोर नहीं होने पाया है और महाकाव्य की महत्ता इसी तथ्य पर मूल्यांकित की जाती है ।

'एकलव्य' का वैचारिक वैभव दो आयामों को स्पर्श करता है और इन आयामों का

---

१. एकलव्य, पृ० ९७ प्रदर्शन सर्ग
२. वही, पृ० १२५
३. एकलव्य, साधना सर्ग, पृ० ९११
४. वही, ममता सर्ग, पृ० २५७

सम्बन्ध, मानवीय ज्ञान का एक समन्वित धरातल है जो आधुनिक भाव बोध का सुन्दर परिचय देता है। ये दो आयाम हैं—(१) जीवन-दर्शन (२) वैज्ञानिक-दर्शन।

(१) जीवन-दर्शन:—एकलव्य का समस्त जीवन-दर्शन जगत-सापेक्ष है। उसका मूल है गतिशीलता और पूर्णता। एकलव्य तथा द्रोण के चारित्रिक-विकास के द्वारा इस तत्त्व का समाहार किया गया है। वहाँ जीवन एक धनुर्वेद है जिसमें प्रतिशोध की गतिशीलता है[१], परन्तु 'एकलव्य' महाकाव्य इस प्रतिशोध को ही ध्येय नहीं मानता है, पर इस शक्ति के द्वारा जीवन में गति का समावेश चाहता है जो मिटती नहीं है, पर अवतार लेती है।[२] यही कारण है कि जीवन-नद का प्रवाह चिरन्तन है जिसका ध्येय सिंधु में विलयन है।

"और स्वयं अपना प्रवाह देता सिन्धु को"[३] यही विलयन की पूर्णता का द्योतक है क्योंकि जीवन की गहराइयों में ही ऐसी शक्तियाँ हैं जो परिवर्तन को और अपने को पूर्ण करने का निरन्तर प्रयास करती हैं।[४] यहाँ पर कवि ने लय-समाधि का जो महत्त्व प्रदर्शित किया है, वह एकलव्य की साधना का चरमोत्कर्ष है। जीवन की गतिशीलता, जब अहंकार तथा द्वेष का तिरोभाव कर, साध्य से एकीभूत हो जाती है, तभी इस समाधि का रूप मुखर होता है। यह समाधि-दशा एक विशेष प्रकार की चैतन्यता है जो सुप्त रहती है; और कोई प्रबल प्रेरणा पाकर गतिशील हो जाती है। यही प्रेरणा ही वह शक्ति है जो—

"चेतना में व्यक्त हुई गतिशील आत्मा सी
सत्य के भी सत्य में प्रवेश चली पाने को
दृष्टि एकलव्य की।"[५]

यह दृष्टि उसी समय प्राप्त होती है, जब दृष्टि और लक्ष्य में समभाव हो, उनमें परस्पर कर्षण हो और उनके मध्य कोई व्यवधान न हो। आचार्य द्रोण के शब्दों में, जब तक दृष्टि और लक्ष्य में अनेक दृष्टियाँ तथा व्यवधान रहेंगे, तब तक लक्ष्य-भेद असम्भव है—

"जब लक्ष्य भेदने में ये अनेक दृष्टियाँ
हैं तो लक्ष्य भेद होगा कैसे एक वस्तु का'[६]

अस्तु जीवन-दर्शन, का सबसे बड़ा तत्त्व गतियुक्त सम दृष्टि है जो लक्ष्य के प्रति आस्थावान् हो। एकलव्य की आस्था, श्रद्धा और त्याग की कसौटी पर खरी ही नहीं उतरती है, पर वह अपने में एक ऐसा मूल्य (Value) है जिसके बगैर जीवन का अस्तित्व अर्थहीन माना गया है। इसी 'आस्था' के कारण स्वप्न भी सत्य बन जाते हैं। और साथ ही कल के भूले हुए स्वप्न भी सत्य बन जाते हैं।[७] इसी से, श्रद्धा और आस्था में एक शक्ति होती है जो एकलव्य का कथानक प्रकट करता है।

---

१. एकलव्य, पृ० १४ दर्शन सर्ग
२. वही, पृ० २७६ दक्षिणा सर्ग
३. वही, पृ० २७६ " "
४. एन आइडियलिस्ट व्यू आफ लाइफ, राधाकृष्णनन्, पृ० ६१
५. एकलव्य, साधना सर्ग, पृ० १९९-२००
६. एकलव्य, अभ्यास सर्ग, पृ० ५८-५९
७. एकलव्य, साधना सर्ग, पृ० १९०

(२) वैज्ञानिक-दर्शन:—जब हम आस्था का प्रश्न उठाते हैं, तो यह कहा जाता है कि विज्ञान ने हमारी आस्था को खंडित किया है और हमारे अस्तित्व को निरर्थक साबित किया है। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक-दर्शन में आस्था का जो रूप प्राप्त होता है वह कोरी अंध भक्ति का पोषक नहीं है, उसकी आस्था सत्य की सापेक्षता में है न कि उसकी निरपेक्षता में। वैज्ञानिक विचार सत्य अथवा ईश्वर को सापेक्ष मानता है, उसे संसार के साथ मानता है। वह ईश्वर को एक शक्ति रूप देता है जो एक परिवर्तनशील मूल्य है। हर युग की एक आस्था होती है और आधुनिक युग की भी अपनी विशिष्ट आस्था है जो विज्ञान की देन है जो निरन्तर दर्शन तथा धर्म की आस्थाओं में परिवर्तन कर रही है। अस्तु, आज के जितने भी मूल्य माने गए हैं, वे सापेक्षिक ही हैं। असीम भी सीमा के परिवेश में बंध चुका है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक चिंतक आइंस्टीन ने सापेक्ष सत्य को ही मूल्यवान् माना है। दिक् काल का महत्त्व ही सापेक्षिक है और असीम की सीमा भी सापेक्षिक हो चुकी है। डॉ० वर्मा ने इस सम्पूर्ण स्थिति का इस प्रकार संकेत किया है—

नभ की दिशाएँ चौगुनी सी हुई जाती हैं
सीमा हीन की भी सीमा दृष्टिगत होती है।[1]

चार आयामों से युक्त दिक्काल ही सत्य है जिसके अन्दर समस्त ब्रह्मांडों की सीमाएँ अन्तर्निहित हैं। आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन की यह सबसे बड़ी प्रस्थापना है। यही कारण है कि जब हम दिक् और काल (Time and space) के सापेक्षिक सत्य को ग्रहण करते हैं, उसी के साथ हमें गति की महत्ता भी माननी पड़ती है। जीवन दर्शन के संदर्भ में 'गतिशीलता' के महत्त्व पर विचार किया गया था, और वैज्ञानिक चिन्तन में गति तो समस्त सृष्टि का एक मूलभूत तत्त्व ही है। प्रत्येक परमाणु अपनी क्रियाशीलता में ही सृष्टि करता है; प्रत्येक ग्रह और नक्षत्र गति सिद्धान्त का पालन करते हैं; इन अणुओं का उल्लास (Veracity) ही सृष्टि का रहस्य है—

सृष्टि के समस्त कण गति के प्रवाह में
हैं रहस्य-चक्र बीच नृत्य में निरत से।
मौन में उल्लास किस भाँति सूक्ष्म रूप से,
करता निवास चेतना से ओतप्रोत हो।[2]

यदि अणु की रचना पर ध्यान दें, तो लगता है जैसे "एक एक विश्व मौन एक एक कण में"[3] है और उसकी अन्तर्रचना सौर-मंडल के समान ही प्राप्त होती है।

आधुनिक वैज्ञानिक चिंतन विश्व रचना के प्रति एक अन्य दृष्टि को भी समक्ष रखता है जो विकासवाद (Evolution) से सम्बन्धित है। सृष्टि-रचना में जैव (चेतन) और अजैव (जड़) दोनों का समान महत्त्व है अथवा जिसे हम अजैव कहते हैं, वह ही जैव का रूप धारण करता है। इस प्रकार जैव और अजैव (Organic and Inorganic) में तारतम्यता है—दोनों अन्योन्याश्रित हैं। डॉ० वर्मा ने इसी तथ्य को काव्यात्मक रूप दिया है और 'एक नाद' की जो धारणा सम्मुख रखी है, वह जड़ और चेतन का एक

---

१. एकलव्य, " पृ० २०६
२. वही, साधना सर्ग, पृ० २०२
३. वही, स्तव, सर्ग पृ० ५

तारतम्य मूलक आधार है, केवल उनमें प्रकार-भेद है—

टूट गए बंध, जड़ और चेतन सभी
एक नाद में हो लीन, स्पन्दित से हो उठे।
यदि जड़ उस दिव्य राग का स्थायी है
तो समस्त चेतना है अन्तरा आलाप सा।।

अथवा

संचरणशील है, सदैव कण-कण में
जड़ नहीं जड़, वह चेतनावरण है।[1]

यही नहीं डॉ० वर्मा ने जड़ और चेतन को दृष्टि का भेद माना है अथवा दूसरे शब्दों में, यह दृष्टि का संकोच ही है जो हमें जड़ और चेतन को अलग अलग देखने को प्रेरित करता है।[2] यही दृष्टि "अद्वैत-दृष्टि है" जिसकी ओर विज्ञान गतिशील है।

महाकाव्यत्व:—उपर्युक्त तत्त्वों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष स्वयं साक्ष्य है कि 'एकलव्य', महाकाव्यों की परम्परा की दृष्टि से, कथावस्तु तथा चरित्रांकन-शिल्प की दृष्टि से, वैचारिक वैभव तथा उद्देश्य की महानता की दृष्टि से, यथार्थ में, महाकाव्य के सभी प्रमुख तत्त्वों से समन्वित है। इस के अतिरिक्त शैली की उदात्तता एवं विराट भावों के अंकन की दृष्टि से, 'एकलव्य' महाकाव्य की भावभूमि की सफल अभिव्यक्ति करता है। इस पक्ष का अत्यधिक विवेचन समीक्षा ग्रंथों में किया जा चुका है जिसकी ओर प्रथम ही संकेत हो चुका है, उसकी पुनरावृत्ति यहाँ व्यर्थ है। दूसरी ओर, मैंने उपर्युक्त जिन संदर्भों एवं प्रकरणों का विवेचन किया है, वे भी अपरोक्ष रूप से इसी तथ्य को सम्मुख रखते हैं कि एकलव्य महाकाव्य की उदात्त-भावना का परिचय देता है।

इस दृष्टि से, एकलव्य का महाकाव्यत्व उसकी प्रभावान्विति में तथा उसकी रसवत्ता में समाहित है। 'रस' की एक अबाध धारा मुक्त छन्दों में मुक्त होकर प्रवाहित हुई है। मेरे विचार से, रस-परम्परा को एक गतिशील आयाम इस महाकाव्य में दिया गया है। उसे मनोविज्ञान, विचार और भावनाओं के समन्वित धरातल पर उपस्थित किया गया है। यही कारण है कि रस निष्पत्ति केवल भावना तथा कल्पना के स्तर पर न होकर, विचारों तथा संवेदनाओं के स्तर पर होती है। उपर्युक्त वैचारिक प्ररिप्रेक्ष्य के विवेचन से यह स्पष्ट है कि कवि की रचना प्रक्रिया में 'रस' केवल एक प्राचीन परम्परा का द्योतक न होकर वह आधुनिक-भावबोध की भूमि पर भी प्रतिष्ठित है। यही कारण है कि डॉ० रामकुमार वर्मा ने इस महाकाव्य के द्वारा रस को विचारात्मक तथा संवेदनात्मक धरातलों पर एक साथ प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयत्न किया है। यहाँ पर यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि रस की धारणा सभी स्थानों पर नहीं घटित की जा सकती है। आज की नई 'कविता को' हम रस-सिद्धान्त पर घटित नहीं कर सकते हैं क्योंकि 'रस' की अपनी सीमाएँ हैं और आज की कविता की अपनी सीमाएँ; उन दोनों को परस्पर मिला देने पर, हम दोनों के प्रति अन्याय ही अधिक कर सकते हैं। डॉ० वर्मा के 'एकलव्य' महाकाव्य की महत्ता इसी बात में निहित है कि उसमें कवि ने बड़े कौशल से आधुनिक भाव-बोध तथा शिल्प को रसाश्रित किया है। और फिर कवि

१. एकलव्य साधना सर्ग, पृ० २०२
२. वही, लाघव सर्ग, पृ० २५३

सदैव से 'रसवादी' परम्परा का पोषक रहा है और वह कैसे उस परम्परा से दूर हो सकता था!

'एकलव्य' का महाकाव्यत्व उसकी प्रभावान्विति में निहित है जो सम्पूर्ण रूप से रस-प्रक्रिया पर आधारित है। प्रभावान्विति मूलतः कथावस्तु के स्वरूप पर निर्भर करती है एकलव्य की कथावस्तु का विकास मूलतः क्रमागत है एवं व्यवस्थित है। वह यूरोपीय महाकाव्य के 'रेचन' (Cathrsis) सिद्धान्त को भी ग्रहण कर सका है। और उसे भी 'रस' के अन्तर्गत समाहित कर सका है। रेचन सिद्धान्त में दो विरोधी भाव (भय और करुणा) कथावस्तु में तीव्रता को प्राप्त होते हैं और मन इन दोनों के मध्य 'रेचन' द्वारा संतुलन तथा शान्ति की स्थापना करता है।[1] कथावस्तु को गति देन में नियति-शक्ति का भी हाथ रहता है। 'ऐकलव्य' में ऐसी स्थितियाँ अनेक हैं। उदाहरणस्वरूप एकलव्य अपने अध्यवसाय द्वारा धनुर्वेद में अपूर्ण लाघव प्राप्त कर लेता है, और उसी समय द्रोण तथा राजनीति द्वारा उद्‌भूत विरोधी शक्तियाँ उद्‌भव होता है और अन्त में, नियति "स्वप्न" के द्वारा द्रोण को एकलव्य की साधना का संकेत देता है और इस प्रकार, नियति एकलव्य के अनिष्ट की तैयारी करती है। इस स्थान पर रेचन प्रक्रिया के दो रूप दिखाई देते हैं। एक का सम्बन्ध द्रोण से है और दूसरे का एकलव्य जननी से। आचार्य द्रोण में प्रतिशोध भावना और वर्ण भेद-भाव से उत्पन्न ग्लानि का रेचन होता है। वे अपने पुराने गुरु और गुरुकुल के आदर्शों को पुनः पहचानते हैं; और इस तरह अपने व्यक्तित्व को संतुलित करते हैं। इसी प्रकार एकलव्य जननी अपने पुत्र के कटे अंगुष्ठ को तथा आचार्य द्रोण के रक्त-रंजित वस्त्र को देखकर भय और करुणा से भर उठती है। इसी के साथ पुत्र की दुर्दशा देखकर वह क्रोधित एवं क्षुब्ध हो जाती है। इस प्रकार क्रोध का आलम्बन ग्रहण कर उसके भय और करुणा के भावों का रेचन होता है। इसी प्रकार, पाठक के भावों का रेचन एकलव्य जननी के साथ होता है। इन प्रसंगों के द्वारा, कवि ने सारे महाकाव्य में एक प्रभावान्विति का समावेश किया है और इस प्रभाव की तीव्रतर अनुभूति उस समय और भी स्पष्ट हो जाती है जब कवि द्रोण तथा एकलव्य के अन्तर्द्वन्द्व को सम्पूर्ण कथावस्तु में प्राण प्रतिष्ठा करता है।

इन मूलभूत तत्त्वों के प्रकाश में, एकलव्य महाकाव्य की उदात्तता और उसकी जीवंत शक्ति स्वयं साक्ष्य है। परन्तु, फिर भी, 'समय' की गति ही यह बता सकेगी कि यह महाकाव्य उस उदात्तता को कहाँ तक कायम रख सकेगा? संभावित सत्य यह माना जा सकता है कि जिस मूल विषय तथा उससे सम्बन्धित जो चिन्तन का अनुभूतिपरक रूप है, वह अवश्य ही उसकी महानता को भविष्य में स्थापित करेगा! जिस प्रकार एक वैज्ञानिक अनुमान तथा प्रयोग के आधार पर भावी घटनाओं की कल्पना करता है, उसी प्रकार आलोचक कृति के विषय तथा विचारों की गहनता के आधार पर उसके भावी स्थान के प्रति केवल अनुमान कर सकता है। और यही कार्य मैंने भी किया है और ईमानदारी से किया है क्योंकि आलोचक की ईमानदारी ही उसका सम्बल है और उसकी दृष्टि ही उस ईमानदारी का परिचायक है। 'एकलव्य' महाकाव्य के रूप में एक ऐसी रचना है जो डॉ० वर्मा की सर्जनात्मक प्रतिभा का चरमोत्कर्ष माना जा सकता है, कम से कम इस तथ्य को मैं बिना किसी पूर्वाग्रह के कह सकता हूँ। खामियाँ तो प्रत्येक कृति में होती है, पर वे खामियाँ पृष्ठभूमि में चली जाती हैं जब समग्र रूप से, उस कृति के पड़नेवाले प्रभावों का मूल्यांकन उचित रूप से किया जाता है।

---

१. एकलव्य, एक अध्ययन, पृ० २२५

●●●
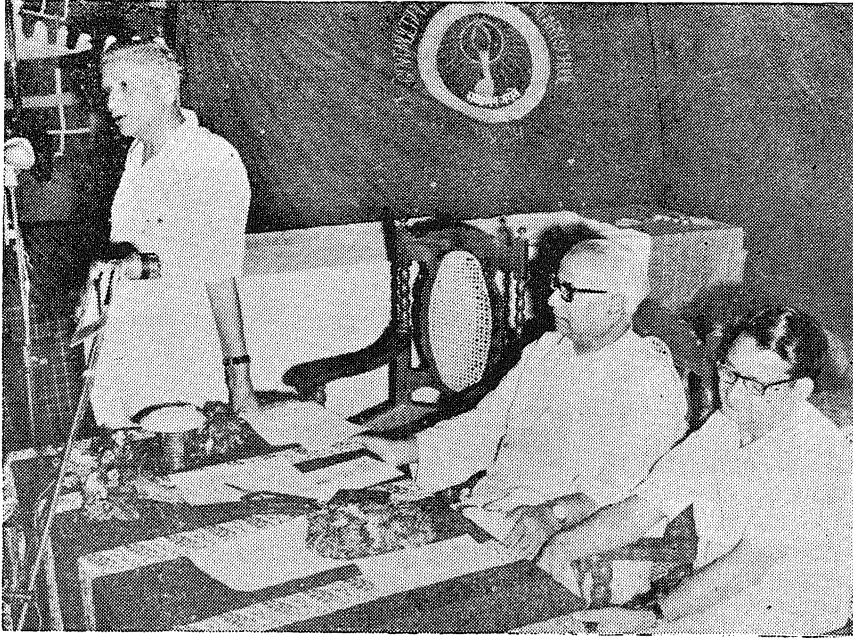
डॉ० रामकुमार वर्मा केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा में दीक्षांत-भाषण देते हुए। बीच में श्री बालकृष्ण राव और उनके दाएँ संस्थान के निदेशक डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा

'एकलव्य' महाकाव्य के तीन पात्र

डॉ० बदरीनारायण श्रीवास्तव काशीनरेश राज० महा० ज्ञानपुर

●

'एकलव्य' महाकाव्य की रचना का मुख्य उद्देश्य ही आचार्य द्रोण तथा एकलव्य का चरित्र चित्रण है। डॉ० वर्मा ने इस महाकाव्य की मुख्य प्रेरणा का निर्देश करते हुए कहा है "राजनीति और समाज के अन्त राल में आचार्य द्रोण और शिष्य एकलव्य के चरित्र की व्याख्या बड़ी मनोवैज्ञानिक होगी, इसी विचार से मैंने इस काव्य की रचना की।" मैंने इस कड़ी में पार्थ अर्जुन के चरित्र को और जोड़ दिया है। वस्तुतः एकलव्यकालीन संस्कृति को समझने के लिए द्रोण, अर्जुन और एकलव्य तीनों के चरित्र को सूक्ष्मरूप से हृदयंगम करना आवश्यक है।

'एकलव्य' की कथावस्तु आर्य-अनार्य संस्कृतियों के संघर्ष का इतिवृत्त है। 'आर्य'द्रोण 'शूद्र' एकलव्य को शस्त्र-शिक्षा देने में असमर्थ थे, इस टेढ़े वर्गभेद को एकलव्य की माँ अच्छी तरह समझती है।[1] उसके पिता को भी आचार्य द्रोण द्वारा एकलव्य के शिष्य बनाए जाने में स देह था।[2] स्वयं लेखक कवि का मत है कि यह वर्ग-भेद इतना उग्र था कि इसे मिटाने के लिए 'रक्त-धारी' ही समर्थ हो सकेगा।[3] इस वर्ण-भेद की उग्रता का एक और कारण था : आर्य शूद्रों को हेय दृष्टि से देखते तो थे, किन्तु उनके समक्ष कोई उच्च आदर्श उपस्थित कर सकने में समर्थ नहीं हो सके थे। एकलव्य के अंगुष्ठ कट जाने पर उसकी माँ द्रोण से कहती है :

> आर्यगण वस्तुएं जो एक बार देते हैं
> उसे लौटा लेना फिर उनका क्या धर्म है ?
> हम तो समझते हैं, दान हुई वस्तु को
> फिर से ग्रहण कर लेना बड़ा पाप है।[4]

आचार्य द्रोण इसी वातावरण की विभूति है। वे भारद्वाज के अयोनिज पुत्र, अंगिरा वंशी, अग्निवेश के शिष्य, वेद-वेदांग शिक्षा-प्राप्त हैं। उत्तर पांचाल के नृप पृषत्-पुत्र यज्ञ सेन द्रुपद उनके सहपाठी थे। शरद्वान ऋषि की कन्या अल्पकेशी कृपी उनकी पत्नी थी तथा अश्वत्थामा उनका पुत्र था।[5] द्रोण ने महान् ब्रह्मचर्य से गुरुसेवा कर धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी।[6]

द्रोण स्वाभिमानी थे, किन्तु वे निर्धन थे। दुग्धाभाव में उन्हें चावल पीस कर अश्वत्थामा को पिलाना पड़ा था। धर्मानुकूल दान प्राप्त करने की दृष्टि से उन्होंने आश्रम छोड़कर देश-देशान्तर का भ्रमण किया, किन्तु प्रेमपूर्वक शुद्धदान उन्हें कहीं भी न मिल सका। परशुराम

---

१. एकलव्य, पृ० ८३। २. वही, पृ० ८७। ३. वही, पृ० २९८।
४. वही, पृ० ३०३-४। ५. वही, पृ० ३४, ६. वही, पृ० ३५।

ने भी धन न देकर धनुर्वेद ही दिया। सहपाठी यज्ञसेन से भी अपमान ही मिला। इन्हीं परिस्थितियों में वे भीष्म के संपर्क में आए थे।[७]

द्रोण थे तो श्यामवर्ण के, किन्तु उनका मुख मंडल तेजोमय था;[८] श्वेत जटाएँ, उन्मत ललाट, कसी भौंहें, विशाल नेत्र, उठी नासिका, श्वेत श्मश्रु उन्हें सहज ही एक गौरवमय स्थान प्रदान करते हैं।[९] फिर भी दरिद्रता और 'उत्तर पांचाल नृप द्वारा घोर भर्त्सना ने उनकी कार्य-विधि को पर्याप्त प्रभावित किया। वस्तुतः इन्हीं दोनों ने उन्हें अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धन्वी बनाने की प्रेरणा दी थी। आगे इस पक्ष पर विशेष प्रकाश डाला जायगा।

द्रोण राजधर्म के मर्मज्ञ थे और यह जानते थे कि किस प्रकार उसकी रक्षा की जाती है। वे जानते थे "कोमलता राजपुरुष के लिए कलंक है।" और मातृभूमि की रक्षा 'शब्द-वीरता' से नहीं, शब्द-वेध वीरता से ही हो सकती है।[१०] राजकुमारों को (कुरु-पांडवों को) द्रोण शब्द-वेध में दक्ष करने की क्षमता रखते थे। राजकुमार भी सींकों के धनुष द्वारा कूप-तल से उनको वीटिका निकालते देख कर उन पर मुग्ध हो गए थे। द्रोण की इसी दक्षता पर मुग्ध होकर भीष्म ने उन्हें राजकुमारों को धनुर्वाण की दीक्षा देने के लिए नियोजित किया था। आचार्य द्रोण ने भी जो कुछ विद्या अपने गुरुजनों से प्राप्त की थी, उसे 'सेवा भरे भाव' से कुमारों को दे दिया था।[११]

अपने अपमान का द्रुपद से प्रतिशोध लेने के लिए आचार्य द्रोण पार्थ को ही 'अस्त्र-शस्त्र कौशल में अजेय पराक्रमी बनना चाहते थे[१२] और इसी कारण जब एकलव्य उनके शिष्यत्व की कामना से उनके चरणों में झुका तो उन्होंने उसे अपना शिष्य बनाने से अस्वीकार कर दिया। इसके मूल में वह जीवन-दर्शन भी था, जो यह मानता था :

> "धनुर्वेद नद जो है! उसके दो तट हैं—
> ब्राह्मण और क्षत्रिय! इसी सीमा रेखा में
> इसका प्रवाह होगा। . . .वैश्य और शूद्र क्या करेंगे धनुर्वेद ले?"[१३]

उनका यह निश्चित मत था कि 'इस निषादवंश में तो वंशी पर्याप्त हैं।"[१४] डा० वर्मा यहीं आचार्य द्रोण को प्रवाह से निकालते भी हैं : द्रोण एकलव्य की श्रद्धा देखकर यह अनुभव करते हैं कि "धन्य होगा, इस पृथ्वीतल में वह आचार्य श्रेष्ठ, जिसके तुम शिष्य हो', फिर भी उनकी सीमाएं थीं। वे राज गुरु थे, वे भूमि-पुत्रों के नहीं, भूमिपतियों के शिक्षक थे, जिनका शिक्षा पर पूरा नियंत्रण था। आचार्य कहते हैं : 'शिक्षानीति राज-नीति के पदों है चलती। शारदा की वाणी यहाँ बोलती है स्वर्ण में।" और जब एकलव्य राजकुमारों की श्रेणी में खड़ा होकर शिक्षा-प्राप्त करता, तो राजकुमारों को हीनता प्राप्त होती। द्रोण गुरुकुल के अधिपति तो थे नहीं, राजकुल के वित्तभोगी थे अतः उन्हें विवश होकर निषाद-पुत्र एकलव्य को अस्वीकार करना पड़ा।[१५]

स्वप्न में एकलव्य को कुशल साधक हुआ देखकर उनका आत्म चिंतन और मुखर हो जाता है। वे जानते हैं कि शिक्षा-वेलि बन्धन-रहित होने पर ही बढ़ती है। वे यह भी जानते

---

७. वही, पृ० ३५-३६॥ ८. वही, पृ० ३१,
९. वही, पृ० ३१। १०. वही, पृ० १९। ११. वही, पृ० १०१। १२. वही, पृ० १२५।
१३. वही. पृ० १२२। १४. वही, पृ० १२२। १५. वही, पृ० १२६।

हैं कि आचार्य अग्निवेश और भार्गव परशुराम यह सुनकर अत्यन्त दुःखी होंगे कि उन्होंने शिक्षा को मात्र राजवेश में सीमित कर दिया फिर भी क्या यह सत्य नहीं है कि उनकी दरिद्रता और द्रुपद से प्रतिशोध की भावना ही उन्हें राजवंश के समीप खींच लाई थी।[१६]

सत्यद्रष्टा द्रोण का स्वप्न-सत्य होता है। द्रोण को एकलव्य की साधना तथा सिद्धि का पता चलता है। विषण्ण अर्जुन के साथ वे उसके समीप जाते हैं। गणों द्वारा ही पुष्प-वर्षा और अपनी परिक्रमा देखकर वे सच्चे हृदय से एकलव्य को आशीर्वाद देते हैं।[१७] वे एकलव्य की प्रशंसा करते हैं, तभी अर्जुन उन्हें 'आर्यवंश रक्षा और पार्थ अद्वितीयता' का स्मरण कराते हैं। वे एकलव्य से गुरुदक्षिणा माँगते हैं। एकलव्य के तुरंत ही प्रस्तुत हो जाने पर वे चिंतन-शील हो जाते हैं और कहते हैं कि एकलव्य सा शिष्य पाकर गुरु की कृतार्थता ही उसकी गुरु-दक्षिणा है, पार्थ को अद्वितीय बनाने का उनका प्रण मूर्खतापूर्ण था। भावावेश में ही यह प्रण करने के लिए वे अपने को दोषी ठहराते हैं। उनके अन्तर्तम में एक विद्रोही भावना भी उठती है। पार्थ यदि उनकी निंदा भी करे कि उन्होंने पार्थ को अद्वितीय बनाने का प्रण करके भी एकलव्य को मंत्रबल से धनुर्वेद की शिक्षा दी तो यह दंड इन जैसे भावावेशी गुरु के उपयुक्त ही है। फिर भी वे संतोष करते हैं कि उन्होंने स्वल्प वेतन के लिए विद्या बेंची है और कुमारों का गुरु होने के नाते वे शूद्र विरोधी हैं। वस्तुतः एकलव्य नहीं उनकी समय ही शूद्र था जिसका दक्षिणा गुष्ठ शक्तिशाली बनकर निंदा के नाराच छोड़ रहा था।[१८] इस वाक्य को संकेत मान कर एकलव्य उन्हें अपना अंगूठा काट कर दे देता है। द्रोण के हृदय में कराह की विद्युत्तरंग उठती है, वे अपने को शूद्र और एकलव्य को विप्र कहते हैं। विवश गुरु की यह मूर्ति दर्शनीय है।[१९] एकलव्य की गुरुभक्ति भविष्य के भाल पर तिलक बनकर रहेगी। एकलव्य की माँ के आने पर गुरु कुछ देर के ही लिए रुक पाते हैं, आर्यजाति की भर्त्सना सुनकर उनका मुख लज्जावनत हो जाता है और शीघ्र ही वे राजधानी के लिए प्रस्थान कर देते हैं।

अर्जुन के लिए आर्यद्रोण का एकलव्य से गुरु दक्षिणा माँगना उतना ही तर्कहीन है। जितना सुग्रीव के लिए राम का बालि-बध। एकलव्य की गुरुभक्ति का दुरुपयोग कर द्रोण ने गुरु-दक्षिणा माँगी और उनके चरित्र को उभारने के लिए ही उन्हें दरिद्रतावश गुरु-कुल त्याग कर राज-सेवा में आने की बात कही गई है। कदाचित् इसी कारण उन्हें अर्जुन के अहंकार से अपमानित भी होना पड़ा है। जो हो, एकलव्य काव्य में द्रोण की अन्तरात्मा को आधुनिक विचारधारा की उदारता से ओत-प्रोत कर दिया गया है।

एकलव्य महाकाव्य का प्रमुख पात्र है स्वयं एकलव्य। द्रोण उसके चरित्र की तीन प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करते हैं: १. धनुर्वेद का सबसे बड़ा अभ्यासी २. अहंकार शून्य ३. गुरुभक्त।[२०] डॉ० वर्मा ने स्वयं ही उसे वह "तीक्ष्ण तीर" कहा है, जो 'भविष्य वेधता है शक्ति से अतीत की।' और वह 'ऐसा बीज है कि जिसने साधना शिला के बीच अग्नि-रस पाया है।" शूद्र होने के नाते द्रोण ने विद्या-दान का निषेध किया, 'किन्तु कौन था जो उसकी 'साधना को रोकता'[२१]

---

१६. वही, पृ० २२२-२३१। १७. वही, पृ० २८१-८२। १८. वही, पृ० २९१-९३। १९. वही, पृ० २९४-९६। २०. वही, पृ० २९३। २१. पृ० ३-१६।

ने भी धन न देकर धनुर्वेद ही दिया। सहपाठी यज्ञसेन से भी अपमान ही मिला। इन्हीं परि-स्थितियों में वे भीष्म के संपर्क में आए थे।[७]

द्रोण थे तो श्यामवर्ण के, किन्तु उनका मुख मंडल तेजोमय था;[८] श्वेत जटाएँ, उन्मत ललाट, कसी भौंहें, विशाल नेत्र, उठी नासिका, श्वेत श्मश्रु उन्हें सहज ही एक गौरवमय स्थान प्रदान करते हैं।[९] फिर भी दरिद्रता और 'उत्तर पांचाल नृप द्वारा घोर भर्त्सना ने उनकी कार्य-विधि को पर्याप्त प्रभावित किया। वस्तुतः इन्हीं दोनों ने उन्हें अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धन्वी बनाने की प्रेरणा दी थी। आगे इस पक्ष पर विशेष प्रकाश डाला जायगा।

द्रोण राजधर्म के मर्मज्ञ थे और यह जानते थे कि किस प्रकार उसकी रक्षा की जाती है। वे जानते थे "कोमलता राजपुरुष के लिए कलंक है।" और मातृभूमि की रक्षा 'शब्द-वीरता' से नहीं, शब्द-वेध वीरता से ही हो सकती है।[१०] राजकुमारों को (कुरु-पांडवों को) द्रोण शब्द-वेध में दक्ष करने की क्षमता रखते थे। राजकुमार भी सीकों के धनुष द्वारा कूप-तल से उनको वीटिका निकालते देख कर उन पर मुग्ध हो गए थे। द्रोण की इसी दक्षता पर मुग्ध होकर भीष्म ने उन्हें राजकुमारों को धनुर्वाण की दीक्षा देने के लिए नियोजित किया था। आचार्य द्रोण ने भी जो कुछ विद्या अपने गुरुजनों से प्राप्त की थी, उसे 'सेवा भरे भाव' से कुमारों को दे दिया था।[११]

अपने अपमान का द्रुपद से प्रतिशोध लेने के लिए आचार्य द्रोण पार्थ को ही 'अस्त्र-शस्त्र कौशल में अजेय पराक्रमी बनना चाहते थे[१२] और इसी कारण जब एकलव्य उनके शिष्यत्व की कामना से उनके चरणों में झुका तो उन्होंने उसे अपना शिष्य बनाने से अस्वीकार कर दिया। इसके मूल में वह जीवन-दर्शन भी था, जो यह मानता था :

> "धनुर्वेद नद जो है ! उसके दो तट हैं–
> ब्राह्मण और क्षत्रिय ! इसी सीमा रेखा में
> इसका प्रवाह होगा। . . .वैश्य और शूद्र क्या करेंगे धनुर्वेद ले ?"[१३]

उनका यह निश्चित मत था कि 'इस निषादवंश में तो वंशी पर्याप्त हैं।"[१४] डा० वर्मा यहीं आचार्य द्रोण को प्रवाह से निकालते भी हैं : द्रोण एकलव्य की श्रद्धा देखकर यह अनुभव करते हैं कि "धन्य होगा, इस पृथ्वीतल में वह आचार्य श्रेष्ठ, जिसके तुम शिष्य हो', फिर भी उनकी सीमाएं थीं। वे राज गुरु थे, वे भूमि-पुत्रों के नहीं, भूमिपतियों के शिक्षक थे, जिनका शिक्षा पर पूरा नियंत्रण था। आचार्य कहते हैं : 'शिक्षानीति राज-नीति के पदों है चलती। शारदा की वाणी यहाँ बोलती है स्वर्ण में।" और जब एकलव्य राजकुमारों की श्रेणी में खड़ा होकर शिक्षा-प्राप्त करता, तो राजकुमारों को हीनता प्राप्त होती। द्रोण गुरुकुल के अधिपति तो थे नहीं, राजकुल के वित्तभोगी थे अतः उन्हें विवश होकर निषाद-पुत्र एकलव्य को अस्वीकार करना पड़ा।[१५]

स्वप्न में एकलव्य को कुशल साधक हुआ देखकर उनका आत्म चिंतन और मुखर हो जाता है। वे जानते हैं कि शिक्षा-वेलि बन्धन-रहित होने पर ही बढ़ती है। वे यह भी जानते

---

७. वही, पृ० ३५-३६ ॥ ८. वही, पृ० ३१,
९. वही, पृ० ३१। १०. वही, पृ० १९। ११. वही, पृ० १०१। १२. वही, पृ० १२५।
१३. वही. पृ० १२२। १४. वही, पृ० १२२। १५. वही, पृ० १२६।

हैं कि आचार्य अग्निवेश और भार्गव परशुराम यह सुनकर अत्यन्त दुःखी होंगे कि उन्होंने शिक्षा को मात्र राजवेश में सीमित कर दिया फिर भी क्या यह सत्य नहीं है कि उनकी दरिद्रता और द्रुपद से प्रतिशोध की भावना ही उन्हें राजवंश के समीप खींच लाई थी।[१६]

सत्यद्रष्टा द्रोण का स्वप्न-सत्य होता है। द्रोण को एकलव्य की साधना तथा सिद्धि का पता चलता है। विषण्ण अर्जुन के साथ वे उसके समीप जाते हैं। गणों द्वारा ही पुष्प-वर्षा और अपनी परिक्रमा देखकर वे सच्चे हृदय से एकलव्य को आशीर्वाद देते हैं।[१७] वे एकलव्य की प्रशंसा करते हैं, तभी अर्जुन उन्हें 'आर्यवंश रक्षा और पार्थ अद्वितीयता' का स्मरण कराते हैं। वे एकलव्य से गुरुदक्षिणा माँगते हैं। एकलव्य के तुरंत ही प्रस्तुत हो जाने पर वे चिंतन-शील हो जाते हैं और कहते हैं कि एकलव्य सा शिष्य पाकर गुरु की कृतार्थता ही उसकी गुरु-दक्षिणा है, पार्थ को अद्वितीय बनाने का उनका प्रण मूर्खतापूर्ण था। भावावेश में ही यह प्रण करने के लिए वे अपने को दोषी ठहराते हैं। उनके अन्तर्तम में एक विद्रोही भावना भी उठती है। पार्थ यदि उनकी निंदा भी करे कि उन्होंने पार्थ को अद्वितीय बनाने का प्रण करके भी एकलव्य को मंत्रबल से धनुर्वेद की शिक्षा दी तो यह दंड इन जैसे भावावेशी गुरु के उपयुक्त ही है। फिर भी वे संतोष करते हैं कि उन्होंने स्वल्प वेतन के लिए विद्या बेंची है और कुमारों का गुरु होने के नाते वे शूद्र विरोधी हैं। वस्तुतः एकलव्य नहीं उनकी समय ही शूद्र था जिसका दक्षिणा गुष्ठ शक्तिशाली बनकर निंदा के नाराच छोड़ रहा था।[१८] इस वाक्य को संकेत मान कर एकलव्य उन्हें अपना अंगूठा काट कर दे देता है। द्रोण के हृदय में कराह की विद्युत्तरंग उठती है, वे अपने को शूद्र और एकलव्य को विप्र कहते हैं। विवश गुरु की यह मूर्ति दर्शनीय है।[१९] एकलव्य की गुरुभक्ति भविष्य के भाल पर तिलक बनकर रहेगी। एकलव्य की माँ के आने पर गुरु कुछ देर के ही लिए रुक पाते हैं, आर्यजाति की भर्त्सना सुनकर उनका मुख लज्जावनत हो जाता है और शीघ्र ही वे राजधानी के लिए प्रस्थान कर देते हैं।

अर्जुन के लिए आर्यद्रोण का एकलव्य से गुरु दक्षिणा माँगना उतना ही तर्कहीन है। जितना सुग्रीव के लिए राम का बालि-बध। एकलव्य की गुरुभक्ति का दुरुपयोग कर द्रोण ने गुरु-दक्षिणा माँगी और उनके चरित्र को उभारने के लिए ही उन्हें दरिद्रतावश गुरु-कुल त्याग कर राज-सेवा में आने की बात कही गई है। कदाचित् इसी कारण उन्हें अर्जुन के अहंकार से अपमानित भी होना पड़ा है। जो हो, एकलव्य काव्य में द्रोण की अन्तरात्मा को आधुनिक विचारधारा की उदारता से ओत-प्रोत कर दिया गया है।

एकलव्य महाकाव्य का प्रमुख पात्र है स्वयं एकलव्य। द्रोण उसके चरित्र की तीन प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करते हैं: १. धनुर्वेद का सबसे बड़ा अभ्यासी २. अहंकार शून्य ३. गुरुभक्त।[२०] डॉ० वर्मा ने स्वयं ही उसे वह "तीक्ष्ण तीर" कहा है, जो 'भविष्य वेधता है शक्ति से अतीत की।' और वह 'ऐसा बीज है कि जिसने साधना शिला के बीच अग्नि-रस पाया है।" शूद्र होने के नाते द्रोण ने विद्या-दान का निषेध किया, 'किन्तु कौन था जो उसकी 'साधना को रोकता'[२१]

---

१६. वही, पृ० २२२-२३१। १७. वही, पृ० २८१-८२। १८. वही, पृ० २९१-९३। १९. वही, पृ० २९४-९६। २०. वही, पृ० २९३। २१. पृ० ३-१६।

साधना के पूर्व वह द्रोण का शिष्य होना चाहता है। द्रोण उसके तेज को देखकर चौक उठे :

है तो शूद्र, किन्तु जैसे निष्कलंक द्विज है।
बालक निषाद का है, किन्तु तेजोमय है,
जैसे मणिरत्न है विशाल विषधर का।
अन्य राज पुत्रों से विशेष श्रद्धावान है।[२२]

वह महान् आशावादी है : गुरु शिक्षा नहीं देंगे। वह उनसे कहता है :

हानि क्या ! प्रत्यक्ष कहीं, मेरे मन में तो हैं।
नाम 'धनुर्वेदी' सुना श्री मुख से आपके
और मुझे चाहिए क्या ? साधना तो मेरी है।

(पृ० १२७)

साधना विराग बिना संभव नहीं, अतः एकलव्य घर-परिवार को त्याग कर अरण्यवासी हो जाता है और मिट्टी की गुरु-मूर्ति बनाकर साधना-रत हो जाता है। उसकी साधना में "केवल दिवस ही है, रात नहीं होती है।" उसे रह-रह कर भूमिपति और भूमिपुत्र दो वर्गों के मध्य बढ़ते हुए अन्तर का स्मरण हो रहा था। वह जानने लगा था कि द्रोण ने नहीं, भीष्म की राजनीति ने 'तुम ही अस्वीकृत' वाक्य कहा था। आर्य जानते थे कि शूद्र यदि धनुर्वेद-पारंगत हो गए तो क्षत्रियों को रण में पराजित कर अपनी भूमि उनसे फिर ले लेंगे। (पृ० १४०-१९७) इस मानसिक वातावरण में एकलव्य की साधना शुक्ल-पक्ष की चंद्रिका की भाँति निरंतर बढ़ रही थी और :

कुंभकार चक्र के समान वाण छूटते
धनुर्वेद घट के समान उठा आता है। (पृ० २११)

एक दिन गुरु के मौन को भंग करने की धृष्टता करने वाले पांडवों के श्वान का मुख उस धुरीणधन्वी के वाणों से भर गया। पार्थ का सारा अहंकार यह देखकर गल गया (पृ० २४९-५०)। कुत्ते के संकेत पर एकलव्य के समीप पांडव आते हैं तो देखते हैं :—

मूर्ति है समीप रखी आर्य गुरुद्रोण की,
एकलव्य देखता है, गुरु और लक्ष्य को।
जैसे, ज्ञान और कर्म सन्तुलित हो गए,
भक्ति की पुनीत श्रद्धा-भावना के सामने।

पार्थ के यह कहने पर कि गुरु की मूर्ति ने तुम्हें वह ज्ञान दे दिया, जो स्वयं गुरुदेव हमें न दे पाए, एकलव्य की गुरु भक्ति उठती है। वह कहता है कि गुरु तो निष्पक्ष ज्ञान-दान करता है, शिष्य का ही दोष है, जो उसे प्राप्त करने में असफल होता है। अर्जुन उसकी गुरु-भक्ति से अत्यन्त प्रभावित होते हैं और रात्रि के एकांत में सोचते हैं :—

---

२२. वही, पृ० १२३।

कितना विश्वास होगा एकलव्य वीर में !
जो कि गुरु-मूर्ति को ही गुरु मान बैठे हैं ।
लक्ष्य-वेध-श्रेय वह गुरु को ही देता है,
कितना अहंकार शून्य निस्पृह वीर है !

गति, दूरी, शब्द और लक्ष्य का उचित संतुलन उसको अद्भुत, अद्वितीय धन्वी बनाने में सफल हुआ था । पार्थ को भय था कि इस अद्वितीय धन्वी ने जैसे आज श्वान का मुख भरा है, वैसे ही कल यह तीक्ष्ण बाणों से क्षत्रियों के मुखों को भरेगा और 'शासन करेगा उस सारी आर्य-जाति का ।'

अपनी सच्ची गुरुभक्ति के कारण उसे विश्वास है कि द्रोण सुनने पर उसे देखने अवश्य आएंगे । पांडवों का उसने यथोचित सत्कार किया था, नहीं जानता था कि यह सत्कार ही भविष्य में उसके लिए छलना बन जायगा । गुरु आए, बाणों से पुष्पवर्षा तथा परिक्रमा कराकर उसने गुरु का सत्कार किया । सच्ची गुरुभक्ति का प्रमाण-पत्र भी उसे मिला । गुरु ने उसे 'आज के अजेय धनुर्धारी' कहा, फिर पार्थ ने गुरु को उनकी 'पार्थ को ही अद्वितीय धन्वी बनाने की प्रतिज्ञा का स्मरण कराया । एकलव्य पार्थ को अद्वितीय धन्वी मान लेता है । अर्जुन को इससे संतोष नहीं हुआ । उनके पुनः यह कहने पर 'चाहे गुरुद्रोण ही शिक्षा देते रहें' वे एकलव्य जैसा धन्वी नहीं हो सकते, एकलव्य की गुरुभक्ति जाग उठती है । वह इसके लिए शिष्य को ही दोषी ठहराता है । पार्थ इस पर उसे द्वद्व के लिए ललकारते हैं । एकलव्य तैयार हो जाता है : गुरु के बीच-बचाव पर दोनों रुके । अर्जुन की वाणी ऊंची हो गई । एकलव्य अर्जुन को ही सदा के लिए अद्वितीय धन्वी बनाने की भावना से शर-शरासन को कभी-भी हाथ से न छूने का प्रण करके चाप को फेंक देता है । और बाण को 'सर्प मंत्र रेखा से' तोड़ देता है । फिर भी अर्जुन को संतोष नहीं होता, वहीं द्रोण की दुर्बलता जाग उठती है । वे एकलव्य से गुरुदक्षिणा माँगते हैं, उनके ही एक वाक्य को संकेत मानकर वह अपना दक्षिणांगुष्ठ काटकर रख देता है: वह कहता है :

"गुरु का हृदय खंड खंड हो, असंभव ।
दक्षिणांगुष्ठ ही हो खंड-खंड मेरा जो कि
पार्थ को बना दे अद्वितीय धन्वी विश्व में !
गुरुमूर्ति के समीप हाथ रख दाहिना,
एक ही आघात में अंगुष्ठ काटा मूल से ।" (पृ० २९६)

गुरु के इस अद्भुत त्याग से अपने को लघु तथा एकलव्य को महान् समझ लेना स्वाभाविक ही है । वे कह उठते हैं :

"तुम विप्र हो हे शिष्य ! गुरु द्रोण शूद्र है !
सारा वर्ण भेद धुल गया रक्त-धार से ।
पार्थ ! रक्त देखो इस एकलव्य वीर का,
जो कि राजवंशों से भी धोया नहीं जायगा ।" (पृ० २९६-९७)

एकलव्य और ऊँचा उठता है : वह द्रोण से कहता है :

देव ! इस दक्षिणा का मूल्य इतना ही है
मेरी साधना को आप देख लेंगे पार्थ में ।

फिर भी वह चाहेगा कि निषाद-जाति धनुर्वेद में लगी रहे । गुरुमूर्ति लेकर वह अपने ग्राम जाएगा, जिससे

"मेरे ग्रामवासी भी लगेंगे धनुर्वेद में ।'

और गुरु से याचना करता है कि जब जब आपकी दृष्टि अपने पुनीत पद-पद्मों पर पड़े तो

एकलव्य शिष्य का स्मरण कर प्रेम से,
आशिष का एक शब्द कह जाएँ धीरे से ।

एकलव्य उन्हें वनखंड में दूर तक पहुँचाता भी है । एकलव्य का चरित्र इस प्रकार साधना, गुरुभक्ति और अनहंकार की त्रिवेणी है ।

अर्जुन कुशल एवं प्रख्यात धन्वी के रूप में सामने आते हैं, किन्तु उनमें अहंकार की मात्रा भी कम नहीं है । ईर्ष्या और द्वेष की सम्पत्ति भी उनको मिली थी । द्रोण के किसी कुमार की सिद्धि का स्वप्न देखकर पार्थ से उसकी चर्चा करने पर अर्जुन कहते हैं :

देव प्रतिद्वन्द्विता करेगा शिष्य आपका ,
सहन करेगा नहीं दास किसी धन्वी को ।

आकुल अर्जुन उस स्वप्न-कुमार की खोज में गुरु के साथ निकलता है । कुत्ते का मुख वाणों से भरा देख उसका अहंकार 'क्षणभर में गल गया ', वह एकलव्य का पता लगाते और उसके समीप आकर उसकी साधना, सिद्धि, गुरुभक्ति एवं निरहंकारता से प्रभावित होते हैं । वे समझते हैं कि उनकी ज्ञान-प्राप्ति में अहंकार ही बाधक रहा है । राजवंश का उनपर बड़ा दायित्व था, किन्तु वे एकलव्य की दक्षिण भुजा को काट देना जघन्यता मानते हैं । अतः वे गुरु से ही उपाय पूछने जाते हैं और उन्हें उनकी दो प्रतिज्ञाओं का स्मरण कराते हैं । आर्यवंश रक्षा और पार्थ अद्वितीयता' । द्रोण अर्जुन को गंभीर बनने, अन्य किसी वीर की महान् साधना को देख कर प्रसन्न होने तथा शिक्षा एवं राजनीति को साथ-साथ न रखने का उपदेश देते हैं । किन्तु अर्जुन का अशांत मन अधीर था । एकलव्य ने गुरु पूजा की : पार्थ में आश्चर्य और द्वेष भर गया । गुरु ने एकलव्य की श्रद्धाभक्ति तथा साधना की प्रशंसा की, अर्जुन के रोमांच में द्वेष घुल सा गया । वह द्रोण से पूछ बैठते हैं—

गुरुदेव आपका कथन सत्य है !
फिर जो प्रतिज्ञा की थी श्रीमुख से आपने,
उसका महत्व क्या रहेगा आर्य-वंश में ।

एकलव्य गुरुद्रोण को महान् दृढ़ प्रतिज्ञ बने देने रहने की इच्छा से प्रण करता है कि वह शर-शरासन नहीं छुएगा । पार्थ को उससे भी संतोष नहीं होता । वे कहते हैं कि गुरु की शिक्षा के रहते हुए भी वे एकलव्य जैसी लक्ष्य-वेध-सिद्धि नहीं पा सकते । गुरु का इसमें अपमान देख एकलव्य उनकी भर्त्सना करता है और इस पर उनके द्वारा ललकारे जाने पर वह द्वन्द्व के लिए प्रस्तुत हो जाता है । गुरु दोनों को रोकते हैं । अर्जुन फिर भी नहीं मानते । वे एकलव्य को गुरु-दक्षिणा किसी ठोस ढंग से देने के लिए कह सकते हैं । क्योंकि वे जानते हैं :

अहंकारपूर्ण पार्थ तुमसे महान् हो,
यह धारणा तो पूर्ण मिथ्या है त्रिकाल में ।

गुरु से एक संकेत पाकर एकलव्य अपना दक्षिणागुंष्ठ काट देता है , पार्थ विगतज्वर हो जाते हैं । उनका शिर अवश्य ही झुक जाता है । वे अपनी धृष्टता के लिए उससे क्षमा-याचना करते हैं और कहते हैं —

"क्षमा करो गुरु-भक्ति सीखी आज तुमसे ।
मैंने राजवंश की अहम् भावनाओं से
गुरु को था हीन माना ! तुमने निषाद हो,
गुरु का महत्व सिखलाया इस विश्व को । पृ० २९७

उसकी रक्तधारा देखकर 'पार्थ भूमि में गड़े से लज्जित मलीन थे ।'

• • •

"जिसने अपनी लज्जा खो दी है वह अपने सम्मान की बात किस मुख से कह सकता है ।"
—'राजरानी सीता' से
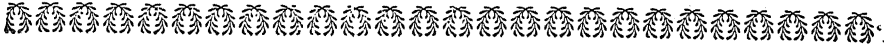
मानव मूल्यों के पारखी कवि

डॉ० रामसिंह तोमर, अध्यक्ष हिन्दी विभाग शान्ति निकेतन

●

हमारे देश में उन ग्रंथों को ही साहित्यिक दृष्टि से महान् माना जाता है जिनमें मानव मूल्यों, मानव चरित्रों की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति हुई है। रामायण, महाभारत और बृहत्कथा की, प्राचीन साहित्यकारों ने, इसीलिए प्रशंसा की है इनमें मनुष्य के चरित्र का बहुत ही व्यापक चित्रण हुआ है। मानव की ऐसी कोई मनःस्थिति नहीं होगी जिसका महाभारत में चित्रण न हो गया हो इसलिए उसके रचयिता ने हाथ उठाकर घोषणा की थी कि जो इसमें है वही अन्यत्र भी है, जो यहाँ नहीं है वह कहीं भी नहीं है। पीछे की शतियों के लगभग सभी उल्लेखनीय कवियों ने इनमें से किसी न किसी कृति से चरित्र नायक चुने हैं। मध्ययुग में योरोप में भी ऐसी ही भावना के दर्शन होते हैं। उनका कहना था कि मानव की भावनाओं का जैसा विशद चित्रण ग्रीक और लातीनी साहित्य में हुआ है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है अतः वहाँ से उन्होंने प्रेरणा ग्रहण की इसीलिए उनको मानवतावादी कहा गया। आधुनिक काल में भी श्रेष्ठ साहित्य के रचयिताओं ने प्राचीन साहित्य से बहुत प्रेरणा ली है।

श्रद्धेय डॉ० रामकुमार जी वर्मा इन्हीं महान् मानवतावादी साहित्यकारों की श्रेणी में आते हैं। साहित्य की विविध विधाओं को उनकी प्रतिभा ने समृद्ध किया है—कविता, नाटक, गद्य; आलोचना साहित्य का इतिहास। उनकी मुख्य उपलब्धियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने का यहाँ अवकाश नहीं है, किन्तु संक्षेप कुछ का संकेत यहाँ कर सकते हैं, जिससे उनके विराट् व्यक्तित्व की झलक मिल सकेगी।

वर्तमान शती की बीसी के अंतिम वर्षों में उन्होंने विश्वविद्यालय में अध्यायन कार्य आरंभ किया। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं में अध्ययन के लिए संकोच के साथ अधिकारीवर्ग अनुमति दे रहा था। ऐसा नहीं है कि आधुनिक भाषाओं के प्रति हमारे देश में ही संकोच बोध रहा हो, पश्चिमी यूरोप में भी स्थिति बहुत उत्साहप्रद नहीं रही। ग्रीक और लैटिन की तुलना में वहाँ भी आधुनिक भाषाओं को सही स्थान प्राप्त करने में बड़ा संघर्ष करना पड़ा। कहते हैं सन् १९११ में आक्सफोर्ड में जब अंग्रजी के प्रवेश मिला तो संस्कृति के खतरे में पड़ जाने की बहुत से लोगों को आशंका हुई थी। भारत में तो राज्य ही विदेशी लोगों का था। उन दिनों जिन लोगों ने हिंदी पढ़ी और हिंदी में कार्य किया वे सच्चे देशभक्त और सच्ची भावनावाले ही थे। प्रयाग विश्वविद्यालय में हिंदी के उच्च अध्ययन की सुव्यवस्था करने वाले श्रद्धेय धीरेन्द्र जी वर्मा के डॉ० रामकुमार जी वर्मा अत्यन्त विश्वसनीय सहयोगी रहे हैं। उच्च कक्षाओं में हिंदी के अध्ययन अध्यापन और शोध की

व्यवस्था करने में जो अग्रगामी कार्य प्रयाग विश्वविद्यालय ने किया है उसमें डॉ० रामकुमार जी वर्मा का बहुत ही गौरवपूर्ण योग रहा है ।

हिंदी साहित्य के अनेक अंगों के संबंध में डॉ० वर्माजी ने हमारी दृष्टि को नया मोड़ दिया है । इस शती की तीसी के और उसके पहले के आलोचकों ने एक सामान्य धारणा की सृष्टि की तथा पुष्ट किया वह थी निर्गुण संत काव्य के संबंध में । ऐसा समझा जा रहा था कि संतों के काव्य में बेमेल सुनी सुनाई बातों का ही अस्त व्यस्त. ढंग से उल्लेख मिलता है, उनकी वाणियों में क्रमबद्ध किसी सिद्धान्त को ढूंढना व्यर्थ है । वर्मा जी का उन विद्वानों में महत्त्वपूर्ण स्थान है जिन्होंने बड़े ही संयतभाव से संतों के साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करके यह बताया कि संतों की चिंतन पद्धति बड़ी ही व्यवस्थित है और प्राचीन भारतीय चिंताधारा की सुसंबद्ध शृंखला की अभिन्न कड़ी है । हमारे साहित्य और संस्कृति की इस अत्यंत मनोरम काव्यधारा पर जो अनेक श्रेष्ट कृतियाँ और सुधी विद्वान दिखते हैं उनके लिए हमें वर्माजी के 'कबीर का रहस्यवाद' को एक उद्गमस्थल मानना चाहिए । यही बात उनके 'आलोचनात्मक इतिहास' के विषय में कह सकते हैं । नवीन सामग्री और शोध का उपयोग तथा कवि की समसामयिक सांस्कृतिक और राजनीतिक स्थिति का उसके काव्य को समझने के लिए महत्त्व आदि नए दृष्टि कोण से उन्होंने साहित्य का इतिहास लिखा । सामग्री और नवीन दृष्टि दोनों ही अंगों का इस ग्रंथ में प्रशंसनीय समन्वय हुआ । आगे हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की जो नवीन योजनाएं बनीं उनके लिए इस कृति ने बहुत कुछ मार्ग प्रशस्त किया । आदिकाल और भक्तिकाल की अनेक उलझी हुई समस्याओं पर उन्होंने जो विचार व्यक्त किए उनको दुहराने लायक सामग्री अभी भी प्रस्तुत नहीं हो पाई है । अन्य विद्वानों के मतों का जहाँ खण्डन किया है वहाँ भी उनका सौजन्य ही प्रधान है । सम्पूर्ण ग्रंथ में शायद ही कोई ऐसा प्रसंग मिले जहाँ उन्होंने अपना मत प्रकट करते हुए कटुता का प्रदर्शन किया हो ।

कविता और नाटकों में हमें उनकी व्यापक दृष्टि और गहन अध्ययन का परिचय मिलता है । प्राचीन आख्यान काव्य, कथा साहित्य और इतिहास का गंभीर अध्ययन और मनन करके और अनेक पात्रों को चुना है जो भारतीय जीवन के उत्तम गुणों और उच्च आदर्शों के प्रतीक बन गए हैं । वर्माजी ने उन्हें अपनी कृतियों में और भी आकर्षक बना दिया है । और यहाँ हमें उनकी मानवतावादी दृष्टि का सबसे अधिक स्पष्ट रूप देखने को मिलता है । एक ओर राम और सीता को उन्होंने लिया है जिनका स्मरण करते ही हमारा हृदय निष्कलुष हो जाता है । दूसरी ओर 'एकलव्य' को लेकर उन्होंने बहुत उच्चकोटि के खण्डकाव्य की रचना की है । 'एकलव्य' भारतीय शिष्य के उच्चतम आदर्शों का प्रतीक है । वर्माजी की इस कृति में हमें अत्यंत प्रौढ़ काव्य के दर्शन होते हैं । महाभारत के नाना प्रसंगों में एकलव्य का प्रसंग बहुत छोटा है किन्तु अनेक मानवीय गुणों की चरम अभिव्यक्ति इस छोटे से प्रसंग में हुई । महाभारत के सभी आयोजनों और महान् कार्यों के बाद एक ही स्वर सुनाई पड़ता है कि 'सर्वेक्षयान्ता निचया' ---एकलव्य की माँ के मुख से भी यही निकल पड़ता है 'अर्थ क्या हुआ हे देव ! ऐसे धनुर्वेद का ! . . . . . महाभारत के प्रत्येक पात्र की अपनी विशेषता है ,अपना अलग व्यक्तित्व है, कोई किसी की प्रतिकृति नहीं है, कोई किसी से नहीं मिलता । वर्माजी का एकलव्य अद्वितीय है, पार्थ के साथ एक तान हो हम कह पड़ते हैं---"क्षमा करो, गुरु-भक्ति सीखी आज तुमसे !'

कहना न होगा डॉ० वर्माजी बहुत बड़े आस्थासंपन्न गुरु भक्त हैं। हमारी संस्कृति के उच्चतम मूल्यों की चित्रण उनके काव्य में मिलता है।

उदयन, बिम्बसार, अशोक, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, पृथ्वीराज, संयोगिता, रामानंद, कबीर, पन्ना इत्यादि चरित्र हमारे अतीत इतिहास के गगन के अत्यंत प्रकाशवान् नक्षत्र हैं। इनको तथा आज अनेक चरित्रों को वर्माजी की कल्पना और सुरुचि ने नयारूप प्रदान किया है जो अत्यंत मनोरम और आकर्षक है। अतीत की ओर ही नहीं वर्तमान-आधुनिक युग की अनेक जीवित समस्याओं को उनके नाटकों में स्थान मिला है। और प्रकारान्तर से उन्होंने समाज सुधारक का कार्य किया है। प्राचीन और आधुनिक का मेल वर्माजी में आश्चर्यजनक ढंग से मिलता है। उनके साहित्य में भी और जीवन में भी। राजशेखर ने कवियों और साहित्य-स्रष्टाओं के लिए आवश्यक शिक्षा का विधान किया है ––वर्माजी ने कवि शिक्षा के प्रत्येक अंग में दक्षता प्राप्त करके साहित्य रचना प्रारंभ की, ऐसा लगता है।

पिछले लगभग चार दशकों से वर्मा जी विख्यात प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्ययन-अध्यापन का महत्वपूर्ण कार्य अत्यंत सक्रिय रूप से करते आ रहे हैं। जिनको उनके चरणों में बैठकर विद्याध्ययन करने का अवसर मिला है या उनके सहयोगी के रूप में कार्य करने का गौरव प्राप्त हुआ है, वे भाग्यशाली हैं। गुरु और सहयोगी के रूप में मैंने उन्हें देखा है और जब जब अतीत के उस प्रसंग का स्मरण करता हूँ तो मन पुलकित हो जाता है। वे अत्यंत प्रभाव शाली वक्ता हैं। उनकी वक्तृता शक्ति और भाषा पर अधिकार को देखकर गर्व होता है-हिंदी की समृद्ध शब्दावली पर। उनको भाषणों की संयत, उपयुक्त शब्दावली, शब्दों का निर्दोष प्रयोग, स्पष्ट और साधु उच्चारण और प्रभावशाली ढंग हमें मुग्ध कर देता था। उच्च कक्षा के साहित्य के अध्यापक के बोलने विचारों को प्रकट करने का कौन स्तर होना चाहिए यह वर्माजी जैसे विद्वान अध्यापक से सीखना चाहिए। अध्यापन और शोध दोनों की व्यवस्था करने और उन्हें अग्रसर करने का बहुत श्रेय वर्माद्वय को है।

उनका कार्य विश्वविद्यालय की दीवारों तक ही सीमित नहीं रहा है। यह सच है कि विश्वविद्यालय में ही उन्होंने अधिक महत्वपूर्ण कार्य किया है और सहस्रों विद्यार्थियों और जिज्ञासुओं को उन्होंने ज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया है। किन्तु विश्वविद्यालय के बाहर भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। कवि सम्मेलनों, सभाओं, अधिवेशनों में लाखों श्रोताओं के हृदयों को उन्होंने अपनी वाणी से प्रभावित किया है। देश के सांस्कृतिक स्तर को उठाया है और कम भाग्यशाली लोगोंको,जो हमारे अपने देशवासी है और जो ज्ञान के मंदिरों में प्रवेश नहीं पा सके––तक ज्ञान पहुँचाया है, उन्हें स्फूर्ति, उत्साह और आनंद प्रदान किया है तथा अपनी अपार ज्ञानराशि का साझीदार बनने का गौरव प्रदान किया है।

हिंदी को जो सम्मान आज मिला है और आगे मिलने वाला है, या आधुनिक भारतीय भाषाओं की तुलना में हिंदी में शोध का स्तर ऊँचा है या अध्यापन स्तर उन्नत है या अनेकानेक महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ कार्य कर रही हैं तो ये सब डॉ० वर्मा जी जैसे मेधावी, यशस्वी विद्वानों के ही परिश्रम का फल है। वे सौ वर्ष जिएं और राष्ट्रभाषा को समृद्ध करें।

• • •

वर्मा जी द्वारा कबीर का व्यक्तित्व-विश्लेषण

डॉ० वासुदेव सिंह, हिन्दी विभाग काशी विद्यापीठ, वाराणसी

●

डॉ० रामकुमार वर्मा की प्रतिभा बहुमुखी है। वाङ्मय के दोनों पक्षों-काव्य और शास्त्र पर उनका समान अधिकार है। उनमें 'अविचारित रमणीय' और 'विचारित सुस्थ' का गंगा-यामुनी संगम है। किसी पाश्चात्य विचारक ने कहा है कि 'कला जीवन की सजगता है और आलोचना कला की सजगता है।' कला और जीवन दोनों के प्रति सजगता वर्मा जी के व्यक्तित्व की विशेषता है। वह कवि और एकांकीकार हैं ही, सजग आलोचक भी हैं। यहाँ हम उनके दूसरे पक्ष-विशेष रूप से कबीर संबंधी उनके कार्य पर विचार कर रहे हैं।

कवि-कर्म कठिन है, किन्तु कवि का सच्चा मूल्यांकन और भी कठिन है। किसी रचना को पढ़कर या सुनकर 'वाह-वाही या निन्दा' कर देना सरल है, किन्तु प्रशंसा या निन्दा क्यों की गई, यह बताना कठिन है। इसी कवि-कर्म को प्रकाश में लाने को राजशेखर ने भावयित्री प्रतिभा अथवा आलोचक की प्रतिभा कहा है। डॉ० वर्मा की भावयित्री प्रतिभा के दर्शन उनके 'कबीर का रहस्यवाद' तथा अन्य समालोचना ग्रंथों में होते हैं। सम्भवत: इस कथन में अत्युक्ति नहीं होगी कि जिस प्रकार सूर, तुलसी अथवा जायसी को साहित्य-जगत में प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है, उसी प्रकार कबीर को कवि रूप में मान्यता दिलाने में वर्मा जी का बहुत बड़ा हाथ है।

कबीर का व्यक्तित्व बड़ा विवादपूर्ण रहा है। संत रूप में कबीर ने भारतीय जन-मानस में अपने समय में ही अडिग आसन जमा लिया था, किन्तु कवि रूप में उनका क्या स्थान है ? इस ओर विद्वानों का ध्यान बहुत बाद में गया। और जब उनके इस पक्ष पर चर्चा हुई तो कुछ लोगों ने कबीर को कवि मानने से ही अस्वीकार कर दिया। कहा गया कि 'कबीर की रचना उपदेश तो देती है, पर भावोन्मेष नहीं लाती। उनके उपदेशों को अत्यंत ऊँचा मानकर भी उसे 'साहित्य' या 'काव्य' कहने में बहुतों को संकोच होता है। वस्तुतः कबीर के संबंध में इस प्रकार की धारणा का बहुत कुछ उत्तरदायित्व शुक्ल जी का कबीर के प्रति उपेक्षा-भाव कहा जा सकता है। उनके रसवादी दृष्टिकोण का जो प्रसार 'त्रिवेणी' में मिलता है, कबीर में उसकी संभावना भी नहीं थी। इसीलिए उन्होंने यह निर्णय दे दिया कि "इस शाखा (ज्ञानाश्रयी शाखा—यह नाम भी शुक्ल जी का दिया हुआ है।) की रचनाएँ साहित्यिक नहीं हैं—फुटकल दोहों या पदों के रूप में हैं, जिनकी भाषा और शैली अधिकतर अव्यवस्थित और ऊटपटाँग है।" कुछ लोगों ने "धार्मिक रचनाकार' कहकर उन्हें साहित्य-क्षेत्र से बाहर रखने की वकालत की।

कबीर संबंधी विवाद के संदर्भ में एक मूलभूत प्रश्न यह उठता है कि क्या साहित्य की सार्थकता या सीमा केवल हाव-भाव वर्णन में, संयोग वियोग की बाह्य एवं अन्तर्दशाओं के निरूपण में, ओजगुण सम्पन्न वीर रसात्मक आख्यानों में, आश्रयदाताओं के विरुद्धगानों में, प्रेम-गीतों में और सामयिक सत्य की अभिव्यञ्जना में ही है । क्या साहित्य की सीमा शरीर ही है ? आत्मा से उसका कोई संबंध नहीं ? अथवा धार्मिक रचना होने से ही क्या कोई कृति साहित्य-परिधि से निकाल दी जानी चाहिए ? यदि साहित्य को केवल भौतिक सुख-दुःखों अथवा इन्द्रियानुभूति की अभिव्यक्ति का साधन मान लिया जायगा तो इसमें न केवल साहित्य का वरन् हमारा भी काफी अकल्याण होगा । साहित्य की सार्थकता जागतिक प्रपंचों से उत्पन्न समस्याओं के भावात्मक निरूपण में ही नहीं है । इन प्रतीत होने वाले द्वन्द्वों से भी एक बड़ी सत्ता है जिसकी अनुभूति इन्द्रियों द्वारा संभव नहीं । वह अतीन्द्रिय है । किन्तु उसकी अनुभूति का सुख इन्द्रिय-सुख से भी बड़ा और स्थायी है । जिस ब्रह्मानन्द का अनुभव योगी योग के बल पर करता है, कवि उसी का रसास्वादन अपनी साधना के बल पर करता है और उसे वाणी का रूप देने की चेष्टा करता है । ऐसे अतीन्द्रिय आत्मानन्द की व्यञ्जना भी साहित्य का लक्ष्य है । वस्तुतः साहित्य का क्षेत्र बहुत विशाल है । उसका मैदान 'बेहद्दी' है । वर्मा जी की यह धारणा है कि 'साहित्य मानव की संवेदनाओं का कलात्मक रूप में अभिव्यक्तिकरण है । उसमें भावनाओं और कल्पनाओं की असीम पृष्ठभूमि है । साहित्य राष्ट्र की तपस्या है । वह जीवन के अनन्त प्रयोगों की सिद्धि है और समस्त संवेदनाओं का सार रूप है ।' इसी व्यापक और उदार दृष्टिकोण के कारण वर्माजी का ध्यान कबीर की ओर गया और उन्होंने आज से बहुत पहले सन् १९३१ में ही 'कबीर का रहस्यवाद' नामक ग्रंथ लिखकर प्रकाशित कराया । यही नहीं, कबीर को कवि मानने में कुछ पंडितों को भले ही संकोच होता हो तथा उनकी वाणी में उन्हें कोरे ज्ञान की गंध भले ही प्रतीत होती हो, किन्तु वर्मा जी को कबीर के 'कवि' होने में कभी संदेह नहीं रहा । उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि 'कबीर ने आत्मा का वर्णन किया है, शरीर का नहीं । वे हृदय की सूक्ष्म भावनाओं की तह तक पहुँच गए हैं । नखशिख अथवा शरीर सौंदर्य के झमेले में नहीं पड़े ।' इसके अतिरिक्त कबीर के संबंध में सदियों से जो यह भ्रम फैला हुआ था कि उनके पद अशिक्षित और अर्धशिक्षित तथाकथित निम्न वर्ग के मध्य गाने की वस्तु भर है, उसका निरसन करते हुए वर्मा जी ने कहा कि 'कबीर की कविता न तो नीरस ज्ञान है और न केवल साधुओं के तानपूरे की चीज ।' वर्मा जी के इस कथन से कबीर का महत्व और उनकी वाणी का स्वरूप निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाना चाहिए। और हमें 'उपदेश' शब्द से भी चौंकना नहीं चाहिए (हाँ, वह उपदेश 'कान्तासम्मित' अवश्य हो) अन्यथा जैसा कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सावधान किया है कि 'केवल नैतिक और धार्मिक या आध्यात्मिक उपदेशों को देखकर यदि हम ग्रंथों को साहित्य सीमा से बाहर निकालने लगेंगे तो हमें आदि काव्य से भी हाथ धोना पड़ेगा, तुलसी रामायण से भी अलग होना पड़ेगा, कबीर की रचनाओं को भी नमस्कार कर देना पड़ेगा और जायसी को भी दूर से दण्डवत् करके विदा कर देना होगा ।'

कवि स्वच्छन्द वृत्ति का प्राणी होता है । वह 'लीक' पर नहीं चलता, 'लीक' का निर्माण करता है । उसकी कृति 'नियतिकृत नियमरहिताम्' होती है । इस दृष्टि से कबीर का स्थान बेजोड़ है । उनका जैसा मनमौजी और स्वतन्त्र वृत्ति वाला दूसरा कवि हिन्दी में नहीं मिलेगा ।

उन्होंने सार बंधनों को तोड़ फेंका था। द्विवेदी जी ने उनकी इस विशेषता का उद्घाटन करते हुए लिखा है कि 'हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वन्द्वी जानता है, तुलसीदास। परन्तु तुलसीदास और कबीर के व्यक्तित्व में बड़ा अन्तर था। यद्यपि दोनों ही भक्त थे, परन्तु दोनों स्वभाव, संस्कार और दृष्टिकोण में एकदम भिन्न थे। मस्ती, फक्कड़पना स्वभाव और सब कुछ को झाड़-फटकार चल देने वाले तेज ने कबीर को हिन्दी साहित्य का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है।' और कबीर के व्यक्तित्व के इस वैशिष्ट्य की ओर वर्मा जी का ध्यान द्विवेदी जी से भी दस वर्ष पूर्व गया था, जब उन्होंने कहा था कि 'ऐसी स्वतन्त्र प्रवृत्तिवाला कलाकार किसी साहित्य क्षेत्र में नहीं पाया गया। वह किन-किन स्थलों में बिहार करता है, कहाँ-कहाँ सोचने के लिए जाता है, किस प्रशान्त वनभूमि के वातावरण में गाता है, किन वस्तुओं पर मुग्ध होकर मस्ताने स्वर से ताल देता है, ये सब स्वतन्त्रता के साधन उसी को ज्ञात थे, किसी अन्य को नहीं।'

कबीर की भाषा को लेकर भी बहुत कुछ कहा सुना गया है। उसे 'सधुक्कड़ी' 'बेमेल खिचड़ी' 'अव्यवस्थित' आदि बताया गया है। इस संबंध में यह स्पष्ट ही है कि कबीर ने स्याही-कलम का स्पर्श नहीं किया था। उन्हें छन्द-ज्ञान भी नहीं था। इसलिए उनके काव्य में भाषागत सौंदर्य या अलंकार छन्द आदि की बारीकियों को खोजना न्यायसंगत न होगा। यही नहीं, उन्होंने कविता के लिए कविता नहीं लिखी थी। काव्य उनके लिए साधन था, साध्य नहीं। रीतिकालीन कवियों के समान शब्द-कौशल और उक्ति-वैचित्र्य या भंगी-भणिति के द्वार सामन्तों का मनोरंजन भी उनका इष्ट नहीं था। उनके लिए कविता भावों के अभिव्यक्तिकरण का माध्यम मात्र थी। और इस दृष्टि से वे पूर्ण सफल रहे हैं। वस्तुतः भाषा की दृष्टि से कबीर सच्चे लोकनायक थे। उन्होंने लोकभाषा में अपनी बात कही है। वे भाषा को बहते नीर के समान सर्वजन सुलभ देखना चाहते थे। उनकी भाषा बेमेल खिचड़ी नहीं है, अपितु समूचे उत्तर भारत के जन मानस का प्रतिनिधित्व करती है। जहाँ तक भाषा की शक्ति का प्रश्न है, उन्होंने अरूप, अलख और अगोचर ब्रह्म को वाणी का विषय बनाया है। उसे अभिधा द्वारा व्यक्त करना संभव नहीं। कबीर ने उसका ध्वनन किया है। यह ध्वनि या व्यञ्जना ही काव्य की सबसे बड़ी शक्ति है। वर्मा जी के शब्दों में 'वे (कबीर) स्पष्ट रूप से अपने भाव कहने में असमर्थ हो जाते हैं, क्योंकि उनका भाव-सौंदर्य इतना अधिक होता है कि वे साधारण शब्दों में उसे व्यक्त नहीं कर सकते। उनका भावोन्माद इतना तेज होता है कि बोल-चाल के साधारण शब्द उनका बोझ नहीं सम्हाल सकते।' इसीलिए उन्होंने 'सैना-बैना' अपनी बात को समझाने का प्रयास किया है, रूपकों का सहारा लिया है और प्रतीकों का प्रयोग किया है। द्विवेदी जी का भी मत है कि 'भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया, बन गया तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नज़र आती है।' और कबीर की वाणी की शक्ति को वर्मा जी ने दूसरे शब्दों में इस प्रकार स्वीकार किया है —"मस्ती से दीवाना होकर वह भिन्न-भिन्न रीतियों से अपने भावों का प्रदर्शन करता है। शब्द यदि उसे मिलते भी हैं तो उसके काँपते हुए आह्लाद से वे बिखर जाते हैं और कवि का शब्द समूह बूढ़े मनुष्य के निर्बल अंगों के समय शिथिल पड़

जाता है। यही कारण है कि भाषा की बागडोर उसके हाथों से निकल जाती है और वह असहाय होकर बिखरे हुए शब्दों में, अनियन्त्रित वाग्धाराओं में टूटे-फूटे पदों में अपने उन्मत्त भावों का प्रकाशन करता है।'

कबीर आत्मा के गायक हैं। उन्होंने आत्मा की तड़पन को, प्रिय-मिलन की उत्कण्ठा को और संयोगजन्य आह्लाद को बड़े सशक्त शब्दों में अभिव्यक्त किया है। वर्माजी ने कबीर के काव्य के इस पक्ष का विशद अध्ययन किया है। रहस्यवाद किसे कहते हैं ? भारतीय रहस्यवाद और सूफियों के रहस्यवाद में क्या अंतर है ? कबीर पर किन साधना सम्प्रदायों का कितना प्रभाव है ? और कहाँ तक कबीर ने अनुभव की बात कही है ? रहस्यवादी के मुख्य लक्षण क्या हैं ? इन प्रश्नों पर वर्माजी ने गहराई से विचार किया है। इस संदर्भ में उन्होंने पाश्चात्य रहस्यदर्शियों और सूफी-साधकों से कबीर की तुलना करके उन्हें व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है। वर्माजी के मत से 'रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें यह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बंध जोड़ना चाहती है और यह सम्बंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता।' वह आध्यात्मिक-तत्व को रहस्यवाद का प्रमुख अंग मानते हैं। लगभग अधिकांश पाश्चात्य और भारतीय विचारकों ने रहस्यवाद के सम्बन्ध में इससे मिलती जुलती बात कही है। वस्तुतः अध्यात्म की चरम सीमा ही रहस्यवाद की जननी है। यह एक ऐसी अनुभूति है जो साधक के अन्तस में जाग्रत होकर अखिल विश्व को उसके लिए ब्रह्ममय कर देती है अथवा उसे स्वयं ब्रह्म ही बना देती है। बुद्धि का ज्ञेय हृदय का प्रेम बन जाता है। समस्त प्राणियों में उसे परमात्मा का आभास होने लगता है अथवा समस्त प्राणी ही उसके लिए परमात्मा बन जाते हैं। श्री आर०दी० रानाडे के शब्दों में 'वह मन की एक ऐसी प्रवृति है जो परमात्मा से प्रत्यक्ष, तात्कालिक, प्रथम स्थानीय और अन्तर्ज्ञानीय सम्बंध स्थापित करती है।'[1]

कबीर ने अपना नाता इसी परम-तत्व से जोड़ लिया था। उसके साथ वे नित झूला झूलने जाते थे। इसीलिए उन्हें समाज के बंधनों की और शास्त्र प्रतिपादित विधि-विधानों की परवाह नहीं थी, इसीलिए उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मों के बाह्याचार पर निर्ममतापूर्वक प्रहार किया है, इसीलिए वे बहुतों के कोपभाजन बने और इसीलिए उनके साथ न्याय नहीं हो सका। वर्मा जी ने सहानुभूतिपूर्वक उनके काव्य का अध्ययन करके उनके महत्व का प्रतिपादन किया। यह वर्मा जी की हिन्दी को बहुत बड़ी देन है।

●●●

---

1. Mysticism denotes that attitude of mind which involves a direct, immediate, first hand, intutive apprehension of God. Mysticeism in **Maharashtra**, Page 1.

डॉ० रामकुमार वर्मा का नाट्य वैशिष्ट्य

डॉ० गोपीनाथ तिवारी, रीडर हिंदी-विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

●

हिन्दी काव्य साहित्य सबल और समृद्ध है, वह भी विशेषतया मध्ययुग का। आधुनिक युग में कथा साहित्य एवं आलोचना साहित्य ने लम्बी डगें भरी हैं और सुदृढ़ स्थान पर डेरा डाला है। हिन्दी रंगमंच के अभाव में हिन्दी का नाटक साहित्य उतना प्रौढ़ और समृद्ध नहीं बन पाया है। इसके साथ ही इतना तथ्य सम्मुख है कि एकांकी साहित्य का निर्माण वेग एव प्रचुरता से हुआ है। इसके तीन प्रमुख कारण हैं---(१) आकाश वाणी के लिये ध्वनि रूपकों एवं एकांकियों का उत्पादन बहुलता से हुआ है और हो रहा है। ध्वनि रूपक एवं रंगमंचीय एकांकी में शिल्पविधि का अन्तर अवश्य है पर सैकड़ों एकांकी आकाशवाणी द्वारा सफलता से प्रसारित हुये हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकियों ने आकाशवाणी के प्रांगण में सफलता पाई है। डॉ० वर्मा ने ध्वनि रूपक की शैली भी अपना कर लघुनाटकों या एकांकियों की रचना की है किन्तु उनके अधिकांश एकांकी आकाशवाणी द्वारा गृहीत हुये हैं। (२) रंगमंच की सामयिक माँग ने भी एकांकियों के निर्माण में हाथ बँटाया है। आज रात भर बैठ कर ९ बजे से २-३ बजे तक नाट्य प्रदर्शन रुचिकर नहीं रहा है। समारोहों के सांस्कृतिक प्रदर्शनों में एकांकियों की पूछ जोरों से होती है, विशेषतया शिक्षा संस्थाओं एवं साहित्यिक सम्मेलनों में। डॉ० वर्मा के अनेक एकांकी इस माँग के फल रूप जन्में हैं। (३) पत्र पत्रिकाओं के लिये भी एकांकी लिखे जाते हैं किन्तु इनकी संख्या कहानियों की अपेक्षा अत्यन्त विरल है। इसका प्रमाण है कि कहानियों की अनेक पत्रिकाएं प्रकाशित है किन्तु केवल एकांकी को लेकर, एक भी हिन्दी पत्रिका पूर्ण रूप से नहीं दौड़ रही है।

एकांकी में सीमित कथावस्तु के प्रांगण में कुछ पात्र, गत्यात्मक संवादों द्वारा नाटककार के भाव-विचारों को, किसी देशकाल की सीमा में, कलात्मक शैली से प्रकट करते हैं। कभी-कभी नाटककार कविता या गीत द्वारा नाट्य सौन्दर्य को बढ़ाने का प्रयास करता है। इस प्रकार वस्तु, पात्र, संवाद, देशकाल, भाषा-शैली एवं उद्देश्य तत्त्व एकांकी में नाटक के समान प्राप्त होते हैं किन्तु इन तत्त्वों के प्रयोग में एकांकीकारों ने अपनी विशिष्ट शिल्प-विधि अपनाई है। यह तो सर्व विदित तथ्य है कि एकांकी में न तो वस्तु विस्तार के लिये स्थान है और न है पात्रों के जीवन विकास के लिये। संवादों का अनावश्यक विस्तार एकांकी के क्षेत्र में दोष माना जाता है। भाषा शैली एवं उद्देश्य के क्षेत्र में एकांकीकार का अपना दृष्टिकोण मार्गदर्शक बनता है। फलतः एकांकीकार को अपना विशिष्ट मार्ग बनाना पड़ता है और इसी में उसकी सफलता निहित है। डा० वर्मा ने इस ओर पूरा ध्यान दिया है और अपना विशिष्ट मार्ग निर्मित किया है।

कहानीकार को बड़ी सुविधा यह है कि वह अपनी सीमा में किसी ओर स्वतंत्रता से बढ़ सकता है। कौतूहल का पल्ला पकड़कर वह चाहे जिधर कदम बढ़ाना चले, इसकी उसे पूरी छूट है। खड़ा होकर वह शब्दचित्र खींच सकता है, थोड़ी देर बैठ कर वह वर्णन छबि का प्रदर्शन कर सकता है, और छलाँग भर कर वह पृथ्वी और पेड़ के छोर जोड़ सकता है। उसे ध्यान रखना पड़ता है तो इस बात का कि कौतूहल पुष्पक विमान लुढ़क कर विनष्ट न हो जाय क्योंकि उपान्यास एवं कहानी का प्रधान अंग कौतूहल वर्द्धक कथा है। रात्रि में सामने बैठे ग्रामीण श्रोताओं अथवा बालकों को कथा सुनाने वाली कथाकार की कहानी में कौतूहल को किसी न किसी रूप में थामे रहता है। उपन्यास या कहानी में एक या अधिक पात्रों को कुछ या बहुत समय तक गुप्त रख कर कौतूहल उपजाया जाता है। घटना को मोड़ देकर अथवा एक घटना में से दूसरी घटना उत्पन्न करके भी कथाकार कौतूहल बढ़ाता है। एफ़ंकीकार को तो पात्रों को तुरन्त रंगमंच पर लाना पड़ता है। अतः वह बहुत दूर तक पात्रों को गुप्त नहीं रख सकता है। हाँ, प्रसंग में संवादों द्वारा किसी पात्र को कुछ समय तक अलक्षित रख कर नाटककार कौतूहल जगा सकता है। कभी कभी पात्र प्रवेश द्वारा कथा को मोड़ देता है। उसके पास कहानीकार के समान उन्मुक्त मार्ग नहीं है। एकांकीकार प्रायः मार्मिक भावों, प्रबुद्ध-विचारों, मनोवैज्ञानिक रहस्यों एवं सरस संवादों के देने में अपनी कला दिखाता है। वस्तु विधान की कठिनाई तो एकांकीकार के सामने सबसे बड़ी बाधा है। उसके चारों ओर सीमाएं और निषेध खड़े हैं जिनके द्वारा किसी घटना को नाटकीय रूप देने में वह बड़ी कठिनाई का अनुभव करता है। सोचता है, विचारता है, लिखता है, संवारता है और तब वह किसी कथा को नाटकीय वस्तु के रूप में सजा पाता है। फलतः कौतूहल को कैसे वह पकड़ रह सकता है? यही कारण है कि कम ही एकाँकीकार हैं जो कौतूहल मिश्रित एकाँकी लिख पाते हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा का एक बड़ा नाट्य वैशिष्ट्य यह है कि उन्होंने अपने अधिकांश एकांकियों में कौतूहल मिश्रित वस्तु को सजाया है। यह कौतूहल घटना को घुमाकर या सहानुभूति वाले पात्र में सहसा कोई विशिष्ट परिवर्तन लाकर, उत्पन्न किया गया है।

पात्र अलक्षित हो परिवर्तित रूप में आता है :—(१) एक्ट्रेस नामक एकांकी में अभिनेत्री प्रभा यश के ऊच्चासन पर बैठी है किन्तु सुखी नहीं है। उसके जीवन के विषय में जानने के लिये सम्पादक अनंग कुमार अपनी पत्नी कमल कुमारी के साथ आते हैं। अभिनेत्री प्रभा स्पष्ट शब्दों में परिचय देने से इनकार कर देती है। संपादक जी उसके निर्देशक से जीवन परिचय जानने के लिए जाते हैं। कमलकुमारी को वह सहसा भावावेश में अपना परिचय दे देती है कि वह संपादक की प्रथम पत्नी अर्थात् कमलकुमारी की सौत है। कमलकुमारी उसे साथ ले जाने की हठ करती है। अभिनेत्री कहती है—अच्छा मैं चलूँगी, अभी खाना खाकर आती हुँ। संपादक जी लौट कर जाते हैं। नौकरानी आकर बाताती है कि मालकिन खाना खाने नहीं गईं। सूचना प्राप्त होती है कि अभिनेत्री जी ने जो सम्पादक की प्रथम पत्नी थी मंदार नामक प्रपात में अपने को विसर्जित कर दिया है। प्राप्त इस सूचना के साथ चरम सीमा पर एकांकी की समाप्ति हो जाती है। कौतूहल बराबर बना रहता है, कि यह अभिनेत्री कौन है। जब यह ज्ञात होता है कि यह कौन है तो अभिनेत्री समाप्त हो चुकी होती है।

(२) 'चारुमित्रा' एकांकी में चारुमित्रा महाराज अशोक की स्वामी भक्त सेविका है। वह कलिंगवासिनी है अतः महाराज अशोक उस पर संदेह प्रकट करते हैं। जब महाराज सैन्य-शिविर में प्रवेश करते हैं तो वे चारुमित्रा को नृत्य करते पाते हैं। क्रुद्ध होकर वे प्राणदंड की आज्ञा देते हैं। महारानी बताती है कि चारुमित्रा ने नृत्य उनकी आज्ञा से किया था। यह सुनकर महाराज क्षमा कर देते हैं किन्तु तब भी उस पर संदेह प्रकट करते हैं। चारुमित्रा चली जाती है। अशोक भी शिविर निरीक्षण को जाते हैं। चारुमित्रा की चर्चा महारानी एवं सेविका में होती है। महारानी को ज्ञात होता है कि वह बहुत उदास है। उपगुप्त युद्ध की विभीषिका से महरानी के हृदय को द्रवीभूत करते हैं। सेविका उपगुप्त से निवेदन करती है कि वे चारुमित्रा को जो वाह्य शिवरि में है शांति देकर जावें। अशोक आकर महारानी को बताते हैं कि युद्ध में बड़ी हत्या हुई है। अशोक का हृदय पसीजा है। तभी सेवक राजुक आकर बताता है कि चारुमित्रा घायल हुई है। उपगुप्त, घायल चारुमित्रा को लाते हैं जो मरणासन्न है। उपगुप्त अशोक के विरुद्ध आयोजित षड्यंत्र का भेद खोलते हुये, उपगुप्त बताते हैं कि कुछ कलिंग सैनिक, अशोक की हत्या करने के लिये छिप कर शिविर में आगये थे। चारुमित्रा ने उन्हें पहिचाना और ललकारा। षड्यंत्रकारियों ने बहुत दाँव पेंच खेले, अनेक प्रकार के डोरे चारुमित्रा पर डाले, लोभ लालच की पिटारी खोली पर चारुमित्रा टस से मस न हुई वरन् तलवार लेकर वह बाघिन की नाईं टूट पड़ी और वह षड्यंत्रकारियों को मारने में सफल हुई परन्तु स्वयं भी बुरी तरह आहत हुई। अशोक की जय बोलकर चारुमित्रा प्राण छोड़ देती है। इसी चरम सीमा पर एकांकी समाप्त होता है। चारुमित्रा को केन्द्र बनाकर कौतूहल वृद्धि की गई है।

घटना वक्रता द्वारा कौतूहल वृद्धि के उदाहरणों की कमी नहीं है। "छोटी सी बात" नामक एकांकी में राकेश पुस्तक पढ़ने की धुन में नौकर को डाट कर भगा देता है जिसे उसकी पत्नी ने चाय पर बुलाने के लिये प्रेषित किया था। पत्नी उमा आकर झुंझलाती है। राकेश प्रसंगवश मित्र मदन की पत्नी का नाम लेकर कहता है कि जब मैं मदन और उसकी पत्नी के साथ चाय पी रहा था मदन की पत्नी ने कहा था। राकेश की पत्नी उमा सुन कर सौतिया डाह से जल उठती है और बहुत कुछ कह डालती है। वह गृहत्याग की धमकी भी देती है। वह कुछ सुनने को प्रस्तुत नहीं है। बात बढ़ती जाती है। राकेश एक पत्र देता है। पत्र पढ़ते ही उमा पानी पानी हो जाती है, क्षमा माँगती है क्योंकि उसमें मदन की पत्नी राकेश को राखी बंद भाई स्वीकार करती है। इसी चरम सीमा पर एकांकी की इतिश्री होती है। 'कवि पतंग' नामक एकांकी में पान का बीड़ा जिस कागज़ में बंधकर आता है वह चरमसीमा लाता है। कवि पतंग की खोई कविता पांडुलिपि का वह एक पृष्ठ था। उधार न देने के कारण कवि पतंग की अनुपस्थिति में पानवाला पुस्तकें उठाकर ले गया था, नौकर यह बताता है। 'ध्रुवतारिका' में भी कौतूहलवर्द्धक घटनाएं मोड़ लेती हैं। सफ़ीयत हिन्दुत्व एवं हिन्दू ग्रंथों के प्रति प्रेम प्रदर्शित करती है। सेविका से हृदय की बात छिपाती है। पाठक जानना चाहता है कि क्या वास्तव में वह अजीत सिंह से प्रेम करती है। उसे बताना ही पड़ता है कि वह अजीत सिंह के प्यार में जल रही है। वह अजीत की प्रतीक्षा करती है। अजीत सिंह आता है। काव्यमय वातावरण विकसित होता है। जब वे माला बदलते हैं तो बीच में राठौर वीर दुर्गादास आकर रोक देता है। अजीत सिंह प्रेम पर अडिग है। पाठक जानना

चाहता है अब क्या होगा ? चाचा राठौर वीर दुर्गादास आतंकित करता है, समझाता है पर अजीत नहीं मानता है। दुर्गादास कहता है—उसे बहिन मान। अजीत सिंह इनकार कर देता है। तभी सफ़ीयत आकर कहती है—मैं युवराज को भाई बनाती हूँ, अब प्रेयसी न रहूँगी। इस प्रकार कौतूहल की वृद्धि की गई है।

'पृथ्वी का स्वर्ग' नामक एकांकी में केशव और अचल पृथ्वी में स्वर्ग कहाँ है, इसकी विवेचना करते हैं कि अचल के चाचा लाला दुनीचंद बोझा ढोने वाले मज़दूर को डपटते और वर्त्तमान को दोष देते पधारते हैं। जो संदूक उठवाकर लाये हैं उसके प्रति उत्सुकता जगती है सभी की। ला० दुनीचंद बताते हैं, इसमें पुराने कपड़े भरे हैं। बोझे वाला जब बताता है कि बड़ा भार था तो लालाजी बड़े बिगड़ते हैं और फिर जोर देकर कहते हैं कि इसमें पुराने कपड़े हैं। उत्सुकता जगती है कि यदि पुराने कपड़े हैं तो फिर भारी क्यों हैं ? लालाजी अचल को वहाँ से भगाना चाहते हैं और कहते हैं—जा आराम कर, तस्वीर बनाने से थक गया होगा। अचल कहता है—मैंने किया ही क्या है ? अचल पूछता है—क्या यह संदूक यहीं रहेगा ? दुलीचन्द सत्यनारायण की कथा के साधु बनिये के समान कहते हैं—अरे इसमें है ही क्या ? फटे पुराने कपड़े हैं। एकाध दुशाला है। दर्जी से तेरे लिये ठीक करवा दूंगा, कुछ गरीबों को दान कर दूंगा। पुराने कपड़े ही तो हैं अचल के जाने पर सेठ जी दुशाला हटाकर संदूक में रखे गोटों के बंडल गिनते हैं। अचल के पैरों की आहट सुनकर लालाजी संदूक बंद कर देते हैं। अचल से बार बार उसके आने पर कहते हैं—सब पुराने कपड़े हैं। सेठ जी हाथ मुंह धोने जाते हैं। एक भिखारिन बच्चे को लेकर रोती आती है। अचल संदूक में से हरा दुशाला निकल कर भिखारिन को दे देते हैं। सेठ जी जाकर और दुशाले को सन्दूक से गायब पाकर सिर पीट लेते हैं। वे रोते चिल्लाते हैं—हाय मेरा दुशाला। हाय मैं लुट गया। पर यह नहीं बताते कि वे क्यों कलप रहे हैं। नौकर से कहते हैं—जा भिखारिन को खोज। सब परेशान हैं। कौतूहल बढ़ता जाता है। सहसा भिखारिन आकर दुशाला वापिस दे देती है और पाँच हजार की गड्डियाँ दे देती है। सेठ जी आठ आना पुरस्कारस्वरूप देते हैं। वह नहीं लेती है। पृथ्वी का स्वर्ग यही है, अचल कहता है नाटक समाप्त हो जाता है।

उपन्यास या कहानी का प्राण है उसकी कथावक्रता; कविता का जीवन है उसकी चमत्कारिक सरस उक्तियाँ और नाटक या एकांकी की आत्मा है उसके मार्मिक संवाद। डॉ० रामकुमार वर्मा के संवाद अत्यन्त मार्मिक हैं, यह उनकी दूसरी नाटच विशेषता है। यह मार्मिकता चार रूपों में प्राप्त होती है—काव्यात्मक, अलंकारिक, व्यंग्यात्मक एवं वास्तविक संवादों के रूपों में।

काव्यात्मक संवाद—डॉ० वर्मा को कवि हृदय मिला है जो स्थान स्थान पर काव्यात्मक कथनों के रूप में प्रवाहित हुआ है। भावपरक एवं अलंकृत वाक्यों द्वारा काव्यात्मक कथनों का गठन किया गया है। कवियों के कथनों में तो काव्यात्मक रंग मिलता ही था। ये पात्र एकांकियों में लाये ही इसलिये गये हैं कि काव्य की पिचकारियाँ यत्र तत्र छोड़ दें।

कवि पतंग—अहा ! जीवन ही तो एक पतंग है। मुक्त आकाश में उड़ती है। कभी इस ओर—कभी उस ओर...दिशाओं की गहराई में डूबी रहती हैं। खींचता हूँ तो पास आती

है ढील देता हूँ तो दूर जाती है। थिरकती हुई...मचलती हुई...कल्पना की डोर से दूर.. बहुत दूर... (कवि पतंग)

प्रेमी भी तो कवि बन जाता है। फलतः एकांकियों में प्रेमी पात्र कविता की निर्झरणी प्रवाहित करते पाये जाते हैं। भाव भरे शब्दों एवं अलंकृत वाक्यों द्वारा ये अपनी काव्यात्मक उक्तियाँ प्रकट करते हैं। नाटककार प्रसाद की नाईं प्रेम और सौन्दर्य के प्रसंगों में वर्मा जी के पात्र कविता की मधुर वीणा बजा उठते हैं—

अजीत—लेकिन सफ़ीयत ! सत्य और सौन्दर्य की कोई जाति नहीं होती। प्रेम और अनुराग किसी के वंश की संपत्ति नहीं है। मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ कि तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम छोटे-बड़े उन नक्षत्रों की भाँति है जो एक दूसरे के स्वाभाविक आकर्षण में घूमते रहते हैं और कभी थकते नहीं। राजकुमारी ! हम और तुम उस अमर ग्रंथि में बंधते जो क्षितिज रेखा की भाँति चारों ओर घूमकर सदैव के लिए आकाश और पृथ्वी को जोड़ देती है (ध्रुव-तारिका)।

पृथ्वीराज—उषा को कोई आज्ञा नहीं दे सकता महारानी ! वह सौभाग्य लक्ष्मी की तरह उदित होती है, बादलों के समूह चारों ओर से एकत्र होकर उस पर अरुणिमा की पुष्प वर्षा करते हैं। एक-एक क्षण उसके मार्ग पर प्रकाश की स्वर्ण धूल बिखराता है। तुम्हारा कार्य तो बस इतना ही है...इतना ही है, संयोगिता ! कि तुम अपने अधरों में एक तरल मुस-कान भरकर संसार की ओर कल्याण कामना से देख लो। तुम्हारी उस मुस्कान में दिल्ली और अजमेर का राज्य क्षितिज की सीमा तक फैल जाएगा और पश्चिम के बादल भी उस अरु-णिमा की छाया में... (भाग्य नक्षत्र)

अशोक—उस दिन अल्फ्रेड पार्क के लान पर तुम बैठी थीं। मैं पास ही तुम्हारी केश-राशि के खुले हुए छोर में कोमल कलियों को कैद कर रहा था। सुन्दरता को सुन्दरता से बांध रहा था। लेडी आव् दि नाइट की सुगंधि जैसे तुम्हारे सामने अपने को हवा में खो देना चाहती थी। यूक्लिप्टिस के पेड़ के पीछे से चाँद ने हमें देखा था और उषा उस समय ...(१८ जुलाई की शाम)

मानव प्रेम के मूल में मानवी सौन्दर्य निहित है। सौन्दर्य प्रेमी के मुख द्वारा भाव भरी उक्तियों को प्रकट कराता है—

अजीत—मेवाड़ की लक्ष्मी, जिसके मस्तक पर जौहर का पुनीत व्रत मंगल तारे की ज्योति लेकर चमक रहा है; जिसके नेत्रों में गंगा की पवित्रता है, जिसकी वाणी में सर-स्वती की कल्याणकारिणी वीणा है, जिसकी मुस्कान युद्ध में विजय प्राप्त करने की प्रेरणा है (ध्रुवतारिका)

मानवी सौन्दर्य के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण में भी नाटककार ने इसी शैली को अपनाया हैं। ऐसे स्थलों पर पात्र प्रकृति में अपने भावों की छाया देखता है और उसका काव्यात्मक वर्णन करता है—

अजीत—और इन लहरों को देखो, ये लहरें जैसे हमारे तुम्हारे मिलन की स्मृतियाँ हैं जो एक दूसरे में अपना आत्मसमर्पण किये हुए हैं और भावावेश में टेढ़ी तिरछी होकर अनंत मिलन की पृष्ठभूमि पर बहती चली जा रही हैं (ध्रुवतारिका)

काशी---सह्याद्रि की चोटी पर चन्द्र कला की शोभा किन आँखों का सपना है ? गंगा, यह चन्द्रकला मेरे जीवन की ऐसी सहचरी हैं, जो मुझ से आँख मिचौनी खेलना जानती हैं (शिवा जी)

महादेव---उसी खून को लेकर प्रभात की पूर्व दिशा मुस्किरा उठेगी और उसी लालिमा से सारे संसार में आलोक छा जायेगा। संसार के कण कण में वही रक्त जीवन का अनंत संदेश एक बार ही प्रातःकाल की मधुर समीर में बिखरा देगा (दस मिनट)

अलंकारिक संवाद---काव्यात्मक संवादों में अलंकरण सज्जा है। नाटककार अन्यत्र भी बीच बीच में अलंकरण रखता हुआ सर्वत्र कदम बढ़ाता है। वह संवाद लिख रहा है, धीरे से अलंकारों को सजो देता है---

शेखर---शरीर तो जैसे भीगा कपड़ा है जो आत्मा से लिपट गया है और अवसर मिलते ही आत्मा उस शरीर को फेंक कर अपने सच्चे तेज में आ जाती है या यों समझ लो कि एक शैतान बालक की तरह आत्मा शरीर के दरवाजे को खोलकर बाहर निकल भागती है (उत्सर्ग)

चैनसुखदास---आपको यह दिखलाना होगा कि आपके अभिनय में प्राचीन सभ्यता दीपावली की भाँति जगमगा रही है। आप की मुस्कान में देश का मनुष्य हँस रहा है और आपके आँसू में देश की नारी रो रही है (नमस्कार की बात)

किशोरी---इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि आपके अभिनय में जीवन जैसे झरने की तरह फूट पड़ता है। आपकी वाणी में प्राणों की गहराई छिपी हुई है। वीणा झनकार सी अनंत स्वर लहरी कितने माधुर्य से गूंजती है। आपकी भाव भंगी में जैसे मूक विचार तड़प रहे हैं। (एक्ट्रेस)

डॉ० वर्मा के एकांकियों में व्यंग्यात्मक वाक्यों ने संवादों को प्रभाव एवं तरलता प्रदान की है। एकांकियों में सर्वत्र इसके उदाहरण प्राप्त हैं। व्यंजना का प्रहारक व्यापार ऐसे वाक्यों एवं कथनों को मार्मिक बना देता है।

अचल---लेकिन इस दुनिया के आदमी दौड़ते भी हैं और बोझा भी ढोते हैं। घोड़े और गधे के बीच में आज का आदमी खड़ा है (पृथ्वी का स्वर्ग)

व्यंग्यात्मक संवादों का दूसरा रूप कथन की वक्रताओं एवं नोक झोंकों में प्राप्त होता है जिनकी कमी एकांकियों में नहीं है। पृथ्वी का स्वर्ग, रंगीन स्वप्न, फैल्ट हैट, रूप की बीमारी, कवि पतंग, नमस्कार की बात, एक तोला अफ़ीम की कीमत, आँखों का आकाश, फ़ीमेल पार्ट, छोटी सी बात, कहाँ से कहाँ, आशीर्वाद, इलेक्शन, सही रास्ता जैसे अनेकों एकांकियों में यह संवाद शक्ति देखी जा सकती है।

डॉ० वर्मा के एकांकियों में वास्तविक संवादों की भरमार है। वास्तविक संवादों से यह अभिप्राय नहीं है कि जीवन में जैसे संवाद होते हैं वैसे ही उसी रूप में रखे गये हैं। यदि कोई ऐसा करता है तो वह कला को दूर खदेड़ता है, न ऐसा संभव है। घनिष्ठ मित्रों या पति-पत्नी के एकांतिक संवाद हूबहू उसी रूप में न रखे जाते हैं और न रखे जा सकते हैं। नाटककार वास्तविकता की प्रतीति कराता है और इसी में उसकी सफलता निहित है। डॉ० वर्मा ने ऐसे संवादों में व्यंग्य, व्यंजना, वक्रोक्ति, अलंकरण, भावावेश, भाषामिश्रण का सन्निवेश कर उन्हें मार्मिक बनाया है।

भवानी---बस, फिर वही किताब। किताब! केसरी से कह क्यों नहीं देती कि तू घर बैठ। नौकरी मैं कर लूंगी। बड़ी पढ़नेवाली। बहुत बहुएँ देखी हैं, काम से जी चुराने वाली ऐसी बहू कहीं नहीं देखी।

पद्मा---माँ जी! अभी तो दूध आग पर रखकर आई हूँ।

भवानी---(हाथ नचाकर) जिससे वह उबल कर गिर जाय। दूध से यह भी कह दिया कि जब तक मैं न आऊँ तब तक उबलना मत? वाह रे काम का ढंग। जब काम करना नहीं आता तब काम करने का स्वाँग क्यों भरती हो अस्पताल की मेमों की तरह कपड़े पहन कर कहीं घर का काम होता है? कपड़े बचाती फिरती हैं महारानी जी, कि कहीं मैले न हो जायँ, कहीं दाग-धब्बा न लग जाय। अरे काम में दाग धब्बे लगना तो गिरहस्थी की शोभा है, शोभा! और दो पैसे का साबुन तो दुनिया से उठ नहीं गया है। लेकिन लगाये कौन? हाथ की मेहंदी न फीकी पड़ जायेगी। (कहाँ से कहाँ)

रूपचन्द्र---(धीरे स्वर में) नाइन्टी नाइन प्वाइण्ट सिक्स।

सोमेश्वर---(दुहराकर अशांति से) नाइन्टी नाइन प्वाइन्ट सिक्स! इन कम्बख्त डाक्टरों की जेबों में रुपये भरा करूँ और मेरे रूप की तबियत ठिकाने पर न आये। इन डाक्टरों के लिये कोई सजा भी तो कानून ने नहीं बनाई। रोगी की जिन्दगी के साथ रुपये का सौदा करते हैं। ये डाक्टर नहीं, बीमारी के वकील हैं। रुपये खाकर बीमार को भी खा डालने का हुनर सीखे हुए। रोजगारी कहीं के! (रूप की बीमारी)

डॉ० वर्मा के एकांकियों के दो वर्ग हैं---ऐतिहासिक और सामाजिक। ऐतिहासिक एकांकियों में काव्यात्मक संवादों की चाँदनी छितराई गई है तो सामाजिक एकांकियों में वास्तविक संवादों की धूप फैली है। रामकुमार वर्मा के एकांकियों का तीसरा नाटच वैशिष्टच उनकी रंगमंचानुकूलता है। डॉ० वर्मा स्वयं अभिनेता रहे हैं। रंगमंच की सीमाओं का उन्हें निकट से अनुभव है। अतः उनके एकांकी रंगमंच को ध्यान में रखकर रचे गये है। तभी तो अनेक एकांकी सफलता पूर्वक अभिनीत हो चुके हैं जिसका प्रमाण भूमिकाएँ एवं रंगमंच निर्देश हैं। एकांकी, लघु रूपक है। उसमें देश और काल की सीमा निर्द्धारित है। डॉ० वर्मा ने इसीलिय तीन अन्वितियों---स्थान, काल और कार्य्य---का ध्यान रखा है। अभिनय सुगमता के लिय एक पर्दा एकांकी ही उन्होंने निर्मित किये हैं जिनमें रंगमंच की एकाकी सज्जा से काम चल जाता है। ये एक दृश्य अथवा एक अंक वाले वास्तविक एकांकी है।

● ● ●

हिंदी एकांकियों के जनक

डॉ० रामकुमार वर्मा

डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

•

आधुनिक युग के विशिष्ट प्रतिनिधि साहित्यकारों में डॉ० रामकुमार वर्मा का प्रमुख स्थान है। यह बात इसी से सिद्ध है कि भारत सरकार ने कुछ दिनों पूर्व डॉ० वर्मा को 'पद्म-भूषण' की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया है। डॉ० रामकुमार वर्मा के व्यक्तित्व में प्राध्यापक, कवि, एकांकीकार, आलोचक, निबंधकार, साहित्यिक इतिहासकार तथा कुशल वक्ता के रूप इंद्रधनुष के विविध रंगों की भाँति गुम्फित हैं। सम्प्रति, मैं उन के एकांकियों के विषय में कुछ कहने का प्रयास करूँगा।

मुझे २ मार्च, सन् १९५० ई० की वह कक्षा स्मरण आ रही है जबकि डॉ० रामकुमार जी ने 'चारुमित्रा' एकांकी संग्रह के संदर्भ में कहा था कि नाटक और एकांकी में उसी प्रकार का अंतर है जैसा कि लता और पुष्प में होता है'। कदाचित् डॉ० वर्मा उस एकांकी रूपी विकासोन्मुख पुष्प के रूप और सुगंधि के आकर्षण से अपने को बचा न सके और इस प्रक्रिया में वे एकांकीकार बन गये।

डॉ० रामकुमार वर्मा के प्रति जिन समालोचकों का दृष्टिकोण न्यायोचित रहा है, उन्होंने उन्हें एकांकी-कला का जनक कहकर समादृत किया है। इसके विपरीत, कुछ आलोचकों ने भारतेंदु की चन्द्रावली नाटिका अथवा प्रसाद के 'एक घूंट' अथवा किसी इतर व्यक्ति को उनकी किसी रचना के आधार पर यह सुयश और महत्त्व प्रदान करना चाहा है। अंग्रेजी साहित्य में एकांकियों का जन्म पट-उन्नायकों (Curtain raisers) से माना जाता है तथा इस प्रसंग में डब्ल्यू० उब्ल्यू० जेकब्स के Monkey's Paw (अर्थात् बन्दर का पंजा) का विशेष उल्लेख किया जाता है। मेरी दृष्टि में डॉ० रामकुमार वर्मा के 'बादल की मृत्यु' का जेकब्स के Monkey's Paw की भाँति ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः हिन्दी एकांकी साहित्य का पट-उन्नयन 'बादल की मृत्यु' से ही होता है।

डॉ० रामकुमार जी ने प्रचुर परिमाण में एकांकियों की रचना की है। इसी कारण उनके एकांकी साहित्य में विषयगत विविधता मिलती है। डॉ० वर्मा ने अपने एकांकियों के कथा-सूत्र भारतीय धर्म, पुराण, इतिहास, समाज और परिवार से ग्रहण किये हैं। इसका कारण प्रकट है। डॉ० वर्मा भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक हैं। अतीत और वर्तमान से अपने साहित्य-निर्माण के लिए कच्ची सामग्री लेकर उन्होंने युगानुभूति को वाणी प्रदान की है। इस

संबंध में उन्होंने एक स्थान पर स्वयं कहा है कि "भारतीय संस्कृति उसके लिए सब कुछ है। नए युग की अनुभूतियों को वह अपनी राष्ट्रीयता में उसी भाँति लाना चाहता है जैसे वृक्ष की जड़ भूमि से रस लेकर उसे अपने पत्तों की हरीतिमा में परिणत करती है।"

अद्यावधि डॉ० रामकुमार वर्मा के अनेक एकांकी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें पृथ्वीराज की आँखें, रेशमी टाई, चारुमित्रा, विभूति, सप्तकिरण, चार ऐतिहासिक एकांकी, रजत रश्मि, ऋतुराज, दीपदान, रिमझिम, इन्द्रधनुष, मयूर पंख आदि हैं। कुछ एकांकी स्वतंत्र रूप से भी प्रकाशित हुए हैं जैसे कौमुदी महोत्सव, ध्रुवतारिका आदि। इनके अलावा भी अनेक एकांकी उनकी लेखनी से अवतरित हो चुके हैं। डा० वर्मा के अनेक एकांकियों के अनुवाद प्रायः समस्त प्रमुख भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेज़ी में हो चुके हैं। इससे सहज ही उनकी एकांकी लेखक के रूप में लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है।

श्री रामनाथ 'सुमन' ने डॉ० वर्मा के 'अंधकार' एकांकी को संसार का श्रेष्ठ एकांकी स्वीकार किया है। 'अंधकार' का मेरुदंड सृष्टि की नियमबद्धता में आस्था और विश्वास है। इसमें दिखाया गया है कि प्रकृति की नियम व्यवस्था में आस्तिकता अत्यंत आवश्यक है। स्वयं प्रजापति में यह सामर्थ्य नहीं कि वह इस व्यवस्था से संघर्ष कर सके। डॉ० वर्मा की मान्यता है कि यदि हम अपनी कल्पना से विश्वगुरु ब्रह्मा के सत्य को मिला दें, तो जीवन में कुछ भी गोप्य नहीं रह जाता। जीवन में कौतूहल प्रत्येक क्षण के रूप में व्यक्त होता है। यह एक दार्शनिक सत्य है।

डॉ० रामकुमार वर्मा के प्रारंभिक एकांकियों पर पश्चिमी एकांकीकारों का प्रभाव कला के क्षेत्र में परिलक्षित होता है। इब्सन, गाल्सवर्दी, बर्नार्ड शा, मेटरलिंक आदि की एकांकी कला से संभवतः उन्होंने पूरा पूरा लाभ उठाया है। कहना न होगा कि डॉ० वर्मा ने पाश्चात्य एकांकी कला को आत्मसात् कर तथा उसे भारतीय नाट्य शास्त्र से समन्वित कर निजी ढंग से अभिव्यक्त किया है। हिन्दी के साहित्यकारों में कदाचित् डॉ० वर्मा जयशंकर प्रसाद से सर्वाधिक प्रभावित रहे हैं। मैं कह नहीं सकता कि मेरा अनुमान कहाँ तक ठीक है किंतु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रसाद के प्रभाव ने आपको प्रसाद से साहित्यिक क्षेत्र में होड़ लेने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया हो, तो आश्चर्य नहीं। मैं अपनी इस धारणा को स्पष्ट करना चाहूँगा। प्रसाद की भाँति ही डॉ० वर्मा ने भारतीय विचार-वैभव प्राचीन और आधुनिक इतिवृत्तों से आकलित किया है। प्रसाद के नाटकों में घटनाओं की समष्टि और चारित्रिक व्यंजना मिलती है। डॉ० वर्मा ने अपने एकांकियों में घटनाओं की समष्टि को गौण स्थान देते हुये चारित्रिक व्यंजना के स्थान पर अभिनयात्मक विश्लेषण का विनियोजन कर उसे मनोविज्ञान सम्मत बनाया है। प्रतीक स्वरूप प्रसाद के स्कंदगुप्त और डॉ० वर्मा के अशोक को उपस्थित किया जा सकता है। अशोक के ऐश्वर्य-वैभव और ओजस्वी व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि में उसकी मनोवैज्ञानिक प्रगति की प्रत्येक सीढ़ी पूर्णरूप से घटना का आधार प्राप्त कर अग्रसर हुई है। इस प्रकार एक राज प्रासाद का तपोवन में परिणत हो जाना अशोक के चरित्र में क्रमशः उद्बुद्ध होने वाले विचारों का ऐतिहासिक आलेख है।

किसी एकांकी की सफलता का निष्कर्ष उसमें प्रयुक्त कौतूहल कहा जा सकता है। कौतूहल एकांकी का प्राण-तत्व है। इसका उपयोग भावक की उत्सुकता को प्रबुद्ध रखता है।

प्रयत्न यह होना चाहिए कि दर्शक की उत्कंठा आदि से अंत: तक बनी रहे ठीक उसी प्रकार जैसे कि रूढ़ियों से जकड़ा हुआ मंडप में बैठा वर वस्त्रालंकारों में सिमटी-सिमटाई गुड़िया-सी वधू की एक झलक पाने के लिए आतुर होता है। डॉ० वर्मा के एकांकियों में कौतूहल का सुन्दर और सफल प्रयोग हुआ है। समुद्रगुप्त पराक्रमांक का प्रवेशक वाक्य––"तो अब निश्चय है कि भांडागार में वे रत्न नहीं हैं" जिज्ञासा वर्द्धक है। समस्या है हीरक-खंडों की चोरी का पता लगाना। सम्राट् समुद्रगुप्त अपनी युक्तियों से ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देता है कि धवलकीर्ति बाध्य होकर अपनी चोरी को स्वीकार कर लेता है तथा आत्म-हत्या कर स्वयं दंडित होता है। एकांकी के विभिन्न पात्रों के अंतर्द्वन्द्व के स्पष्टीकरण की प्रक्रिया में एकांकीकार कुतूहल, विस्मय, उलझन, संशय आदि का समायोजन करता है। ये सभी तत्त्व सरिता के अंक में प्रवहमान क्षण-भंगुर जल बुद्बुदों के सदृश कथावस्तु के जल में ही अपने जीवन का पर्यवसान करते हुए उसकी गतिशीलता का सहज आभास देते हैं।

विषय की विविधता के अनुकूल ही डॉ० रामकुमार जी के पात्रों में भी विविधता है। एकांकी में प्रधान पात्रों की स्थिति प्राय: वैसी ही होती है जैसी नाटकों में। गौण पात्रों के, एकांकी कला के समालोचकों ने कार्यानुसार ४ भेद किये हैं। डा० वर्मा के एकांकियों में चारों प्रकार के सहायक पात्र उपलब्ध होते हैं। १. उत्तेजक पात्र यथा राज्यश्री में 'क्षिप्रा'; २. माध्यम––जैसे कलाकार का सत्य में 'एकांत'; ३. सूचक-यथा––समुद्रगुप्त पराक्रमांक की 'राजनर्त्तकी रत्नप्रभा'; और ४. प्रभाव व्यंजक––जैसे पृथ्वी का स्वर्ग में केशव, मंगल तथा बोझा ढोने वाला।

चरित्रांकन, कथोपकथन, संकलन-त्रय के अलावा एकांकी का अभिनेय होना आवश्यक है। एकांकी अभिनीत हो सके, इसके लिए रंगमंच व्यवस्था, पात्रों की वेशभूषा, रंग संकेत अथवा प्रतिन्यास, पार्श्व संगीत, प्रकाश व्यवस्था आदि पर भी एकांकीकार का ध्यान होना अनिवार्य-सा है। डॉ० वर्मा का संबंध नाटकों तथा एकांकियों से ३०-४० वर्षों से रहा है। इसीलिए उनके लिखे प्राय: सभी एकांकी (और नाटक भी) सफलता के साथ मंच पर प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। एकांकी के क्षेत्र में डॉ० रामकुमार वर्मा वास्तव में अद्वितीय हैं। उनकी कला से प्रभावित होकर एक विद्वान् ने उन्हें 'भारत का अभिनव भास' कहा है। डॉ० बल्देवप्रसाद ने उनको 'भारत का सर्वश्रेष्ठ एकांकीकार' माना है। उनका मत है कि डॉ० वर्मा में 'शेक्सपियर' की उदात्त दृष्टि है और 'शा' की व्यंग्य दृष्टि'।

मैं जानता हूँ कि मैं अपने इस छोटे से परिचयात्मक आलेख में डाक्टर साहब के एकांकीकार व्यक्तित्व के प्रति न्याय नहीं कर सका हूँ। चाहते हुए भी मैं उनके संबंध में अनेक बातों पर प्रकाश नहीं डाल सका हूँ। इसके लिए मैं उनसे क्षमा प्रार्थी हूँ।

● ● ●

डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकियों की भाषा : एक विहंगम दृष्टि

डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, लखनऊ

●

संयोग से हिन्दी के एकांकी-सम्राट् पद्मभूषण डॉ० रामकुमार वर्मा संस्कार से एक जागरूक कवि हैं और उनकी कवि-सुलभ सहज भावुकता उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अनेक धरातलों पर संचरण करती रही है। यह एक विशिष्ट ऐतिहासिक संयोग मात्र है कि उनके एकांकी विधा की नवीनता एवं मौलिकता तथा इस क्षेत्र में उनकी सक्रियता के कारण उनकी प्रख्याति लोकप्रियता की प्रमुख आधार बन गई। तथ्य तो यह है कि उनके एकांकीकार के भीतर भी उनका कवित्व प्राणतत्त्व बन कर समाया हुआ है और इसका सर्वाधिक प्रत्यक्ष प्रमाण है उनके एकांकियों की भाषा जो एकांकी-नाट्य-कला के अनेक आवश्यक उपकरणों को समेटते हुये भी अपने सजाव-श्रृंगार के आकर्षण एवं सम्मोहन के लिये कवित्व से ही प्रेरणा ग्रहण करती है।

'एकांकी' के स्वरूप का स्पष्टीकरण डॉ० वर्मा ने जिस भाषा-शैली में प्रस्तुत किया है वह भी उनके कवि-रूप से अभिभूत है। 'ऋतुराज' शीर्षक एकांकी-संग्रह की भूमिका में आज के एकांकी का परिचय देते हुए भावविभोर कवि समीक्षक की भाषा की बानगी देखिए:—

"सत्य के तार पर वह अँगुली की एक चोट है जिससे जीवन का संगीत गूंजता है और तार की पतली रेखा से निकल कर समस्त दिशाओं को मुखरित कर देता है। कुशलता यही है कि जीवन की एक ऐसी घटना चुनी जाय जो फोड़े की तरह कसकती हो या जो 'लाजभरे सौंदर्य' के विहँसते हुये कपोल-कूप की गहराई लिये हो। 'मानस' में 'तेजवन्त लघु गनिय न रानी' के उदाहरण में जो कुछ महाकवि तुलसीदास ने कहा है, वही मैं एकांकी नाटक के संबंध में कह सकता हूँ।

"मन्त्र परम लघु जासु बस, बिधि हरि हर सुर सर्व।

काम-कुसुम-धनु-सायक लीन्हें। सकल भुवन अपने बस कीन्हें।

एकांकी को 'काम का कुसुम-धनु' ही कहना चाहिये जिसके उचित प्रयोग से समस्त विश्व की समस्याएँ वश में की जा सकती हैं। एकांकी की कथावस्तु एक तीव्र अनुभूति है। यह कबीर द्वारा इंगित 'घूंघट का पट" है जिसके खोलने पर 'राम' मिल जाते हैं।

एकांकी के स्वरूप का परिचय देते हुये उसके प्रति अपनी प्रगाढ़ ममता और आत्मीयता

व्यक्त करते हुये डॉ० वर्मा ने यहाँ पर अपनी सहज स्वाभाविक भाषा का भी परिचय दे दिया है जिसमें कवि-सुलभ भावुकता के साथ साथ एक रागाविष्ट विह्वल चित्र का उद्रेक भी विद्यमान है। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं कि उनके सभी एकांकियों के पात्र इसी प्रकार की भाषा बोलते हैं। यह सोचना उनकी एकांकी-कला की परिपक्वता के प्रति अन्याय होगा। भाव और प्रसंग के वैशिष्ट्य के अनुरूप उनके एकांकियों में अन्य पक्षों की भाँति भाषा-पक्ष भी वैचित्र्य एवं वैविध्य के वैभव से समृद्ध है। परन्तु उनमें जो एकांकी गहराई से हमारे मर्म को स्पर्श करते हैं और जिनमें जीवन की अपेक्षाकृत उदात्त और रोमांचक मनोभूमियों का चित्रण हुआ है उनमें प्रयुक्त भाषा के प्रवाह; आकर्षण एवं संप्रेषण की केन्द्रीय प्राणशक्ति अवश्य ही एकांकी-कार के भीतर झाँकते हुये कवि की प्रतिभा के संस्पर्श से अनुरंजित है।

एकांकी के भाषा-शिल्प का निर्वाह मूलतः संभाषणों के औचित्यपूर्ण विधान पर निर्भर है अतः डॉ० वर्मा के एकांकियों की भाषा पर विचार करते समय इन संभाषणों के संबंध में उनकी व्यक्तिगत धारणा की ओर भी संकेत कर देना उचित होगा। इस विषय में उनका कथन है :—

'और संभाषण? वे एकांकी की संवेदना और गति निर्धारित करते हैं। उनके द्वारा एकांकी पात्रों के स्वभाव और आवेगों का स्पष्टीकरण होता है। पात्र और उनसे संबद्ध घट-नाओं की अभिव्यक्ति परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त ढंग से होनी चाहिये। कथोपकथन उतने ही हों जितने पात्रों की क्रिया और प्रतिक्रिया द्वारा अपेक्षित हों। जैसे हमारी साँस का आना और जाना नियमित है। मन के भावों के अनुसार साँस की गति में परिवर्तन होता है। निराश होने पर हम ठंढी साँस लेते हैं और क्रोध आने पर हम गरम साँसें लेते या छोड़ते हैं। उसी प्रकार हृदय के भावों के अनुसार कथोपकथन का अनुपात भी होना चाहिये। केवल मनोरंजन के लिए या नाटककार द्वारा सिद्धांत प्रतिपादन के लिये कथोपकथन का विस्तार करना पात्रों के कण्ठों से उनकी स्वाभाविक ध्वनि खींच लेना है। फिर तो नाटक में पात्र नहीं बोलते, नाटककार पात्रों के कंठ में कोयल या कौआ बन कर बोलने लगता है।"

स्पष्ट है कि एकांकी की संवेदना और गति निर्धारित करने वाले तथा एकांकी के पात्रों के स्वभाव और आवेगों का स्पष्टीकरण करने वाले संभाषणों की भाषा एकांकीकार की वैय-क्तिक अभिरुचि से अनुरंजित न होकर संवेदनीय भावों एवं क्रियाशील पात्रों से परिचालित होती है और इसी में उसकी सहज शक्तिमत्ता स्वाभाविक रूप में व्यक्त हो पाती है। यही एकांकियों की भाषा का आदर्श स्वरूप है जिसके संबंध में एकांकीकार डॉ० वर्मा की कला जागरूक रही है।

एकांकियों की भाषा के क्षेत्र में डॉ० वर्मा की कलात्मक प्रौढ़ता का मूल्यांकन मुख्यतः तीन रूपों में किया जा सकता है —

(१) पात्रों के संवादों एवं संभाषणों की भाषा।
(२) पात्रों के स्वगत कथनों की भाषा।
(३) रंगमंच-संबंधी निर्देशों एवं संकेतों की भाषा।

इन तीनों रूपों के सम्यक् विश्लेषण के लिये एकांकियों के वर्ण्यविषय, पृष्ठभूमि और उद्देश्य के अनुरूप एकांकीकार के विशिष्ट दृष्टिकोण की समुचित धारणा अपेक्षित है। समग्र-रूप

में डॉ० वर्मा के एकांकियों की भाषा की परख करने के लिये उनके समस्त एकांकियों को तीन वर्गों में रख कर देखा जा सकता है —(१) सामाजिक (२) मनोवैज्ञानिक (३) ऐतिहासिक।

सामाजिक एकांकियों के अन्तर्गत उनके वे सभी एकांकी आ जाते हैं जिनमें समाज के किसी वर्ग-विशेष की परिस्थिति-विशेष अथवा समस्या-विशेष की वस्तुपरक, हास्यपरक अथवा व्यंग-परक झलक प्रस्तुत की गई है जैसे पृथ्वी का स्वर्ग, रंगीन स्वप्न, फेल्ट हैट, रूप की बीमारी, कवि पतंग, नमस्कार की बात; एक तोला अफीम की कीमत, आँखों का आकाश, फीमेल पार्ट, छींक, छोटी-सी बात, कहाँ से कहाँ, आशीर्वाद, इलेक्शन, सही रास्ता, प्रेम की आँखें और नहीं का रहस्य आदि। मनोवैज्ञानिक एकांकियों के अन्तर्गत बादल की मृत्यु, प्रतिशोध, उत्सर्ग और ऐक्ट्रेस जैसे एकांकी रखे जा सकते हैं। ऐतिहासिक एकांकियों में पृथ्वीराज की आँखें, उदयन, वासवदत्ता, राज्यश्री, समुद्रगुप्त पराक्रमांक, कादम्ब या विष ? स्वर्णश्री, वाजिद अली शाह और औरंगज़ेब की आखिरी रात आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें बिखरे हुये प्रयोगों के आधार पर डॉ० वर्मा के एकांकियों की भाषा की निजी प्रकृति पहचानी जा सकती है।

सामाजिक एकांकियों के शीर्षक ही इस तथ्य की ओर सीधा संकेत करते हैं कि इनकी भाषा मूलतः समाज के दैनिक जीवन के यथार्थ से प्रेरणा लेती है, एकांकीकार के किसी कल्पित आदर्श से नहीं। इनमें शब्दावली की साहित्यिक एकरूपता एवं स्तर-निर्वाह का ध्यान उतना नहीं है जितना लोकगत व्यावहारिक बोलचाल की स्वाभाविकता का। विभिन्न वर्गों के, विभिन्न परिवारों के, विभिन्न व्यवसायों के, विभिन्न अभिरुचियों के पात्र इनमें प्रसंगानुकूल अपनी अपनी भाषा का स्वच्छन्द प्रयोग करते हैं और प्रयोगों की इस स्वच्छन्दता में एकांकीकार की यथार्थोन्मुखी प्रबुद्ध कलात्मकता अपने पूर्ण वैविध्य के साथ प्रगट हुई है। पात्रों के कथोपकथनों में उनके स्वभाव और उनकी सांस्कृतिक चेतना की उन्मुक्त व्यंजना हुई है। इस प्रकार इन एकांकियों के कथोपकथनों की भाषा चरित्रचित्रण तथा देश काल का भी मर्मस्पर्शी एवं जीवन्त रूप प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकी है।

कहीं कहीं हास्य और विनोद की सृष्टि के लिये अहिन्दी भाषियों के विशिष्ट हिन्दी उच्चारणों का स्वाभाविक पुट दिया गया है। इसी प्रकार देहात से आये हुये निरक्षर नौकरों की ग्रामीण बोलचाल के प्रयोगों का यथास्थान व्यवहार करके भी विनोद का वातावरण प्रस्तुत किया गया है। समाज के किन्हीं विशिष्ट वर्गों की मानसिक वृत्तियों पर व्यंग के छींटे कसने में भी विशेष वर्गों में प्रचलित निजी भाषा के प्रयोग ने पर्याप्त सहायता पहुँचाई है। नगरों के साक्षर वर्ग की बोलचाल में जाने अनजाने अवसर अनवसर, अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग के शौक पर भी बड़े चुटीले व्यंग किये गये हैं। ऐसे स्थलों में प्रयुक्त भाषा की कलात्मक प्रौढ़ता विशेष रूप से इस बात में है उनमें यथासंभव आरोपित और अस्वाभाविक प्रयोगों को बचाया गया है। फलतः भाषा में लिपटे हुये ये व्यंग्य तीखे न होकर शिष्ट विनोद की सृष्टि करते हैं।

'रूप की बीमारी' शीर्षक एकांकी में सेठपुत्र रूपचन्द्र, डॉ० कपूर और डॉ० दास गुप्त के कथोपकथन अंग्रेजी-गर्भित तथा बंगाली-हिन्दी के रोचक नमूने प्रस्तुत करते हैं। उदाहरणार्थः—

"रूपचन्द—नहीं डॉक्टर साहब ! आप लोग यहीं डिसाइड कीजिए कि आप मेरा ट्रीटमेंट कैसा करेंगे।

कपूर—आप इतने इज्यूकेटेड होकर इस तरह की नासमझी की बातें करते हैं। आई एम रीयल वैरी सॉरी।

× × ×

कपूर— . . . मैं आपसे पूरी सिमपैथी रखता हूँ। लेकिन जब आप बीमार नहीं हैं तब आपके फ़ादर से फ़ीस लेना मेरा कानशस अलाऊ नहीं करता।

× × ×

दास गुप्त—ये की बात भाई ? ऐसा तो हाम शुना नेई।

× × ×

दास गुप्त—शांगीत शुनने शे की होता !

इसी प्रकार 'छींक' शीर्षक एकांकी में ग्वाला देवीदीन के कथन की भाषा में ग्रामीण बोलचाल का रूप देखिये :—

देवीदीन—. . . सम्पत भइया कहे रहें कि होत भिनसार गैया और बछवा लेके हमार घर के समनवें दुहि जायो। कौनौ ससुर हमार गैया कानीहौद में कइ दीन है। अब गइया तो आइ नहीं सकत। आज्ञा होइ तो भैंस लाइ के दुहि देई। मुदा आप का सगर दूध लेइ के पड़ी ?

'एक तोले अफीम की कीमत' में रामदीन की शब्दावली और भी रोचक और चुटीली है :—

'राम कहो, सरकार ! हम तो उहि का तब जाना जब तेजी का जलम होइ का बखत आवा। सरकार ! भरे घर माँ कौन केका देखत है ? मा बाप सब्बै तौ रहैं। जब लौं तेजी कै माँ से मुलाखात का बखत आवै, तब लै र में अंधियार होइ जात रहा। औ सरकार ! आपन मेहरिया का मुँह देखें सै क्या ? देखा तो ठीक; न देखा तौ ठीक। जब ऊ का अपनाय लिहिन सरकार। भली बुरी सब्बै ठीक है। हें, हें'। उक्त कथन में ग्रामीण बोल-चाल के साथ साथ पात्र की स्वभावगत और परिस्थितिगत विशेषता की भी यथार्थ झलक दृष्टिगोचर होती है। 'सही रास्ता' में सेठ गिरधारीमल के कथनों में मारवाड़ी सेठों की बोलचाल का लहज़ा देखा जा सकता है—

'वकील साहब ! सच्ची बात तो जे है कि शराब उन्हें लै गई। मैंने कित्ती बार उनसे कहा कै लाला जी ! जो लोग शराब पीते हैं, शराब उन लोगों को पीती है। मैंने कहा कै शराब आपकौ पियै लेती है। उन्होंने सुना नईं और आज जे हाल देख लो ! गोबिन्द हरि ! गोविन्द हरि !'

'कवि पतंग' ('कैरीकेचर) में अति भावुक कवि पतंग और उनके सम्पादक मित्र 'अनंग' की रुचि-वैचित्र्य-द्योतक निम्नलिखित शब्दावली में झांकने वाला हास्य, विनोद और व्यंग्य भी ध्यान देने योग्य है—

पतंग— . . . . गोकुल की गलियाँ सूनी हो गईं, यमुना का तीर शून्य हो गया, कदम्ब की छाया सूनी हो गई, बंशी का हृदय सूना हो गया पर मधुपुरी से नहीं आये ! . . . पर आप ? आप तो मेरे यहाँ आ गये !

अनंग—आप में गोपियों से अधिक आकर्षक है, कवि जी। इसीलिये आ गया ! मैं

कवि तो नहीं हूँ पर कह सकता हूँ कि आपकी ये आँखें दो खुली हुई पाकेट डिक्शनरियाँ हैं ! नाक जैसे लेडीज़ फाउन्टेनपेन हैं। ये बाल जैसे मुक्त वृत्त की लम्बी लहराती हुई पंक्तियाँ हैं। यह लम्बा कुरता जैसे मेरे मासिक पत्र का अग्रलेख है ? और यह धोती जैसे एक खंडकार है।"

डॉ० वर्मा के सामाजिक एकांकियों में स्वगत कथन बहुत कम हैं। जहाँ कहीं हैं भी वहाँ वे प्रायः पात्रविशेष के अन्तर्द्वन्द्व के व्यंजक प्रलाप-रूप में मिलते हैं और ये स्वागत-कथन संख्या में बहुत कम होने पर भी कहीं कहीं बहुत लम्बे हो गये हैं। 'सही रास्ता' में शराब के नशे में लड़खड़ाते सत्य प्रकाश का स्वगत कथन जिसमें समाज के विशिष्ट वर्गों पर व्यंग के छींटे कसे गये हैं, उल्लेखनीय है—

....सेठ गिरधारी मल को कौन समझाये कि उनकी मिलें तेल के बजाय ग़रीब मज़दूरों का खून पीती है ? ... सही रास्ता... मै एँ जानता हूँ, मै एँ सत्यप्रकाश। मैं हेरी शरआव की मस्ती नेह मुहुजे खखऊब समझा दिया है। अहौर प्रभा आ भी समझती हैए।... (गाते हुये)..... दुहूर चला..चल... तू कहीं... दुहूर... चला चल। 'एक तोले अफीम की कीमत' में आत्महत्या का व्यर्थ प्रयत्न करते हुये मुरारीमोहन का स्वगत कथन भी इसी प्रकार का है —

... 'बहुत रिवोल्ट किया, लेकिन कुछ नहीं।.....मेरी अमृत की गोली अफ़ीम ! ए स्कारलेट फेयरी आफ़ ड्रीम्स ! ....होमर ने तेरी तारीफ़ की है। ट्राय की सुंदरी हेलेन ने मेनीलास की शराब में तुझे ही तो मिलाया था। अब तू मेरे खून में मिल जा ! बस दुनिया तुझे मेरा आखिरी सलाम !! आगे से प्रेम की कीमत समझ ! चलूँ...?

इन सामयिक एकांकियों के रंगमंच विषयक निर्देशों और संकेतों की भाषा भी प्रसंगानुसार विविधता लिय हुए है और उसमें अभीष्ट देश काल, वातावरण, पात्रों के परिवेश तथा घटना-व्यापारों के नाटकीय प्रवाह एवं प्रभाव को चित्रित एवं अंकित कर देने की सबल क्षमता विद्यमान है। कहीं इन निर्देशों की भाषा विवरणात्मक है, कहीं चित्रात्मक है और कहीं भावात्मक है। उदाहरणार्थ कवि पतंग के परिचय की शब्दावली देखिए :—

'कल्पना-कानन-केसरी कवि ! दुबला पतला शरीर जिसमें सुकुमारता ने नीड़ बना रक्खा है। लंबे केश जो कल्पना की भांति लहराकर कंधों पर विश्राम कर रहे हैं। पतला कंपित कंठ जिसकी वाणी में तारों की झनकार और भीड़ भरी हुई है। लम्बी उँगलियाँ जो बोलते समय आकाश में थिरकने लगती हैं जैसे वे सितार के पर्दों पर चढ़ उतर रही हैं।....

डॉ० वर्मा के मनोवैज्ञानिक एकांकी संख्या में कम ही हैं। इनमें 'बादल की मृत्यु' जो वर्माजी के प्रथम एकांकी के रूप में अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है; सच्चे अर्थों में प्रतीकात्मक एवं मनोवैज्ञानिक एकांकी का रूप प्रस्तुत करता है। इस शैली के एकांकियों की ओर आगे चलकर एकांकीकार की प्रवृत्ति विशेष सक्रिय नहीं रही। इस एकांकी की भाषा भावात्मक है और उसमें गद्यकाव्य का सा आनंद मिलता है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

'महारानी संध्या ! रुको, कुछ देर सरिता में अपना मुख देखो। लहरों की लचकती हुई रूपराशि में यौवन के समान बरस पड़ो। पृथ्वी के अंग में सुनहले अंगराग के समान लगी रहो। परमात्मा की सत्ता के समान कुछ देर क्षितिज रेखा में सुनहले फूल गूँथो।'

सामान्यतः डॉ० वर्मा के सामाजिक एकांकी विशेष रूप से लोकप्रिय हुये हैं। और उनकी भाषा अपनी सुबोधता के कारण सहज रोचकता और चुटीलेपन से सामाजिकों को आकृष्ट एवं मुग्ध करने में बहुत सफल हुई है पर भाषा की सांस्कृतिक उदात्तता और मर्मस्पर्शी प्रभाव-सृजन की दृष्टि से डॉ० वर्मा के ऐतिहासिक एकांकी सर्वाधिक समर्थ और उत्कृष्ट कहे जा सकते हैं यद्यपि उनकी संख्या सामाजिक एकांकियों की अपेक्षा कम है। हल्के फुल्के मनोरंजन और स्फुट हास्य-व्यंग की सामग्री भले ही सामाजिक एकांकियों की भांति इनमें नहीं प्राप्त होती पर भारतीय इतिहास के विशिष्ट कालखंडों तथा विशिष्ट पात्रों के अंकन एवं चित्रण में उन्होंने जिस सप्राण और शक्तिशाली शब्दावली का व्यवहार किया है वह एकांकीकार के प्रौढ़ इतिहास-ज्ञान की पृष्ठभूमि तथा व्यापक भाषाधिकार की परिचायक है। पात्रों के कथोपकथन, स्वगत-कथन तथा रंगमंच विषयक निर्देश एवं संकेत सभी कथावस्तु के देशकाल-के अनुरूप ऐतिहासिक तथ्य को झलका देने वाली शब्दावली में प्रस्तुत किये गये हैं। हिन्दू वैभव के युग का चित्र खींचने वाले एकांकियों की भाषा पात्रानुकूल संस्कृत-तत्सम शब्द तथा मुगल वैभव के युग पर आधारित एकांकियों में अरबी फारसी मिश्रित भाषा का व्यवहार हुआ है। साथ ही सामान्य सामाजिकों की व्यावहारिक सुविधा का ध्यान रखते हुए भाषा की सुबोधता और एकरूपता में भी व्याघात नहीं आने पाया है। पात्रों के व्यक्तित्व और मनःस्थिति का तथा घटना-व्यापारों के चढ़ाव उतार की सबल अभिव्यक्ति कर देने की जितनी क्षमता इन ऐतिहासिक एकांकियों की भाषा में प्रत्यक्ष हुई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। एकांकीकार कवि-हृदय ने भी अपनी मधुर और ओजस्विनी कल्पना की उर्वरता का भरपूर सदुपयोग इन ऐतिहासिक एकांकियों की भाषा की नाटकीय सक्रियता और सहज संप्रेषणीयता के निर्वाह में किया है। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे।

'समुद्रगुप्त पराक्रमांक' में केदारा के स्वरों की भावना स्पष्ट करते हुये कलाप्रेमी समुद्रगुप्त के शब्दों की बानगी देखिए :—

....'केदारा के स्वर में वह भावना है कि करुणा की समस्त मूर्छनायें एक बार ही हृदय में जाग्रत हो जाती हैं। ऐसा ज्ञात होता है जैसे सारा संसार तरल होकर किसी की आँखों से आँसू बनकर निकलना चाहता है। तारिकाएँ आकाश की गोद में सिमिट कर पतली किरणों में प्रार्थना करने लगती हैं। कलिकाएँ सुगंधि की वेदना से फूल बन जाती हैं और बिन्दु में डूब कर पृथ्वी के चरणों में आत्मसमर्पण करना चाहती हैं।

इसी प्रकार 'वासवदत्ता' में नगर सुन्दरी वासवदत्ता की मदभरी, प्रतिहिंसाभरी वाणी का आक्रोश भी द्रष्टव्य है—

... किन्तु...किन्तु मेरे यौवन और सौंदर्य का इतना अपमान। यह शरीर जल रहा है। ... मैं इस पुरुष जाति से पूरा बदला लूँगी। जितने पुरुष हैं उन्हें चरणों के नीचे पीस दूँगी। वासवदत्ता नारी की समाधि पर विश्वविजयिनी नर्तकी बन कर नृत्य करगी ?'

'कादम्ब या विष' शीर्षक एकांकी की भाषा सुकुमार और उग्र दोनों ही प्रकार की भावस्थितियों एवं मुद्राओं के अंकन में एकांकीकार की समान सामर्थ्य को व्यक्त करती है। अनन्तदेवी के कथनों में इस सामर्थ्य की अच्छी झलक मिलती है। एक ओर कादम्ब का एक घूंट पीकर उन्मत्त अनन्तदेवी की रोमानी वातावरण से ओतप्रोत भाषा देखिये :—

"....जैसे मैं इन्द्र के नन्दन-निकुंज में कल्पवृक्ष के किसलयों पर शयन कर रही हूँ और विद्याधर और स्त्रियाँ मेरे समक्ष सुगन्धि को ही राग बनाकर गा रहे हैं।'...

दूसरी ओर उसकी आवेश और प्रवंचना से भरपूर शब्दावली की प्राणवता भी द्रष्टव्य है :—

"चौंक उठी ? (व्यंग्य की हँसी हँस कर) शक्तिहीन नारी! पवन के झोंकों से चौंक उठना, फूलों की पंखुड़ियों से शरीर पर खरोंच लगना, कंठ पर बाहु का बोझ अनुभव करना, ये सब कुंज में पुष्प-शैया की बातें हैं, राजनीति की नहीं। राजनीति में कुंज की पुष्प-शैया जल उठती है, लाल फूल अंगारों का रूप धारण कर लेते हैं और शीतल समीर सर्पों की फुफकार बन जाती है।' विलासी नवाबों की मुसलिम-संस्कृति का वातावरण संभाले हुये 'वाजिद अली शाह' एकांकी में 'सुलतान परी' के कथन की भाषा की नज़ाकत और रवानगी कुछ और ही है :—

'जहाँ पनाह ? कनीज़ को यह सज़ा न दीजिए। उम्र भर आदाब बजा लाना ही कनीज़ की जिंदगी का मकसद है। मेहँदी के बिना कनीज़ के सूने हाथ नफासत के साथ आलमपनाह के आदाब बजा लाने का फर्ज कैसे अदा कर सकेंगे ? आदाब की खूबसूरती सूने हाथों से फीकी पड़ जायगी; जाने आलम !

'औरंगजेब की आखिरी रात' शीर्षक ऐतिहासिक एकांकी की भाषा वस्तुतः डॉ० वर्मा के सभी एकांकियों की अपेक्षा कहीं अधिक नाटकीय प्रवाह और मार्मिक संवेग की प्रभावात्मकता से संपुष्ट है। एक एक वर्ण जैसे एकांकी के नायक 'आलमगीर' के हृदय के एक से एक गहरे घावों की पीड़ा को मुखर करता चला है। एक एक वाक्य के पीछे समग्र संवेदना का इतिहास मूर्तिमान हो उठा है। पात्र के व्यक्तित्व और अन्तर्द्वन्द्व का एक साथ इतना जीवन्त और रोमांचकारी उद्‌घाटन अन्यत्र दुर्लभ है। एक उदाहरण भाषा की नाटकीय शक्तिमत्ता के प्रमाणस्वरूप यहाँ पर पर्याप्त होगा :—

'आलम—देखती हो यह अंधेरा ? कितना डरावना ! कितना खौफनाक ! दुनिया को अपने स्याह परदे में लपेटे हुये है। गोया यह हमारी ज़िदगी हो। इसमें कभी सुबह नहीं होगी जीनत ! अगर होगी भी तो वह इसके काले समुन्दर में डूब जायगी। इस अंधेरे में सूरज भी निकले तो वह स्याह हो जायगा।..."

इस प्रकार डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकियों की भाषा शब्द-शिल्प, भाव-व्यंजना, पात्रों की मन:स्थिति का यथार्थ अंकन, घटना-व्यापारों की नाटकीय संयोजना, देश-काल एवं वातावरण का सहज उभार, तथा अभिनयोचित निर्देशों का औचित्य—आदि सभी दृष्टियों से समृद्ध है और उसमें उनकी एकांकी-कला की प्रौढ़ता एवं मौलिकता समग्र वैविध्य, वैचित्र्य एवं वैशिष्ट्य के साथ अभिव्यक्त हुई है।

• • •

डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटकों में वीर-भावना

डॉ० टीकमसिंह तोमर, अध्यक्ष-हिंदी-संस्कृत विभाग, बलवंत राजपूत कालेज आगरा

•

डॉ० रामकुमार वर्मा हिन्दी एकांकी नाटक-साहित्य के प्रवर्त्तक हैं। इन्होंने सामाजिक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर विविध रसपरक नाटकों की रचना की है। वीररस चित्रण की दृष्टि से वर्मा जी के ऐतिहासिक नाटक अधिक महत्वपूर्ण हैं। इन नाटकों का क्षेत्र अधिक व्यापक है। प्राचीन हिन्दू युग तथा मध्ययुगीन प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं तथा महापुरुषों के माध्यम से इन्होंने वीररस की विभिन्न दशाओं के सजीव और प्रेरणा-प्रदायक चित्र अंकित किए हैं।

डॉ० वर्मा ने वीर-पुरुषों के अदम्य उत्साह, वंश-गौरव और आत्म-सम्मान के वर्णन में बड़े कौशल का परिचय दिया है। 'शिवाजी' नाटक में शिवा जी अपने सैनिकों को सम्बोधन करते हुए कहते हैं:—

"वीरो! सदैव शक्ति और साहस में विश्वास रक्खो। आत्मसम्मान भवानी का दिया हुआ सबसे बड़ा वरदान है।"[1] तथा चन्द्रगुप्त—"गुप्तकुल की मर्यादा इसीलिए स्थिर है कि युद्ध के दिनों में विलास स्वप्न की तरह भुला दिया जाता है। आत्म-सम्मान और वंश-गौरव ही एकमात्र कहने और सुनने का विषय बन जाता है।"[2]

वीर मातृ-भूमि और राष्ट्र-भूमि को अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय मानते हैं। अपने प्राणों की बलि चढ़ाकर भी वे उसकी रक्षा करते हैं:—

शिवाजी—"शिवा-भवानी की तलवार की चिनगारियों से ही दक्षिण में स्वतंत्रता का प्रकाश हो रहा है। बन्धुओ! तुम्हारी वीरता का केन्द्रमण्डल तुम्हारी महाराष्ट्र जननी है, जिसने सह्याद्रि के पर्वत से अपनी शक्तिधारा के प्रवाह में तुम्हें आगे बढ़ने का वेग और बल प्रदान किया है।"[3]

इसी प्रसंग में चारुमित्रा का यह कथन भी दृष्टव्य है:—

'मेरे कलिंग के लोग वीर हैं। वे माता की तरह अपनी भूमि का आदर करते हैं। जब

---

१. शिवाजी, पृष्ठ ७७

२. दीपदान, कृपाण की धार, पृष्ठ १२०-२१

३. शिवाजी, पृष्ठ ६९

तक एक भी वीर है तब तक तो कलिंग की जय का घोष वायु को सहन करना ही होगा।"[१]

भारतीय पुरुष सदैव अपने शौर्य का परिचय देते रहे हैं। उन्होंने संकट को भी वरदान माना है, यथा :—

"चन्द्रगुप्त (ध्रुवस्वामिनी से) आर्य समुद्रगुप्त के पुत्र के लिए संकट ही वरदान है, महादेवी।"[२] सच्चा वीर सदैव अपने वीरत्वपूर्ण आत्म-विश्वास का परिचय देता है। यथा :—

"चन्द्रगुप्त (चाणक्य से) —महामंत्री, चन्द्रगुप्त ने कुसुमों की क्यारियों में नहीं, समरांगण में अपने जीवन का वैभव देखा है, उसने नुपूरों की झनकार में नहीं, तलवारों की झनकार में अपने जीवन का संगीत गाया है।"[३]

अलौकिक वीरतापूर्ण व्यक्ति अपने प्रतिद्वन्द्वी के शौर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। ये वीर महान् उदारता का परिचय देते हैं। 'मर्यादा की वेदी पर' एकांकी में वर्माजी ने सिकन्दर की इस वीरतामयी गुणग्राहकता का सजीव वर्णन किया है :—

"सिकन्दर (एनिसाक्रिटीज से) —पौरव! वह वीर धन्य है। सेना का सर्वनाश हो जाने पर भी उसने मैदान नहीं छोड़ा। वह वीरों को बढ़ावा देता और कायरों को भागने से रोकता रहा।

वीर! उसी को हम वीर कह सकते हैं जो कायर को भी वीर बना दे, गिरते हुए योद्धाओं को फौलाद की दीवार में बदल दे। जो तलवारों में बिजली भर दे और भालों में भाग्य की कठिनता। पौरव ऐसा ही वीर है. . . वह सेनापति ही नहीं था, सिपाही था।"[४]

वीर युद्ध करना ही नहीं जानते हैं वरन् उनमें सच्ची शक्ति को समझने की भी क्षमता होती है। इसी तथ्य का उद्घाटन करने के लिए "तैमूर की हार' नाटक की सर्जना की गई है। तैमूर अपनी क्रूरता और नृशंसता के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है। उसी के चरित्र को उभार कर वीरता के इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को स्पष्ट किया गया है। वर्मा जी लिखते हैं:—

" . . . मैं समझता हूँ जो शक्तिशाली होता है, उसमें शक्ति को परखने की क्षमता भी होती है। यदि यह दृष्टि उसमें न रहे तो उसकी शक्ति बालू की दीवार है। तैमूर शक्तिशाली होने के नाते वीरता को परखने की क्षमता रखता था। . . . वीरता के विकास का दृष्टिकोण स्वस्थ जीवन का परिचायक है।"[५]

वीर युद्ध-भूमि में अपने शौर्य और पराक्रम का परिचय देते हैं। वे निरीह प्राणियों पर हाथ नहीं उठाते। शत्रुओं के बच्चों और स्त्रियों के सम्मान और मानमर्यादा की रक्षा करते । आवाजी ने कल्याण प्रदेश के मुल्ला अहमद की पुत्रवधू को पकड़कर शिवा के पास भेंट स्वरूप भेजा तो शिवाजी ने उसको अपनी माता जीजाबाई के रूप में देखा। डॉ० रामकुमार वर्मा ने

१. चारुमित्रा, पृष्ठ २४
२. दीपदान, कृपाण की धार, पृष्ठ १२५
३. कौमुदी महोत्सव, पृष्ठ ८३
४. दीपदान, मर्यादा की वेदी पर, पृष्ठ १७५
५. रजत-रश्मि, तैमूर की हार, पृष्ठ ३९

शिवाजी नाटक में इसी तथ्य का निरूपण करते हुए वीर केसरी शिवाजी के अनुकरणीय आदर्श गुणों का वर्णन किया है :—

"शिवाजी—आवाजी ! शत्रुओं के देश की स्त्रियों का अपमान नहीं होना चाहिए।. . बच्चों को कभी उनके माता-पिता से जुदा मत करो ।. . . जीजाबाई का पुत्र शिवाजी शत्रु की स्त्री में भी जीजाबाई की तस्वीर देखता है ।"[१]

वीरता का उद्देश्य राष्ट्र की रक्षा करना है। वीर धार्मिक संकीर्णता से ऊँचा उठकर सहिष्णुता और सदाशयता का परिचय देता है । उसका दृष्टिकोण समदर्शी होता है। वर्मा जी ने इस अलौकिक भावना का चित्रण इस प्रकार किया है :—

"शिवाजी—शिवाजी के लिए इस्लाम धर्म उतना ही पूज्य है, जितना हिन्दूधर्म. . . . मेरे लिए धर्म के ख्याल से हिन्दू और मुसलमान में कोई फर्क नहीं ।"[२] कहने की आवश्यकता नहीं है कि वर्त्तमान समय में राष्ट्रीय एकता के लिए यह स्वस्थ भावना कितनी उपादेय और अनुकरणीय है ।

भारत में वीरता का अभाव कभी नहीं रहा। भारतीयों ने हँसते-हँसते आत्म-बलिदान किया तो भी शत्रु विजयी हुए। इस पराजय का कारण शक्ति और शौर्य का अभाव नहीं था। इसके मूल में पारस्परिक वैमनस्य, विद्वेष तथा फूट की भावना थी। इस ऐतिहासिक सत्य को सिकन्दर ने भी स्वीकार किया है :—

"सिकन्दर (एनिसाक्रिटीज़ से) . . . .इस देश के वीरों ने शक्ति की पूजा तो की किन्तु वे अपने देश की पूजा नहीं कर सके । एक एक नगर, एक-एक वीर फौलाद का टुकड़ा है लेकिन अलग-अलग टुकड़े, एक शृंखला नहीं बना सकते । ये एक दूसरे के हृदय से नहीं जुड़ सके ।"[३]

'भाग्य-नक्षत्र' एकांकी में पृथ्वीराज के मुख से भी लेखक ने ऐसी भावनाओं को व्यक्त कराया है :—

"पृथ्वीराज . . . . परस्पर का विद्वेष ऐसी चिनगारी है जो वीरता के लाक्षा-गृह को एक क्षण में भस्मीभूत कर सकती है । राजपूतों में यदि विद्वेष न होता तो संसार की कोई भी शक्ति उन्हें पराजित न कर सकती. . . . "[४]

पुरुषों की वीरता तथा शौर्य का वर्णन करने में वर्मा जी को जो सफलता मिली है, वहीं उन्हें नारी की वीरता के सफल चित्र प्रस्तुत करने में भी प्राप्त हुई है। उन्होंने भारतीय नारी की शक्ति को अपनी पैनी दृष्टि से पहचाना है । 'दुर्गावती' नाटक के प्रारम्भ में वह लिखते हैं:—

"भारतीय नारी ! तुम्हारी शक्ति अपरिमित है। इस अपरिमित शक्ति की आवश्यकता भारतीय राजनीति को है । कुसुम के कलेवर में कुलिश की सृष्टि करो ।"[५]

---

१. शिवाजी, पृष्ठ ८९
२. शिवाजी, पृष्ठ ८९
३. दीपदान, मर्यादा की वेदी पर, पृष्ठ १७४
४. दीपदान, भाग्यनक्षत्र, पृ० ७४
५. रजतरश्मि, दुर्गावती, पृष्ठ ७३

वर्मा जी नारी की शक्ति उसकी साधना में मानते हैं। अपने इसी दृढ़ विश्वास को लेखक ने दुर्गावती से कहलाया है :–

"नारी की शक्ति उसकी तपस्या में है।"[१]

इतिहास में वैसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे सिद्ध हो जाता है कि नारी ने पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर जीवनोत्सर्ग किया है। वह 'साहस का कवच और शक्ति की तलवार'[२] धारण करक शत्रु के दाँत खट्टे करती रही है। स्वामि-भक्ति तथा मातृ-भूमि की रक्षा के लिए उसने हँसते-हँसते अपने पुत्र का बलिदान किया है। 'दीपदान' में पन्ना महाराणा उदयसिंह के प्राणों की रक्षा करने का निश्चय करके कहती है:—

"मेरे महाराणा का नमक मेरे रक्त से भी महान् है। नमक से रक्त बनता है, रक्त से नमक नहीं।"[३]

जब पन्ना महाराणा उदयसिंह की शय्या पर अपने पुत्र को बलि के लिए सुला देती है तब वह प्रार्थना करती है :—

"भवानी! मैं चित्तौड़ की सच्ची नारी बन सकूँ। खीची राजपूतनी अपने रक्त से मंगल-तिलक करे।"[४]

पुत्र को बलि होते देखकर उसके मुख से सहसा ये उद्‌गार निकल पड़ते हैं :—

"मेरे लाल! मेरे चन्दन! जाओ यह रक्तधारा अपनी मातृ-भूमि पर चढ़ा दो। आज मैंने भी दीपदान किया है। दीपदान! अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है। ऐसा दीप-दान भी किसी ने किया है!"[५]

अवसर आने पर भारतीय नारी विवाह-पर्व को युद्ध-पर्व में परिणत करती रही है। दिल्ली में पृथ्वीराज और संयोगिता के पाणिग्रहण की तैयारियाँ हो रही हैं। उसी क्षण विवाह के स्थान पर युद्ध की भेरी बजने लगती है। संयोगिता युद्ध-आयोजन की सहमति प्रदान करती है। पृथ्वीराज कहते हैं :—

"संयोगिता! तुम सचमुच वीर-नारी हो।. . . .इस देश में नारियाँ विवाह-पर्व की उषा में युद्ध-पर्व के रक्तिम रंग से अपना शृंगार करती हैं।"[६]

वह पृथ्वीराज को युद्ध-भूमि में जाने के लिए तैयार करती है:—

"मेरी स्फूर्ति का नया कृपाण आपके हाथ में हो और मेरी मंगलकामनाओं की ढाल आपकी रक्षा में आपके सामने रहे।"[७]

भारतीय नारी वीरमाता और वीरपत्नी ही नहीं है, वरन् वीर कन्या भी है। मातृभूमि की रक्षा के लिए वह हंसते-हंसते विष का प्याला भी अमृत की तरह पीती आई है। मेवाड़

---

१. वही, पृष्ठ ९९
२. वही, पृष्ठ ९८
३. दीपदान, पृष्ठ ४५
४. दीपदान, पृष्ठ ५७
५. दीपदान, पृष्ठ ५९
६. दीपदान, भाग्यनक्षत्र, पृष्ठ ९०
७. वही, वही, पृष्ठ ९०

की राजकुमारी कृष्णा विष पान करने को प्रस्तुत होती है। उसकी माता दुर्बलता का परिचय देती है। कृष्णा इन शब्दों के द्वारा अपने आत्म-बलिदान की सार्थकता सिद्ध करती है:—

"तुम वीर माता हो और मैं वीर कन्या हूँ। मैं भी तो अपनी मातृभूमि की रक्षा का अधिकार रखती हूँ। मैं तुम्हारे अमृत को लज्जित नहीं करूँगी। . . . माँ! तुम यह घोषणा कर दो कि माँ अपने शिशु को अमृतमय दूध पिला कर बड़ा करती है केवल इसलिए कि वह अपनी मातृभूमि की रक्षा में विषपान कर सके।"[1]

आत्मसम्मान, गौरव और सतीत्व की रक्षा करने के लिए भारतीय नारी जौहर का मार्ग अपनाती रही है। उसने हंसते-हंसते अग्नि की लपटों का आलिंगन किया है पर शत्रु द्वारा अपना स्पर्श नहीं होने दिया है। जौहर के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ० वर्मा लिखते हैं:—

"राजस्थान का जौहर संसार के इतिहास में अद्वितीय घटना है। यह वह ज्वाला थी जो राजस्थान की नारियों के तेज़ के समक्ष फीकी पड़ गई और उसने उन नारियों को अपने अंक में उसी प्रकार स्थान दिया जिस प्रकार लाल मखमल की म्यान श्वेत चमकती हुई तलवार को अपने हृदय में स्थान देती है।"[2]

इसी प्रसंग में राजकुमारी कृष्णा की माता के उद्गार भी दृष्टव्य हैं:—

"मैं क्षत्राणी हूँ, प्रलय की घटा बनकर ऐसी बरसूंगी कि उसमें कगारे ही नहीं प्राणों के क्रंदन भी डूब जायेंगे और यदि वे नहीं डूबे तो जौहर की लपटों से उनमें चिनगारियाँ भर दूंगी। किन्तु मेवाड़ के मस्तक को मलिन न होने दूंगी।"[3]

वीररस के प्रसंग में युद्ध-सामग्री के वर्णन का विशेष महत्व होता है। अस्त्र-शस्त्र, साज-सज्जा का विस्तार से उल्लेख किया जाता है। वर्मा जी ने इस ओर भी ध्यान दिया है। इन्होंने अपने नाटकों में तलवार का कई स्थानों पर वर्णन किया। इसका कारण है। वस्तुतः तलवार भारतीयों का सर्वाधिक प्रिय हथियार रहा है। वीरों की वह प्राणों के समान मूल्यवान रही है, यथा:—

"पृथ्वीराज—जानते हो, वीरों के प्राण का नाम है तलवार।"[4] तथा "पन्ना-चित्तौड़ में तलवार से कोई नहीं डरता है, कुंवर! जैसे लता में फूल खिलते हैं, वैसे ही वीरों के हाथों में तलवार खिलती है. . . तलवार चमकती है।"[5]

तलवार के बल पर ही राज्यों की स्थापना होती रही है। 'कृपाण की धार' में चन्द्रगुप्त के ये उद्गार विचारणीय हैं:—

"आर्य समुद्रगुप्त पराक्रमांक के राज्य की सीमा कृपाण की धार पर बनी है, संधियों से नहीं।"[6]

---

१. रजतरश्मि, कलंक-रेखा, पृष्ठ १६०-१६१
२. वही, वही, पृष्ठ १३५
३. वही, वही, पृष्ठ १४६
४. पृथ्वीराज की आँखें, पृष्ठ ९३
५. दीपदान, पृष्ठ ३५।
६. दीपदान, कृपाणकी धार, पृष्ठ १२५

नाटककार ने युद्ध के सजीव चित्र प्रस्तुत करने में अपनी कला-पटुता का परिचय दिया है। उन्होंने रूपकों की सहायता से रणक्षेत्र की यथार्थ झांकी प्रस्तुत कर दी है :—

"सिकन्दर–ओफ़ ! आज कितना भीषण युद्ध था। काले पहाड़ों की भांति हाथियों की सेना सारे रणक्षेत्र को दबाए बैठी थी। (रथी सेना का वेग सिन्धुनदी की तरह भयानक था। जय या मृत्यु की कगारों को छूती हुई एक बड़ी सेना युद्ध-घोषणा कर रही थी। उसके धनुषों के तीर नहीं वज्र बरसा रहे थे। तलवारें सर्पिणी की तरह फुफकार रही थीं।"[१]

इस प्रकार डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटकों—विशेषकर ऐतिहासिक नाटकों में वीर-भावना का सफल चित्रण हुआ है। वीरता का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए उसकी विभिन्न दशाओं के सजीव चित्र अंकित किए गए हैं। साथ ही राष्ट्रीय भावना की भी स्पष्ट झांकी देखने को मिलती है। इन नाटकों में आत्म-बलिदान और जन्मभूमि की रक्षा की भावनाओं को पाठक के हृदय में जागृत करने की अपूर्व क्षमता है।

●●●

१. दीपदान, मर्यादा की वेदी पर, पृष्ठ १७४

डॉ० रामकुमार वर्मा की एक अप्रकाशित कविता

डॉ० राधिकाचरण खरे
प्राध्यापक, गणित विभाग, विश्वविद्यालय, प्रयाग

●

वर्माजी की एक अप्रकाशित कविता का शीर्षक है—"यह कहानी प्यास की" कविता निम्नलिखित है :—

मलय सुरभित मन्द साँस समीर से
कह रहा हूँ यह कहानी प्यास की ।
रंग जिसमें हैं नहीं,
गति ही बनी है एक रेखा;
चित्र जो खींचा हृदय पर
वह स्वयं मैंने न देखा ।
गर्व इस अनदेखने पर है मुझे—
बात है मन के किसी विश्वास की ।
यह कहानी प्यास की ।
भाग्य की इन पंक्तियों में,
हैं "अकर्मक" सब क्रियाएँ
और भावों के अभावों से
बनी हैं भावनाएँ ।
जब प्रतीक्षा में अवधि सारी गई
फिर प्रतीक्षा क्या रही मधुमास की ।
यह कहानी प्यास की ।
धूम अपना पी चुकी हैं
अनबुझी ये कामनाएँ,
जो कभी चिनगारियाँ थीं
वे बनी हैं अब शिखाएँ,
आरती आराधना की व्यर्थ है
जब सजी है आरती हर साँस की
यह कहानी प्यास की ।

इस आलोचना में निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार किया गया है :—

१—इस कविता का यथार्थ भाव क्या है और क्या वह सत्य को सही रूप में प्रतिबिम्बित करती है ?

२—क्या ये भाव चिन्तनजनित हैं या स्वाभाविक, अर्थात् छन्द पर अधिकार होने से केवल पढ़ी हुई बातों को कविता का रूप दे दिया गया है अथवा इन पंक्तियों के पीछे कुछ अनुभूति भी है ?

३—यह अनुभूति एक क्षणिक-भावना-प्रेरित है या लम्बी अवधि में होने वाली अनुभूतियों में एक लड़ी है अर्थात् यह मूड (mood) की कविता है या इसके पीछे कोई जीवन-दर्शन भी है ?

४—यह अनुभूति एक निर्मूल भ्रम (hallucination) है या सत्य की वास्तविक प्रतीति ?

प्रथम प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हम कविता की पंक्तियों की ओर उन्मुख होते हैं। अर्धनिशा में चतुर्दिक शान्ति का अटूट राज्य विस्तृत है। पृथ्वी पर निस्तब्धता छाई हुई है। सारा संसार निद्रावस्था में बेसुध है। आकाश में आकाश-गंगा का विस्तार है। जहाँ तक दृष्टि जाती है, तारों का फैलाव दृष्टिगोचर होता है। समयावसान के साथ दृश्य जगत में कोई परिवर्तन नजर नहीं आता। वही रूप, वही रंग। पर समय अवश्य बीत रहा है, जगत् का अर्थ है—वह जो चलायमान है। रात्रि की संपूर्ण निस्तब्धता में प्रकृति के इस रूप के दर्शन होते हैं—केवल एक गति है।

> या निशा सर्वभूतानां, तस्याम् जागर्ति संयमी,
> यस्याम् जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः।

नक्षत्र-भौतिकी शास्त्र (Astro-physics) के पठेता जानते हैं, कि ज्यों ज्यों दूरदर्शक यंत्र की शक्ति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों आकाश में अधिकाधिक तारामण्डल दृष्टिगोचर होते हैं। हमारी आकाश-गंगा के समान, असंख्य आकाश-गंगाएँ जगत् में फैली हुई हैं। प्रत्येक आकाश गंगा, अपने तारा समूह के साथ, अपनी धुरी पर घूमती हैं और इसके साथ ही पूरा समूह आकाश में निर्बाध रूप से चलायमान है। यह स्थिति क्षणिक नहीं है। आदिम काल से जब से मनुष्य में दृश्य जगत् पर विचारने की शक्ति संचित हुई तब से वह इसी स्थिति को देखता आता है। मनुष्य की व्यक्तिगत आयु तो क्या, उसकी पृथ्वी पर बड़ी बड़ी सभ्यताओं के उत्थान और पतन इस अनन्त काल में वैसे ही हैं, जैसे समय के प्रसार में घड़ी की एक टिक की ध्वनि। दृश्यजगत् कब बना, उसकी वर्तमान स्थिति क्या है और भविष्य के गर्भ में क्या है? ये प्रश्न नक्षत्र-भौतिकी-शास्त्र और Generalized Theory of Relativity के अनु-संधान के विषय हैं। इन शास्त्रों के अध्ययनकर्ताओं को ज्ञात है कि विश्व के संबंध में तीन धारणाएँ हैं, उनमें से एक का शीर्षक है—Steady State Theory of the Universe अर्थात् जगत् जैसा इस समय दिखता है, वैसा ही सदा से दिखता आया है और सदा दिखता जायगा। सापेक्ष्यवाद के सिद्धान्तानुसार समय का भान तब ही होता है जब दो घटनाएं भिन्न प्रकार की घटें। आकाश में (Space) घुमाव (curvature) वहाँ होता है जहाँ मात्रा (mass) विद्यमान हो। मात्रा की अनुपस्थिति में, न घुमाव होगा और न प्रकाश के प्रसार को जानने की कोई विधि। इसी पारस्परिक (Relative) गति को जानने के लिए Ether नामक पदार्थ की कल्पना की गई थी। जिस जगत् में कोई परिवर्तन नहीं, केवल गति है,

उसका वर्णन किन शब्दों में हो सकता है ? जहाँ द्वन्द्व नहीं, जहाँ न अंधकार है और न प्रकाश, न दिन है और न रात, उसका वर्णन कैसी भाषा में हो सकता है, उसका वास्तविक वर्णन यही हो सकता है :—

रंग जिसमें है नहीं,
गति ही बनी है एक रेखा;

गति विज्ञान का सिद्धान्त है कि बाहरी Force की अनुपस्थिति में गति एक सरल रेखा में ही होती है । जब रहस्यवादी कबीर कहते हैं :—

हम बासी वा देश के,
जहँ बारह मास बसन्त ।
या
हम बासी वा देस के,
जहं पारब्रह्म को खेल ।
दीपक जरै अनन्त को,
बिन बाती बिन तेल ।।

तब वे इसी द्वन्द्वहीन एकरस रहने वाले सत्य की ओर निर्देश करते हैं ।

भौतिकी-शास्त्र में वर्णपट (Spectrum Analysis) का कहना है कि प्रकाश-तरंगों की लम्बाइयाँ अपरिमित हैं । केवल एक निर्दिष्ट अन्तराल (Interval) की तरंगें हमारी आँखों के Lens को प्रभावित करती हैं । वही रंग कहलाते हैं । वास्तव में रंग केवल आँखों का भ्रम है । न कहीं लाल है, न पीला । तब जो आँखें इस रंगहीन दृश्य को देखती हैं, वे क्या वर्णन कर सकती हैं, यही न कि—

"चित्र जो खींचा हृदय पर,
वह स्वयं मैंने न देखा ।"

तुलसीदास जी की प्रसिद्ध पंक्तियाँ :—

गिरा अनयन,
नयन बिनु वाणी ।"

इसमें जो अर्थ निहित है, वही यहाँ अधिक सशक्त रूप में वर्णित है ।

जिगर मुरादाबादी ने दूसरे प्रसंग में लिखा है :—

क्या हुस्न का अफ़साना महदूद हो लफ्ज़ों में ।
आँखें ही कहें उसको, आँखों ने जो देखा है ।।

लेकिन आलोच्य कविता में तो यह कहा गया है कि जो चित्र आँखों ने देखा है, वह आँखों ने नहीं देखा । यह जो विरोधाभास है, वही सत्य की ओर निर्देश करता हैं । कहा जा सकता है कि कवि आपे में नहीं है, इसी से उसे यह विचित्र अनहोनी सूझ उत्पन्न हुई है । उत्तर में असगर गोंडवी का यह कलाम हाज़िर है :—

जुनूने-इश्क में हस्तीए-आलम पै नज़र कैसी ?
रुखे लैला को क्या देखेंगे महमिल देखने वाले ।।

कवि को भान हो रहा है कि जो मलयसुरभित मंद समीर चल रहा है, वह उसी की साँस है, अर्थात् उसने सर्वत्र व्याप्त समीर से एकात्मभाव प्राप्त कर लिया है। इसी तरह का वर्णन भागवत में आता है :—

यं प्रजन्तमनुपेतमेपतकत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति, तन्मयतया तरवोऽभिनेदु—
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोस्मि ।।

अर्थात् :—सब प्रकार के लौकिक-वैदिक कर्मों का त्यागकर अकले ही बन की ओर जाते हुए जिन (शुकदेव जी) को महर्षि द्वैपायन ने विरहातुर हो 'हे पुत्र ! हे पुत्र !' ऐसा कहकर पुकारा और तन्मयता के कारण जिनकी ओर से वृक्षों ने उत्तर दिया था, उन सब भूतों के अन्तरात्मरूप मुनीश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ ।

—श्रीमद्भागवत, प्रथम भाग

कवि यह जानता है कि लोग उसकी इस बात को संदेह की दृष्टि से देखेंगे—इसी से जोर देकर आत्माभिमान से कहता है —

गर्व इस अनदेखने पर है मुझे,
बात है मन के किसी विश्वास की ।

गालिब साहिब की फ़ारसी की शायरी जब जल्दी लोगों के पल्ले नहीं पड़ी और वे शायर की खिल्ली उड़ाने लगे, तब ही तो उन्होंने कहा था:—

न सताइश की तमन्ना, न सिले की परवा ।
गर नहीं मेरे अशआर में, मानी न सही ।।

परन्तु गालिब साहब की उक्ति में झुंझलाहट है, वर्मा जी की पंक्ति प्रेम से सराबोर है।

इस मनोदिशा में सारी कर्मण्यता (activity) शान्त हो गई है और किसी प्रकार के कोई भाव नहीं उठते । इसलिए कवि ने कहा है कि—

भाग्य की इन पंक्तियों में
हैं "अकर्मक" सब क्रियाएँ ।
और भावों के अभावों से
बनी हैं, भावनाएं ।

जिन लोगों ने कभी Tranquilizers या mild sleeping dozes ली हैं, उन्हें अनुभव होगा कि केवल मन की गति चलती रहती है, पर शारीरिक धर्म सब रुक जाते हैं। यदि आसपास कोई बातचीत होती रहती है. तो वह सब सुनाई देती है और समझ में आती है। यह तो प्रगाढ़ निद्रा में होता है कि आसपास होने वाली बातें भी सुनाई नहीं देती । प्रगाढ़ निद्रा वाली स्थिति कवि की नहीं है । यदि होती, तो उसे यह सब भान होने का पता ही न होता और सूफी कवि असगर गोंडवी के समान वह कहता—

नज़र में वोह गुल समा गया है, तमाम हस्ती पै छा गया है ।
चमन में हूँ या क़फ़स में हूँ मैं मुझे अब इसकी खबर नहीं है ।।

कवि अभी उस मनोदशा तक नहीं पहुंचा है, इसी से उसे अभी यह याद है कि सारी आयु प्रतीक्षा में बीत चुकी है, अब मधुमास की प्रतीक्षा करने की कोई जरूरत ही नहीं।

जब प्रतीक्षा में अवधि सारी गई,
फिर प्रतीक्षा क्या रही मधुमास की।

इच्छाएं जो कि दृश्य जगत् को रंगीन बनाती हैं, अभी शान्त नहीं हुई हैं, वरन् वे अब अत्यन्त प्रज्वलित रूप धारण कर चुकी है। अग्नि के पूर्ण प्रज्वलित होने के पहिले की धूमावस्था खत्म हो चुकी है, अब अग्नि ने शिखा का रूप ले लिया है। हर एक साँस आरती करती है, अब आराधना की अपेक्षा नहीं है।

धूम अपना पी चुकी हैं,
अनबुझी ये कामनाएँ
जो कभी चिनगारियाँ थीं,
वे बनी हैं अब शिखाएँ,
आरती आराधना की व्यर्थ है,
जब सजी है आरती हर साँस की।

पूरी रात शलभ दीपक के आस-पास चक्कर काटता रहता है। जब उसकी समर्पण की इच्छा चरमावस्था में पहुंचती है, तभी वह दीप की ज्वाला में भस्म हो जाता है और स्वयं दीप बन जाता है यथा—

शलभ जलकर दीप बन जाता निशा के शेष में
—महादेवी वर्मा : 'दीपशिखा'

कवि की मनोदशा अभी उस कोटि की नहीं है जहाँ वह कह सके—

बेखुदी का आलम है, महव-जिवहसाई हूँ।
अब न सर से मतलब है, और न आस्ताने से ॥
अब न कहीं निगाह है, अब न कोई निगाह में।
महव खड़ा हुआ हूँ मैं, हुस्न की जलवागाह में ॥
अब मुझे खुद भी नहीं होता है कोई इम्तियाज़।
मिट गया हूँ इस तरह उस नक्शे-पा के सामने ॥
मैं बुलहविस नहीं कि बुझाऊँगा तिश्नगी।
मेरे लिए तो उठती हैं मौजें शराब की ॥
—असगर गोंडवी

कवि को अभी अपने व्यक्तित्व का भान है, इसलिए वह अभी नहीं कह सकता कि :—

रहा जो होश तो रिंदी औ-मैकशी क्या है।
जरा खबर जो हुई फिर वोह आग ही क्या है।
—असगर गोंडवी

इस तरह हम देखते हैं कि कवि ने यथार्थ सत्य का वर्णन ईमानदारी के साथ किया है। उसकी अनुभूति सही और वर्णन अनुभूति के अनुरूप है। दूसरे प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हमें "आकाशगंगा" की कविताओं की ओर अग्रसर होना चाहिए। उनके साथ ही इस

कविता को पढ़ने से मालूम होता है कि कवि इस अनुभूति की दिशा में बहुत समय से धीरे-धीरे बढ़ रहा है। उसमें अनुभूति है और वह बहुत ही सुन्दर छन्दों में व्यंजित हुई है। भाषा में माधुर्य और मन को प्रसन्न करने वाला संगीत है।

तीसरे प्रश्न का उत्तर उनकी दिनचर्या से मिलता है। यदि यह मनोदशा दिन-रात रहे तो जीवन के अहर्निश होने वाले और काम हो ही नहीं सकते। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मध्यनिशा की निस्तब्धता में ही कवि को ये भाव उठते हैं। इस से यह कविता मूड (Mood) की ही कही जायगी, जिसका सबसे अच्छा उदाहरण अंग्रेजी कविता है। चाहे कीट्स हो, चाहे शेली या वर्ड्सवर्थ, इनमें से कोई भी जीवन के प्रति कोई एक दृष्टिकोण प्रदान नहीं करते, जैसे कि वाल्मीकि या तुलसीदास करते हैं या मिल्टन करते हैं।

चौथे प्रश्न का उत्तर परा-मनोविज्ञान (Para-psychology) से मिलता है। निर्मूल भ्रम (Hallucination) होने के पश्चात् शरीर और मन में स्फूर्ति नहीं रहती, एक बड़ी थकावट आती है, चिड़चिड़ापन होता है। इसके विपरीत सत्य की वास्तविक प्रतीति से मन को एक आह्लाद प्राप्त होता है और शारीरिक सौम्यता और कांति बढ़ती है। हमारा ख्याल है कि आलोच्य कवि के अनुभव निर्मूल भ्रम नहीं हैं।

इस अप्रकाशित कविता की पंक्ति-पंक्ति से मैं इतना अधिक अभिभूत और आह्लादित हुआ हूँ कि संपूर्ण मन से कवि को महान् दार्शनिक शंकराचार्यजी के निम्नलिखित श्लोकों से श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ—

> प्रदीप ज्वालाभिर्दिवसकर नीराजनविधिः
> सुधा सूतेश्चन्द्रोपल जललवैरर्घ्यरचना।
> स्वकीयैरम्भोभिः सलिलनिधि सौहित्यकरणं
> त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि, वाचास्तुतिरियम्॥

अर्थात्, हे जननि, तेरी प्रदान की हुई वाक्शक्ति से की गई इस स्तुति के शब्द इस प्रकार हैं, जैसे दीपक की ज्वालाओं से सूर्य की आरती उतारना, और चन्द्रकान्त मणि से टपकते हुए जलकणों से चन्द्रमा को अर्घ्यप्रदान करना, अथवा समुद्र का सत्कार उसी के जल से करना।

काश, मैं भी ऐसी कविता कर सकता—

> कदा काले मातः कथय कलितालक्तक रसं
> पिबेयं विद्यार्थी तव चरण निर्णेजनजलम्।
> प्रकृत्या मूकानामपि च कविता कारणतया
> यदा धत्ते वाणी मुखकमलताम्बूल रसताम्॥

अर्थात् हे माँ, बताओ, वह समय कब आएगा, जब मैं एक विद्यार्थी, तेरा (चरणोदक) जो लाक्षारस के रंग से लाल हो रहा है, पान करूंगा, जिसमें सरस्वती के मुखकमल से निकले हुए पान की पीक के सदृश, जन्म के गूंगे को भी कविता शक्ति प्रदान करने की क्षमता है।

• • •

चारुमित्रा की ऐतिहासिकता

प्रमोदकुमार सिनहा, शोध छात्र, हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय

'चारुमित्रा' आलोचकों के अनुसार ऐतिहासिक एकांकी है। इसकी कथावस्तु अशोक के कलिंग विजय से सम्बन्धित है किन्तु प्रस्तुत एकांकी में अशोक से सम्बन्धित ऐतिहासिक साक्ष्यों से कहाँ तक साम्य भेद है, यह देखना अभीष्ट होगा।

चारुमित्रा की प्रमुख घटना है कलिंग युद्ध और अशोक की विजय जो पूर्णतः ऐतिहासिक है। इसके ऐतिहासिकता के प्रमाण हमें शिलालेखों, बौद्ध जातक कथाओं और ऐतिहासिक ग्रन्थों से प्राप्त हैं।

डा० रामकुमार वर्मा ने चारुमित्रा में लिखा है कि "सम्राट्" ने अपने शासन के तेरहवें वर्ष में कलिंग पर चढ़ाई की थी। पर शासन के तेरहवें वर्ष में कलिंग पर चढ़ाई ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाती। कारण स्वयं अशोक के 'कालसी' और 'शाहबाजगढ़ी' के शिलालेखों के अनुसार "राज्याभिषेक के आठ वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा (अशोक) ने कलिंग देश को विजय किया।"[1] शिलालेखों द्वारा यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि मगध सम्राट् अशोक ने शासन के ठीक आठवें वर्ष कलिंग पर चढ़ाई की थी। अगर अशोक के राज्यारोहण का समय २१२ ई० पू० मान लें और २०४ ई० पू० में कलिंग युद्ध तो इस दृष्टि से 'रंगसंकेत में युद्ध का समय २६१ ई० पू०" ठीक ही लगता है। कारण ३६५ ई० पू० के लगभग चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण हुआ था और ३४८ ई० पू० में सेल्यूकस का भारत पर आक्रमण। फिर इन दोनों के बाद २६१ ई० पू० में अशोक का राज्यकाल हो सकता है, सर्वथा संदिग्ध नहीं है।

जहाँ तक 'चारुमित्रा शीर्षक एकांकी में युद्ध स्थल में मगध साम्राज्ञी तिष्यरक्षिता की उपस्थिति का प्रश्न है, वहाँ यह नहीं कहा जा सकता है कि अशोक के साथ उसकी रानी तिष्य भी कलिंग युद्ध क्षेत्र में उपस्थित थी, कारण इससे सम्बन्धित न कोई शिलालेख ही है और न ऐतिहासिक प्रमाण ही। यहाँ तक कि किंवदंतियाँ भी इसके विषय में मौन हैं। अतः प्रस्तुत एकांकी में युद्ध क्षेत्र में तिष्य की उपस्थिति का पूर्ण श्रेय डॉ० रामकुमार वर्मा की कल्पना को ही है।

---

१. कालसी शिलालेख—"अठवषाभि सितषा देवाना प्रियष प्रियदषिने लाजिने कलिंगय विजित। शाहबाजगढ़ी—"अस्तपष अभिसितस देवन प्रिअस प्रिअदशिस रजो कलिग विजित।

प्रस्तुत विवेचन में—पात्रगत ऐतिहासिकता को क्रमशः देखना ही अभीष्ट होगा। इस दृष्टि से चारुमित्रा का नायक मगध सम्राट् अशोक एक ऐतिहासिक पात्र है। यह निर्विवाद है। चन्द्रगुप्त पाटलिपुत्र का शासक था और बिम्बसार चन्द्रगुप्त का पुत्र। बिम्बसार से ही अशोक की उत्पत्ति हुई किन्तु अशोक की माता के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। 'दिव्यावदान' के अनुसार अशोक की माँ चम्पा नगरी की एक ब्राह्मण कन्या थी। पर 'अशोकादतान माला' (उत्तरीगाथा) के अनुसार अशोक की माँ को सुभद्रांगी बताया गया है जबकि (दक्षिण गाथा) महाबोधि वंश में 'धम्मा' का उल्लेख है। टार्न आदि कतिपय विद्वानों ने उसकी माँ को यूनानी राजकुमारी भी बताया है। अतः अशोक की माँ के नाम के सम्बन्ध में विभिन्न मत भले ही हों किन्तु इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि अशोक बिम्बसार का पुत्र था। चारुमित्रा के अशोक का यह कथन भी उपर्युक्त कथन की प्रमाणिकता प्रस्तुत करता है कि—"पितामह चन्द्रगुप्त ने २४ वर्ष के शासन में कितना विश्राम किया ?... बहुत से छोटे-छोटे राज्यों को एक संघ में गूँथकर अपनी राज्यश्री को विजय-माला पहनाई... सेल्यूकस निकेटर से उन्होंने गांधार और सीमा प्रान्त लेकर आर्यावर्त के मुकुट में कुछ रत्न और जड़ दिये थे।"...

पुराणों के उल्लेख के अनुसार चन्द्रगुप्त ने २४ वर्ष और बिन्दुसार ने २५ वर्ष तक राज्य किया। सेल्यूकस और चन्द्रगुप्त की लड़ाई भी ऐतिहासिक है जिसमें विवश होकर सेल्यूकस को सन्धि करनी पड़ी। फलस्वरूप उसे अपने साम्राज्य के पूर्वी प्रदेश भारतीय नरेश (चन्द्रगुप्त) को देने पड़े थे। यह प्रदेश गांधार के अतिरिक्त काबुल भी था। इतना ही नहीं 'टार्न' के अनुसार तो 'पैरेयेनिसेडेह्' आरकेशिया, जेड्रोशिया और एरियना के कुछ प्रदेश भी चन्द्रगुप्त को अवश्य मिले थे। सेल्युकस पुत्री कार्नेलिया का चन्द्रगुप्त से विवाह भी इतिहास से प्रमाणित है, इसका उल्लेख डॉ० वर्मा ने चारुमित्रा में भी किया है कि—"पूज्य पितामह ने ... सेल्यूकस पर विजय पाकर उसकी सुन्दरी कन्या पर विजय पाई थी।"

चारुमित्रा में एक स्थल पर सेल्यूकस को 'निकेटर' की संज्ञा से विभूषित किया गया है। इस उपाधि के विषय में कतिपय इतिहासकारों का मत है कि 'एण्टोगोनस' पर विजय पाने के पश्चात् ३०६ ई० पू० उसने अपना राज्याभिषेक किया और उसी समय सेल्यूकस ने 'निकेटर' (विजयी) की उपाधि धारण की। अतः सेल्यूकस पर विजय, कार्नेलिया से विवाह, चन्द्रगुप्त का २४ वर्ष का शासन काल, संधि में गाँधार, सीमाप्रान्त के मिले प्रदेश और सेल्यूकस का निकेटर उपाधि धारण करना—आदि एकांकी में उल्लिखित घटनाएं ऐतिहासिक कही जा सकती हैं। एकांकी के ऐतिहासिक पात्रों में अशोक की रानी पर विचार किया जाय तो यह निश्चय करना कठिन है कि सम्राट् की कितनी रानियाँ थीं। पाँचवें शिलालेख में सम्राट् के कई अवरोधों (ओलोधनेस् = अन्तःपुर) का उल्लेख है।[1] जिनमें कुछ तो पाटलिपुत्र में थे और कुछ बाहरी नगरों में स्थित थे। महावंश के २०वें अध्याय के अनुसार 'असन्धिमित्रा' (असन्दिमिजा) अशोक की पटरानी (प्रियाअग्गमहिषि) थी। अशोक के राज्याभिषेक के २६ वर्ष बाद इसकी मृत्यु हो गई। इसकी मृत्यु के ४वर्ष बाद अशोक ने 'तिष्यरक्षा' को अपनी पटरानी बनाया। दिव्यादान के पृष्ठ ३९७-३९८ में इसका नाम तिष्यरक्षिता दिया

१. कालसी—'बहिलेसु चा नागलेसु सवेसु ओलोधनेषु"
शाहबाजगढ़ी—"वाहिलेसु च नगलेसु सवेसु ओलोधनेसु मे एवापि:"......

हुआ है, साथ ही उसके कुकृत्यों का भी वर्णन है। पर तिष्यरक्षिता और कुणाल से सम्बन्धित किंवन्दियाँ आज ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खातीं। तिष्यरक्षिता के साथ अशोक की कारु-वाकी शाक्य कुमारी, पद्मावती आदि रानियों का भी उल्लेख मिलता है। प्रस्तुत एकांकी में डॉ० वर्मा ने तिष्यरक्षिता के लांछित चरित्र को उठाने के लिए ही पात्र रूप में उसकी अवतारणा की है।

चारुमित्रा का बौद्ध भिक्षु उपगुप्त भी एक ऐतिहासिक पात्र है। दिव्यावदान के अनुसार जिस समय सम्राट् अशोक लुम्बिनी गये थे आचार्य उपगुप्त भी उनके साथ थे और उन्होंने कहा था—"अस्मिन महाराज प्रियदसि भगवान (बुद्ध) जात:।" अर्थात् इसी जगह पर भगवान बुद्ध पैदा हुये थे। चीनी भाषा में उपगुप्त को यूपी कीयूटो नाम दिया गया है और जापानी में उकविकता। यह जन्म से शूद्र था। १७ वर्ष की उम्र में यह संघ में सम्मिलित हुआ और तीन साल पश्चात् अरहत हुआ। इसी वर्ष उसने 'मार' विजय की। दक्षिण गाथाओं में उपगुप्त नहीं पाया जाता किन्तु उत्तरी बौद्ध सुवस्कुल ने इसे अशोक का समकालीन बताया है। महावंश के (५-२८०) के अनुसार अशोक के अभिषेक के १७वें वर्ष पाटलिपुत्र में सम्राट् के संरक्षण और गोमालिपुत्रतिस्स या उपगुप्त (जैसा कि उत्तरी गाथा कहती है) की अध्यक्षता में बौद्ध धर्म की तीसरी महासभा हुई थी।इस सभा के विसर्जन पर उपगुप्त ने थारों को धर्म प्रचार के लिए विभिन्न क्षेत्रों में भेजा था।

जहाँ तक 'राजुक' के ऐतिहासिक पात्र होने का प्रश्न है, अशोक के शिलालेखों में 'रज्जुक' शब्द का प्रयोग ३,४,५, शिलालेखों में बार-बार हुआ है किन्तु रज्जुक कोई व्यक्ति नहीं यह एक पद है। श्री पंथारी के अनुसार यह व्यवहार समता तथा दण्ड-समता के भंग करने पर दंड देता था। इसे नगर व्यावहारिकों के शासन कार्य की भी देखरेख करनी पड़ती थी।" श्री सत्यकेतु विद्यालंकार के शब्दों में भी इनका कार्य दंड देना (न्याय करना था)। अत: उन्हें न्यायाधीश ही कहना अधिक उपयुक्त होगा। चारुमित्रा का राजुक भी चारु की दंड व्यवस्था करता है। अशोक उसे चारु के नृत्य के लिए अग्नि तैयार करने की आज्ञा देता है। अत: शिलालेख के अनुसार भी चारुमित्रा का पात्र राजुक (रज्जुक) दंडाधीश ही होगा। राजुक नाम का अशोक से सम्बन्धित किसी ऐतिहासिक पात्र का उल्लेख नहीं मिलता। ऐसे अशोक के चतुर्थ स्तंभ के लेख में 'रक्षुक' के अधिकार और कर्तव्य की पूर्ण विवेचना है जो दिल्ली टोपरा, लौड़िया अराराज, लौड़िया नन्द गढ़ और रामपुरवा के स्तम्भों में प्राप्त है।

एकांकी में चारुमित्रा को अशोक के अंत:पुर अंगरक्षिका के रूप में और उसके बलिदान को एक आदर्श रूप में चित्रित किया गया है। अशोक से सम्बन्धित प्राय: अबतक के सभी अनुसंधानों को देखते हुए कहा जा सकता है कि इतिहास में 'चारुमित्रा' का कहीं कोई उल्लेख मात्र भी नहीं है। चारुमति' का उल्लेख है जो अशोक की पुत्री थी। अन्त:पुर की अंगरक्षिका चारुमित्रा अशोक की चारुमती नहीं हो सकती। इतिहास द्वारा यह भी प्रमाणित नहीं कि अशोक की सेविकाओं में कोई कलिंगवासिनी भी थी जिसने युद्ध शिविर में अपना बलिदान किया था। अत: 'चारु' का चरित्र डॉ० वर्मा की अमर देन है जिसमें देशभक्ति और स्वामिभक्ति है। आदर्शवादी एकांकीकार ने चारु के चरित्र की अवतारणा आदर्श रूप में ही की है। कदाचित् इसके माध्यम से देश की पराधीनता में स्वामिभक्ति और देशभक्ति का सामंजस्य दिखाना ही

डॉ० वर्मा की राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचारधारा का अभीष्ट था। जहाँ तक स्त्री अंगरक्षिका का प्रश्न है मुद्राराक्षस और कौटिल्य अर्थशास्त्र से (अर्थशास्त्र १-२१) भी स्त्री अंगरक्षिका की पुष्टि होती है, चारुमित्रा भी अंतःपुर अंगरक्षिका है युद्ध क्षेत्र की नहीं।

पुष्य, स्वयंप्रभा और 'स्त्री' न इतने महत्वपूर्ण पात्र हैं और उनका इतिहास में कोई उल्लेख ही मिलता है। इनकी अवतारणा मात्र कार्य को क्षिप्रगति देने और समय स्थान की अन्विति के निमित्त ही की गयी है।

'चारुमित्रा' के पात्रों की ऐतिहासिकता पर विचार कर लेने के अनन्तर अब उसकी घटनाओं पर भी विचार करना अभीष्ठ होगा। इस दृष्टिकोण से मगध सम्राट् अशोक का कलिंग राज (तोसली राजधानी) पर युद्ध का उद्देश्य स्वयं एकांकीकार ने अशोक के संवाद में कहला दिया है "कलिंग अपने को सम्राट् मानता है। पाटलिपुत्र का आधिपत्य नहीं मानता। (वह) मेरे शासन के मार्ग को एक स्तूप बनकर रोकना चाहता है।" उपर्युक्त संवाद का साम्य श्री भंडारकर के बताये गये आक्रमण के कारण से भी दीख पड़ता है। उनके अनुसार "कलिंग सम्राट् अशोक भी अन्तर राजनीति में कंटक स्वरूप था। १३ वें शिलालेख से ज्ञात है कि आंध्र और परिन्दा के प्रांत अशोक के साम्राज्य के अन्तर्भूत थे। सामान्यतः आंध्र कृष्णा और कावेरी मण्डल (जिले) का प्रदेश था। अशोक की राजधानी पाटलिपुत्र थी। अस्तु, यह अनुमान करना असंगत नहीं कि वर्तमान बंगाल का गुरुतरभाग-साम्राज्य के अन्तर्गत था। इससे ज्ञात होता है कि (यदि मेरा अनुमान सत्य हो) "परिंदा" सम्भवतः साम्राज्य भी पूर्वी सीमा पर कहीं बंगाल में था। इस तरह कलिंग अन्तर राजनीति में एक कील की तरह गड़ा था, जो कभी भी दक्षिण के चोल-राज्य से गुप्त मन्त्रणा कर सकता था। अतः राष्ट्र की कुशलता और एकीकरण के लिए कलिंग विजय करना परमावश्यक था यही सम्राट् ने किया भी।" श्री पंथारी के मतानुसार "खरामेल लेख के अनुसार कलिंग नंदवंशीय राजाओं के अधिकार में था किन्तु जिस समय चन्द्रगुप्त ने विद्रोह किया सम्भवतः उसी समय कलिंग मगध राष्ट्र से स्वतंत्र हो चला। खोए हुए प्रान्त को फिर से उपलब्ध करने की अभिलाषा से भी प्रेरित होकर अशोक ने कलिंग पर चढ़ाई की।" . . . "और दूसरा सम्भव कारण कलिंग की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शक्ति थी।"

अतः डॉ० वर्मा की लेखनी से प्रस्फुटित अशोक के संकट और इतिहासकारों के कलिंग विजय के कारणों में पूर्णतः साम्य दीख पड़ता है। अशोक ने किसी अहंकार के वशीभूत होकर नहीं वरन् राजनीतिक कारणों से प्रेरित होकर कलिंग युद्ध किया था।

कलिंग की सेना के विषय में चारुमित्रा[1] में अशोक का संवाद; मेगास्थनीज के यात्रा-वृतान्त से पूर्णतः साम्य रखता है। जिसमें मेगास्थनीज ने लिखा है कि—"कलिंग राज के शरीर-रक्षकों में ६०,००० पैदल, १०,००० अश्वारोही और ७०० हाथी थे।

कलिंग रणक्षेत्र में मरे सैनिकों की संख्या के विषय में महाभिक्षु उपगुप्त[2] और सम्राट् अशोक[3] दोनों ने ही एक लाख सैनिकों की मृत्यु और तीन लाख घायल सैनिकों की संख्या बताई है। चारुमित्रा में डॉ० वर्मा द्वारा लिखित अशोक उपगुप्त संवाद का साम्य अशोक के तेरहवें

---

१. पृ० ३६ २. पृ० ४४। ३. पृ० ४९

शिलालेख से भी दीख पड़ता है। उसमें खुदा हुआ है कि राज्याभिषेक के आठ वर्ष बाद देवताओं के प्रिय-प्रियदर्शी राजा ने कलिंग देश को विजय किया वहाँ डेढ़ लाख मनुष्य कैद किये गए, एक लाख मनुष्य मारे गए और इससे कई गुणा आदमी घायल हुए[1]?" प्रस्तुत अंश गिरनार, कालसी, शाहबाज़गढ़ी, और मनसेरा के शिलालेखों में भी खुदा है। डॉ० वर्मा ने उपर्युक्त शिलालेख के कई गुने का अनुमान एक लाख का तीन गुना, तीन लाख माना है जो भगवतीप्रसाद पंथारी के मतानुसार भी अनुमान साम्य रखता है।

एकांकी चारुमित्रा के अन्तिम पृष्ठ में कलिंग विजेता अशोक अपने को 'अत्याचारी' कहता है। भले ही यह शब्द उसके ग्लानि का द्योतक है किन्तु प्रश्न यह है कि क्या वह जीवन के पूर्व पक्ष में अत्याचारी था ?

अशोक के अत्याचार से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख 'दिव्यावदान' में विशेष रूप से किया गया है। दिव्यावदान के अनुसार अशोक ने एक नरकगृह का निर्माण कराया था। जिसमें निरीह मनुष्यों को भाँति-भाँति की यन्त्रणाएँ देकर मार डाला जाता था। चीनी-यात्री ह्वेनसांग ने भी अशोक द्वारा स्थापित नरक गृह तथा उसमें दी जाने वाली घोर यन्त्रणाओं का उल्लेख किया है।

दिव्यावदान के एक अन्य स्थान पर एक बार अमात्यों ने उसकी आज्ञा का पालन नहीं किया इस पर क्रुद्ध होकर उसने ५०० अमात्यों को तलवार के घाट उतार दिया। इसी प्रकार अशोक की पत्तियों को तोड़ने के अपराध में ५०० स्त्रियों को उसने जीवित जलवा दिया था। अशोकावदान के अनुसार बुद्ध प्रतिमा के निरादर पर अशोक ने ब्राह्मणों का वध करने की आज्ञा दी और एक-एक शीश पर पारितोषिक घोषित किया था। अशोक को राज्य-प्राप्ति के समय में अपने भाइयों की हत्या करनी पड़ी ऐसा उल्लेख मिलता है। 'महावंश' के अनुसार यह ९९ भाइयों को मारकर गद्दी पर बैठा। 'दीपवंश' में भी ९९ भाइयों को मारने की पुष्टि होती है। 'दिव्यादान' में तो इसे 'दुःस्पर्शगात्र' भी लिखा है। 'महाबोधिवंश' में भी उत्तराधिकार के लिए युद्ध और भाइयों के वध का उल्लेख है जिन्होंने कि सुसीम का पक्ष लिया था। श्री तारानाथ के अनुसार –'केवल छः भाइयों की हत्या कर अशोक ने राज्य प्राप्त किया। पर चीनी ग्रन्थ "फा-युएन-चु-लिन' के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि अपने बड़े भाई सुसीम को ही मारकर अशोक ने राज्य हस्तगत किया था।

बौद्ध ग्रन्थों में अशोक का पूर्व जीवन अत्याचारी मिलता है कदाचित् बौद्ध अशोक की शालीनता प्रदर्शित करने के लिए ही ऐसा किया गया। इसी प्रकार ९९ भाइयों का वध अन्य साक्ष्यों से प्रमाणित नहीं है, पर उत्तराधिकार के लिए संघर्ष इतिहास प्रमाणित है।

चारुमित्रा एकांकी में बौद्धभिक्षु उपगुप्त "देवानामप्रिय प्रियदर्शी" कहकर सम्राट् अशोक को सम्बोधित करता है जो कि इतिहास सम्मत दीख पड़ता है। देवानांप्रिय और प्रियदर्शी का साथ-साथ उल्लेख अशोक के आठवें शिलालेख के गिरनार कालसी, धौली, जौगढ़, शाहबाजगढ़ी और मनसेरा स्थित शिलालेखों पर खुदे हैं। साथ ही यह भी पता चलता है कि अशोक के पूर्वज भी 'देवानामप्रिय' की संज्ञा से विभूषित थे।

---

१. अठवषाभिसितषा देवानां पियष पियदषिने लाजिने कलिंग्या विजित। दियढमाते पानष-तषहशे येतफा अपवढे शतषहपुमाते तत हते बहुतावंतके वा मटे।

चारुमित्रा के अंत में उपगुप्त की उपस्थिति और नेपथ्य से 'संघं शरणं गच्छामि ! धम्मं शरणं गच्छामि ! बुद्धं शरणं गच्छामि" कहकर एकांकीकार ने इस बात का आभास दिया है कि अशोक बौद्ध धर्म से प्रभावित था और दीक्षित भी। पर अशोक ने कलिंग युद्ध के पूर्व बौद्ध दीक्षा ग्रहण की थी या बाद में एकांकीकार ने इस विषय में अपने पात्रों को पूर्णतः मौन रक्खा। इतिहासकारों में मतभेद है कि अशोक कलिंग युद्ध के पूर्व बौद्ध दीक्षित हुआ था या बाद में। अशोक के बौद्ध ग्रहण करने के समय में मतभेद हो सकता है पर इस विषय में संदेह नहीं किया जा सकता कि कलिंग युद्ध ने अशोक को बहुत हद तक प्रभावित किया और इसके अनन्तर उसने कोई युद्ध नहीं किया; एकांकीकार ने प्रत्यक्ष रूप से अशोक के संवाद में इसका संकेत भी कर दिया है।

उपर्युक्त विवेचन को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित 'चारुमित्रा' में अशोक, तिष्यरक्षिता, उपगुप्त, को छोड़ चारुमित्रा, पुष्य, स्त्री और राजुक काल्पनिक पात्र हैं। यद्यपि कलिंग विजय का समय और कतिपय घटनाएँ इतिहास-संगत नहीं दीख पड़ती पर एकांकीकार ने बिखरे हुए ऐतिहासिक तथ्यों को एकत्र कर चारुमित्रा की रचना की है। जहाँ कहीं इतिहास मौन है, आलेख चुप है और तत्कालीन परिस्थितियों के विषय में कोई संकेत नहीं मिलता वहाँ एकांकीकार की कल्पना सजग हो उठी है। कार्य-समय-स्थल की अन्विति के निमित्त उसने कल्पना प्रयोग का अधिकार नहीं छोड़ा है। अतः चारुमित्रा ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर निर्मित एक ऐतिहासिक एकांकी है जिसमें डॉ० वर्मा की इन्द्रधनुषी कल्पना से उसके शिल्प में भी एक निखार आ गया है।

● ● ●

डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकियों में अभिनेय तत्त्व

अवधेश चन्द्र अवस्थी (शोध छात्र, हिन्दी विभाग)

●

पक्षी के परों एवं मानव के पैरों की भाँति ही नाटकों में अभिनेय तत्त्व गति प्रदान करनेवाला है। साहित्यिकता का गुण भी नाटक में महत्त्वपूर्ण होता है। उसे वहिष्कृत कर नाटक पारसी रंगमंच की शोभा बढ़ा सकता है; पर अभिनेयता के गुण से हीन नाटक पर-कटे सम्पाती की भाँति एकान्त, अविख्यात, प्रभावहीन पड़ा रहेगा। यही वह गुण है, जिसके कारण कहानीकार तथा उपन्यासकार नाटककार के समक्ष घुटने टेक जाते हैं।

प्रत्येक नाट्यकार अभिनेयता का गुण अपने नाटक में अपनी क्षमता के अनुरूप ही भरता है। रंगमंच तथा प्रेक्षक के मनोविज्ञान से अनभिज्ञ साहित्यकार को उपन्यास या कहानी लिख कर ही सन्तोषलाभ करना चाहिए, अन्यथा महान उपन्यासकार मुन्शी प्रेमचन्द की तरह नाटक लिख कर प्रतिभा का उथलापन प्रदर्शित करना उचित नहीं। रंगमंचीय ज्ञान के कारण ही श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र तथा श्रीउपेन्द्रनाथ 'अश्क' के नाटकों में अभिनय सम्बन्धी अन्तर लक्षित होता है। सेठ गोविन्ददास तथा पं० उदयशंकर भट्ट के नाटकों में भी इसी दुर्भाग्य के कारण अभि-नेय तत्त्व नहीं उभर सका है। इन नाट्यकारों ने मानसिक रंगमंच पर मनमाना अभिनय उप-स्थित किया है; जो बिना काट-छाँट किये सम्पूर्ण नाटक को भौतिक रंगमंच पर उपस्थित करने में बाधा उपस्थित करता है।

वर्मा जी अपने समय के अच्छे अभिनेता रहे हैं। अपने सह-यात्री श्री सुमित्रानन्दन 'पन्त' के साथ अनेक बार रंगमंच पर उतर चुके हैं। स्त्री पात्रों की कमी को पूरा करते हुए श्री 'पन्त' का नाटकीय विकास में यह योगदान सर्वथा सराहनीय है। विश्वविद्यालयों तथा हॉस्टल्स के उत्सवों पर अभिनीत होनेवाले एकांकी नाटकों के साथ ही वर्माजी की प्रतिभा के विकास का इतिहास जुड़ा हुआ है।

लेखन, निर्देशन तथा अभिनय सभी रूपों में आप अपने प्रारंभिक लेखन काल से ही अव-सरों की शोभा बढ़ाते रहे हैं। गुरुजनों का प्रोत्साहन तथा सहयोगियों और छात्रों का सहयोग उन्हें सदा से इस दिशा में गति प्रदान करता रहा है। वास्तव में, मानव मनोविज्ञान को पढ़ने का भी उन्हें यहीं अवसर प्राप्त हुआ। यह सब वातावरण उनके एकांकियों में अभिनेय तत्त्व उभा-रने में सहायक हुआ है।

उनका साहित्यकार मूलतः नाट्यकार ही है। उनकी भावमयी भाषा-शैली देखकर कुछ आलोचक उन्हें मुख्यतः कवि कहने लगते हैं। वास्तव में कवि तथा नाटककार का सम्बन्ध ही कुछ इस प्रकार का है। मेरी दृष्टि में तो कवि का प्रौढ़ या परिपक्व रूप ही नाटककार है। प्रसाद जी के सम्बन्ध में भी यही बात कही जाती है। उनकी कृति 'कामायनी' को भी कुछ

हेरफेर कर अभिनीत किया जा सकता है। निश्चय ही, इस महाकाव्य का वातावरण नाटकीय है। वर्मा जी की कृति 'एकलव्य' में अंगुष्ठदान प्रकरण और उस अवसर पर एकलव्य के माँ-बाप का अचानक उपस्थित होना नाटकीय नहीं तो क्या है ? 'कामायनी' तथा 'एकलव्य' दोनों का वस्तु संगठन नाटकीय है।

पाश्चात्य नाटकीय मान्यताओं रूपी धातु को भारतीयता की अग्नि में गलाकर व्यक्तिगत प्रतिभा के उपकरणों की सहायता से निर्मित क्षणों द्वारा बनाए गए एकांकी पिंजरों में भारतीय आत्मा रूपी शुकों को बन्द करने वाले एकांकीकारों में वर्मा जी का प्रमुख तथा आदि-स्थान रहा है। पाश्चात्य विद्वान मनोविज्ञान को अधिक महत्त्व देते हैं। वर्मा जी ने आचार्य शुक्ल प्रभृत विद्वानों की भाँति भारतीय रसवाद के थाले में पाश्चात्य मनोविज्ञान के पौधे को लगाकर द्वन्द्व रूपी फल को प्राप्त किया है। द्वन्द्व के भी वाह्य रूप की अपेक्षा आन्तरिक रूप को ही महत्त्व दिया है। ठीक भी है, रस फल के आन्तरिक भाग में ही सन्निहित रहता है। वह एकांकी में छोटी-सी बात पर द्वन्द्व उत्पन्न करके समुचित विकास करते हुए उससे भी छोटी बात पर समाप्त कर देते हैं। पारिवारिक स्त्री पुरुष के विरोधों तथा मान-मनौवल में इस प्रकार के द्वंद्वों का उन्हें पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ है। यह द्वन्द्व का ही गुण है जो नाटकों के पात्रों में क्रियाशीलता का गुण लाता है।

वर्मा जी के एकांकी नाटकों में अभिनेय तत्त्व का गुण उभारने में संकलनत्रय का भी विशेष महत्त्व है। सेठ गोविन्ददास संकलन द्वय तथा पं०उदयशंकर भट्ट नाटकों के लिये इसकी आवश्यकता ही नहीं समझते हैं। भट्ट जी के नाटकों में अभिनेयता की कमी का एक कारण यह भी है। प्रेक्षकों की एक रसता को बनाए रखने के लिये तथा नाटकों को रजत तथा प्रसारण पट से पृथक करने के लिये संकलन त्रय आवश्यक है। कोई अतिभावान नाटककार इसका उल्लंघन करके भी अच्छा अभिनेय नाटक लिख सकता है।

अपने एकांकी नाटक के संगठन के लिये ही वह उसमें एक दृश्य की ही सम्भावना रखते हैं। कोई वस्तु दो-तीन दृश्यों में उपस्थित होकर कभी-कभी अधिक प्रभाव उत्पन्न करने वाली बन जाती है; पर दो तीन दृश्यों में उपस्थित करने के लिये ही अधिक दृश्य रखना नाटकीय एकता को भ्रष्ट कर देना है। सेठ जी का एकांकी, 'अधिकारलिप्सा' जिसमें राजा साहब की भूमिका मैं निभा चुका हूँ, अपने छोटे रूप में ही तीन दृश्य रखता है। अभी प्रेक्षक पात्रों से परिचय भी नहीं हो पाते हैं कि दृश्य परिवर्तित कर दिया जाता है। मध्य दृश्य में काफी भीड़ है। वहीं बीमार है तथा वहीं डॉक्टर, वैद्य तथा हकीम परामर्श करते हैं। बातचीत में बीमार से वह सम्बन्ध भी बनाये हैं, अतः बीच में पर्दा उठाकर मंच को बाँटा भी नहीं जा सकता है। अन्त में एक छोटी सी बात जो मात्र सूच्य है, एक दृश्य में उपस्थित की गयी है। इस प्रकार सब मिलाकर यह एकांकी दर्शकों को अधिक प्रभावित नहीं कर सका था।

वर्मा जी के नाटकों में अभिनेयता को उभारने वाला तन्त्र कौतूहल भी है। वे प्रारंभ से अन्त तक बड़े ही कौशल के साथ इसे संजोये रखते हैं और अन्त में प्रेक्षकों के अनुमान के इतने हल निकालकर उनके अनुराग को जीत लेते हैं।

पात्रों के बारे में उनका विचार है कि एकांकी में पाँच-छः पात्र ही हों। केवल मनोरंजनार्थ पात्रों की भीड़ के लिये एकांकी में गुंजायस नहीं रहती है। पात्र एक दूसरे का चरित्रोद्घाटन

करते हुए सर्वथा क्रियाशील रहें। पात्रों की भाँति ही वहाँ एक भी शब्द बेकार नहीं होना। चाहिए। क्योंकि एकांकी की गति अनार छूटने की तरह होती है। गति पकड़कर चिनगारियाँ निकलना शुरू हुई तो शुर्र....अ की आवाज बढ़ती ही जाती है और एक बिन्दु पर आकर एकदम समाप्त हो जाती है, तब एक भी चिनगारी नहीं निकलती।

एकांकी नाटकों को अभिनेयता का गुण प्रदान करने के लिये ही वह यथेष्ट रंग सूचनाएँ भी देते हैं। मंच, प्रकाश, वाद्य निर्देशकों के अतिरिक्त अभिनेता के लिये वेशभूषा तथा कायिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक अभिनयों के लिये भी निर्देश दे देते हैं। कक्षा में चित्रों के माध्यम से पढ़ाने की आदत के कारण ही वह बहुत बार तो रंगमंच का चित्र भी उपस्थित कर देते हैं। एकांकी के छोटे परिवेश में जो संघर्ष तथा कौतूहल उत्पन्न किया जाता है, गति उसमें बाधा उपस्थित कर सकते हैं, इसीलिये कवि होकर भी वह एकांकियों में इसका सम्वरण ही रखते हैं। स्वगतों का प्रयोग भी नाटकों में बहुचर्चित रहा है। वह नाटकीयता को न भंग करते हुए ही इसका प्रयोग करते हैं।

आरंभ-अन्त के साथ ही सम्वाद नाटकों में अभिनेयता को उभारने में विशेष सहायक होते हैं। सम्वादों का प्रयोग नाटक में इस रूप में होना चाहिए कि अभिनेता सभी प्रकार के अभिनयों को उसी में प्राप्त करे। छोटे-छोटे, गतिशील तथा प्रभावशाली सम्वाद जो कोरे वाद-विवाद से अलग हों, नाटकीयता को उभारते हैं। वर्मा जी के नाटकों का मैंने स्वयं अभिनय किया है। सम्वादों से भी मुझे अभिनय की मुद्राओं का ज्ञान होता रहा है, कभी निर्देशन का सहारा नहीं लिया। अन्त में, मैं कहूँगा कि पात्रानुकूल भाषा की स्वाभाविकता को रखते हुए आकस्मिकता का गुण उनके एकांकियों को रंगमंचानुकूल बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है। वह दो पात्रों के द्वारा किसी तीसरे पात्र का चरित्रोद्घाटन कर दर्शकों में उत्सुकता बढ़ा देते हैं और तब सहसा उस पात्र को लाकर करतल ध्वनि से प्रेक्षाभवन को भरने में वह सिद्धहस्त हैं। 'पानीपत की हार' में नाना फड़नवीस, 'चक्कर का चक्कर' में सेठ जी तथा 'पृथ्वी का स्वर्ग' में दुलीचन्द सागर की लहर की भाँति उपस्थित होते हैं जो दर्शको को आलोड़ित विलोड़ित कर सहसा विलीन हो जाते हैं। उनके एकांकी नाटकों के बारे में प्रो० रामचरण 'महेन्द्र' लिखते हैं—

"उनके नाटकों का रंगमंच पर अभिनय सफलतापूर्वक हो सकता है। तत्कालीन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर पात्रों के चरित्र में जो मनोवैज्ञानिक पुट दिया गया है। वह इन नाटकों को स्थायित्व प्रदान करने में बहुत बड़ा तत्व बन गया है। अभिनय की दृष्टि से आपने पात्रों के मुख से उनकी भाषा नहीं छीनीं है, वरन् अत्यन्त स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत करके, जो पात्र जिस वातावरण में श्वास लेता है उसी वातावरण के अनुसार भाषा मनोवैज्ञानिक आधार, व्यवहार संघर्ष इत्यादि की व्यंजना की है।"

●●●

डॉ० वर्मा के एकांकियों के संदर्भ में उर्दू के शब्द और संस्कार

जाफ़र रज़ा उर्दू विभाग, प्रयाग विश्व विद्यालय

●

उर्दू और हिन्दी की पारस्परिक सापेक्षता के सम्बन्ध में अक्सर भ्रांतियाँ उत्पन्न हुई हैं। उर्दू के संस्कार को विदेशी घोषित करने के बाद उसके शब्दसमूह और विचारधाराओं की समस्त निधि अलाभदायक कही जा सकती है। यह बात सदैव विवाद-ग्रस्त रही है कि कोई भी साहित्य किन सीमाओं तक दूसरे साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करे। देशी मूल्यों के समर्थक साधारणतया यह तर्क देते हैं कि दूसरों के रंग में ज्यादा रंगा जाना अपने आबो-रौग़न की फबन माँद कर देता है। उर्दू के संस्कार को भारतीय न मानने का एक तर्क यह भी है कि इसके मिज़ाज की सूक्ष्मता, कोमलता, नज़ाकत भारतीय देहातों में उपजने वाला भोपालान, अल्हड़पन, सादगी का वह रूप प्रस्तुत करने में असमर्थ है। इस तर्क के आधार पर भोंडे तरीके से उर्दू को बाजारू भाषा कह दिया जाता है जिसमें स्नेह, प्रेम, आदर के बजाय ऊपरी आकर्षण को अधिक महत्व प्राप्त है और यूँ अक्सर रंगीन मिज़ाजों को गृहस्थ महिलाओं के बजाय सभा की परियों से अधिक रूचि होती है। अतः हिन्दी से ज्यादा उर्दू शाएरी अपील करती है। इस तर्क का अधिक प्रबल रूप वह है जिसे लक्ष्मीकान्त वर्मा ने अधिक आधुनिक बनाकर प्रस्तुत किया है : " उर्दू सामन्तशाही प्रश्रय में शर्मीली, लजीली और रंगीन है। हिन्दी उपेक्षा में विकसित होने वाली अक्खड़, सुधक्कड़ और विद्रोह की अग्नि में सुलगती हुई भाषा है। यही कारण है कि नाज़ों में पलने वाली उर्दू भाषा जब कभी भी हिन्दी के मिज़ाज के निकट आती है तो बिल्कुल भदेस हो जाती है, हल्की और बेमानी हो जाती है।"[१]

यह साहित्यिक इतिहास का विषय है कि उर्दू को 'नाज़ों में पलने' को अवसर भारत की अन्य भाषाओं के मुक़ाबिले में अधिक मिला है या कम, परन्तु इसमें भ्रम नहीं कि उपरोक्त विचारधारा ही लगभग उर्दू और हिन्दी की पृथकता की पृष्ठभूमि में क्रियाशील रही है और इसे मुग़ल-साम्राज्य की पालक अथवा एक विशेष सम्प्रदाय की भाषा कहा गया है। उर्दू और हिन्दी के परस्पर सम्बन्ध और शब्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में कई प्रकार की विचारधाराएँ प्रचलित रही हैं। एक विचारधारा तो वही है जिसका ज़िक्र ऊपर की पंक्तियों में किया जा चुका। इसमें कुछ लोग उर्दू को 'अहितकर' घोषित करके उससे अलग हो जाने की दीक्षा दे हैं और कुछ लोग इसे भावी भारत के लिए इसलिए आवश्यक कहते हैं कि इसमें विशेष प्रकार के समाज और संस्कार का प्रतिबिम्ब उन्हें दीखता है। इसके अलावा ऐसे साहित्यकार भी है जो उर्दू शब्द समूह और उर्दू संस्कृति को हिन्दी के लिए आवश्यक स्रोत मानते हैं। इस सम्बन्ध

---

१. मासिक, 'डगर' : मार्च, १९६५ (काव्यचर्चा स्तम्भ)

में दो बयान उदाहरणार्थ दिये जाते हैः—डॉ० भगवतशरण उपाध्याय एक पत्र में लिखते है—

"हिन्दी को ज़बान की दृष्टि से उर्दू से बहुत कुछ सीखना है। उर्दू की सादगी और उसकी नज़ाकत अगर हिन्दी को मिल जाय और हिन्दी वाले समझ लें कि तत्सम से कहीं बड़ी शक्ति तदभव और उन अरबी, फ़ारसी के शब्दों की है, जो हमारी ज़बान की जान बन गये हैं, तो विशेषकर हिन्दी गद्य की खूबसूरती को चार चाँद लग जाँय।"[1]

अमृतराय अपनी कृतियों में हिन्दी और उर्दू को भारतीय संस्कृति की हिन्दू और मुस्लिम नाम की दो पृथक् इकाइयों में विभाजन के विरोधी रहे हैं, उर्दू वालों से उनका आग्रह है कि वह मिली-जुली भाषा का प्रयोग करें और हिन्दी के प्रति उनका यह निर्णय यह है कि——

"यही सच्ची हिन्दी है, जो अपने शब्दों और मुहावरों के प्रयोग में किसी तरह का छूत-छात नहीं बरतती, हर प्रकार की सांप्रदायिकता से मुक्त है और अपनी तद्भव प्रकृति को समझकर, हिन्दी-उर्दू के, समाज के उच्चवर्ग और निम्नवर्ग की भाषा के, तथाकथित गँवाइ और शहरी शब्द प्रयोगों के और ऐसे ही दूसरे सब झूठे चौखटे तोड़-ताड़ कर सहज भाव से....विचरती है।"[1]

इन दोनों बयानों में मूलरूप से हिन्दी में उर्दू-शब्दों के प्रयोग पर बल दिया गया है और इसे एक स्वस्थ प्रेरणा के रूप में ग्रहण करने की आग्रह है। इस विचारधारा के समर्थकों को बहुमत प्राप्त नहीं है और स्वातंत्र्योत्तर देश के विभाजन से उर्दू और हिन्दी के बारे में विषमता उत्पन्न हुई है, उसकी वजह से यह कहना कठिन भी है कि सम्भवतः भविष्य में इसका क्या रूप होगा। फिर इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि उर्दू शब्द और उर्दू संस्कृति से हिन्दी में दिलचस्पी बढ़ रही है और धीरे-धीरे कथा साहित्य और आधुनिक कविताओं में इसके प्रयोग व्यापक रूप में हो रहे हैं, जो निश्चय ही एक आशाप्रद भविष्य की ओर संकेत करते हैं।

डॉ० रामकुमार वर्मा हिन्दी के उन विशिष्ट साहित्यकारों में हैं, जो उर्दू को भारत की सभ्यता और संस्कृति के आलेखन का एक आवश्यक माध्यम मानते हैं। इसके प्राचीन और आधुनिक साहित्य पर नजर डालने के बाद वह निम्नलिखित फ़ैसला देते हैं——

"साहित्य के माध्यम से हिन्दी प्रदेश की संस्कृतिक गतिविधि का सम्यक् अनुशीलन अपना एक वैशिष्टय रखता है। जिस प्रकार हिन्दी-काव्य युग जीवन की अभिव्यक्ति में सक्षम रहा है, उसी प्रकार उर्दू काव्य ने भी परम्परा से भारतीय जीवन को विविध संदर्भों एवं स्तरों पर वाणी प्रदान की है। आधुनिक युग की राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधि को उर्दू कवियों ने अपनी अनुभूति एवं दृष्टि का विलक्षण संयोग प्रदान किया है। आधुनिक चेतना को वहन करने वाले भारतीय साहित्यकारों के बीच उर्दू साहित्यकार का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं।"[1]

इस विश्वास के साहित्यकार के लिए उर्दू विदेशी भाषा नहीं है। न उसके संस्कार को वह भारतीय संस्कार से अलग मानता है और न उसके मिज़ाज की सूक्ष्मता, कोमलता, नज़ाकत का 'ग्रामीण आधार' न पाकर उसे क्रोध ही आता है। वह उर्दू को हिन्दी की एक शैली

---

१. लेखक के नाम——पत्र दिनांक ३१-१०-६३.

२. 'हैमलेट' की भूमिका, पृ० १०-११.

३. 'आधुनिक उर्दू काव्य साहित्य' का परिचय

भी नहीं मानता बल्कि उसकी अलग साहित्यिक स्थिति को स्वीकार करते हुए उसकी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है। उसकी दृष्टि में साहित्य की उपयोगिता की ओर भी संकेत हैं और आधुनिक चेतना के वहन करने के लिए भाषा को क्षेत्रीय बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करने तथा भारतीय जीवन के नेतृत्व के लिए उसके वैभवशाली अतीत से भी सम्बद्ध रहने की अभिलाषा है। डॉ० रामकुमार वर्मा के विचार बहुत स्पष्ट हैं। इन विचारों का आलेखन उनकी आलोचनात्मक कृतियों के अतिरिक्त कविताओं और विशेषतया एकांकियों में भी मिलता है। डॉ० रामकुमार वर्मा एक बड़े कलाकार हैं, जिसमें जीवन अपनी अनेकरूपता के साथ विद्यमान है। उर्दू से उनका सम्बन्ध भी स्पष्ट है। उन्होंने कायस्थ-परिवार में जन्म लेने के कारण उर्दू को बहुत निकट से देखा, समझा और व्यवहृत किया है। इस संक्षिप्त लेख में इसकी गुंजाइश नहीं है कि उनके इस पक्ष को सविस्तार सामने रखा जा सके। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि डॉ०रामकुमार वर्मा को साहित्य की विरासत प्रेमचन्द से भी मिली थी और प्रेमचन्द से निजी और परिवारिक सम्बन्ध के कारण उर्दू की मुहब्बत भी उनसे भी मिली होगी। उर्दू-दोस्तों से डॉ० रामकुमार वर्मा के सम्बन्ध अत्यन्त मैत्री पूर्ण रहे हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय के उर्दू प्राध्यापकों में डॉ० ताराचन्द, डॉ० एजाज़ हुसैन, प्रो० मसीहुज्ज़माँ आदि के अतिरिक्त नगर और विश्वविद्यालय के अन्य उर्दू-प्रेमियों, जैसे--सर तेज बहादुर सप्रू, राधेनाथ कौल 'गुल्शन', 'फ़िराक' गोरखपुरी, शिवप्रसाद सिन्हा, कमलकान्त वर्मा आदि से मिलने-जुलने और विचार विमर्श ने उन्हें उर्दू की ओर आकृष्ट किया होगा जिसके स्पष्ट चिन्ह उनकी कृतियों में दिखाई पड़ते हैं।

डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकियों में उर्दू शब्दों का प्रयोग यथोचित दिखाई पड़ता है। विशेषकर 'पृथ्वीराज की आँखें', 'रेशमी टाई' और 'औरंगज़ेब की आखिरी रात' में उन्होंने उर्दू और हिन्दी की 'मूलभूत एकता का उद्घाटन' किया है। लेकिन इस सम्बन्ध में उन्होंने वह तरीका अखतियार नहीं किया है जो उर्दू और हिन्दी को मिलाकर 'हिन्दुस्तानी' के झण्डे के नीचे खड़ा करता है। डॉ० वर्मा का विचार है कि भाषाओं को अपनी विशेषताओं के साथ उन्नति करना चाहिए। सम्भवतः इसी कारण वश उन्होंने औरंगज़ेब की जवान से यह लफ्ज़ कहलाए हैं :

> "हम ज़िन्दगी में अपने साथ कुछ नहीं लाये लेकिन अपने साथ गुनाहों का कारवाँ लिए जा रहे हैं। तुम उखूवत, अम्न व एतयाद पर खयाल रखना......यह मसाल दुनिया हे च है हमारी दुनिया ने खुदा का नूर नहीं देखा....जिस्म से गर्मी निकल गयी है, अब कोयले का ढेर बाकी है।"[1]

इस प्रकार की भाषा को कोई उर्दू भी कह सकता है! लेकिन इसके मानी यँह कभी नहीं होते कि डॉ० रामकुमार वर्मा ने प्रत्येक स्थान पर इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है। उनके एकांकी की भाषा साधारणतः उनकी आलोचना की भाषा से प्रेरणा ग्रहण करती है लेकिन चूँकि घटनाओं और वातावरण के चित्रण में उनको अनेक प्रकार के पात्रों को बरतना पड़ता है, अतः उन्होंने अनेक स्थानों पर इच्छानुसार विभिन्न प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। राम-

---

१. डॉ० रामकुमार वर्मा--चार ऐतिहासिक एकांकी, पृष्ठ १२७,

कुमार वर्मा ने जिन जगहों पर उर्दू शब्दों का अधिक प्रयोग किया है, वहाँ भी भाषा की विशिष्टता और उनकी शैली स्पष्ट रहती है। कुछ उदाहरण देख लीजिये :—

"राजपूत, जाट, मराठे और सिख आज भी आपसे लोहा नहीं ले सकते......

जो दवा वह दे गये है वह उन्हें चखाई गयी थी......

इस दवा में जायका के साथ तुर्शी भी है......

ज़िन्दगी भर गुनाहों का बोझ उठाया है तो मरते वक्त उस का तज़किरा भी न उठाए"...

वह चारपाई पर तस्वीरे-संग की तरह लेटे हुए है......

ओह उसने फिर चीख भरी......"

इसी प्रकार की बहुत सी पंक्तियाँ उनके अनेक एकांकियों में आपको मिल जायेंगीं, जिनमें शब्दों का क्रम उर्दू की बामहाविरा जबान से अलग है। यह कहने का उद्देश्य नहीं है कि ज़बान का बामहाविरा होना ज़रूरी है बल्कि देखने की बात यह है कि डॉ० वर्मा ने इन महाविरों को हिन्दी रूप में बरता है। डॉ० वर्मा भाषा के निजी संस्कार को बहुत महत्त्व देते हैं। अतएव उन्होंने औरंगज़ेब द्वारा 'मा बदौलत' और 'ईं जानि' का प्रयोग कराने के बजाय 'हम' या 'मैं' ही लिखा है। इस प्रयोग द्वारा शायद उन्होंने यह भी कहने की चेष्टा की हैं कि भाषा को उसके स्वभाव से अलग ले जाना उसके प्रति भ्रान्ति उत्पन्न करना है। उर्दू की पूँजी हिन्दी के लिए काफ़ी मूल्यवान निधि है किन्तु लिपि बदल कर इसे अपनाया नहीं जा सकता बल्कि उसके संस्कारों को आत्मसात करने के लिए एक विशेष संकल्प की आवश्यकता है। डॉ० रामकुमार वर्मा का यह मार्ग प्रदर्शन भी भावी लेखकों के सम्मुख एक चुनौती के रूप में है!

● ● ●
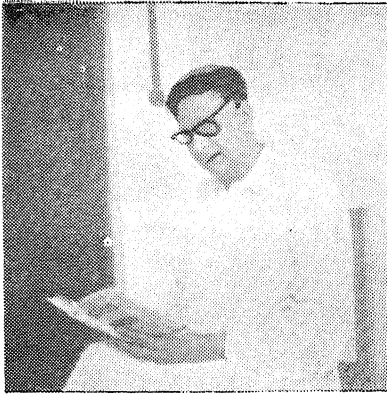
डॉ० वर्मा अध्ययन की मुद्रा में
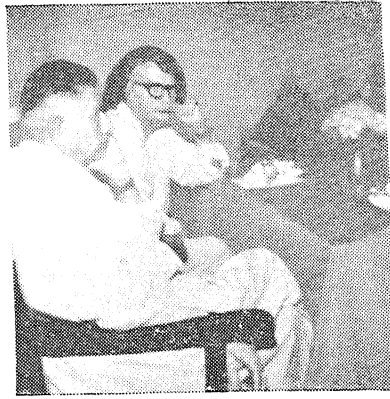
डॉ० वर्मा एक गोष्ठी में कविवर सुमित्रानंदन पंत के साथ
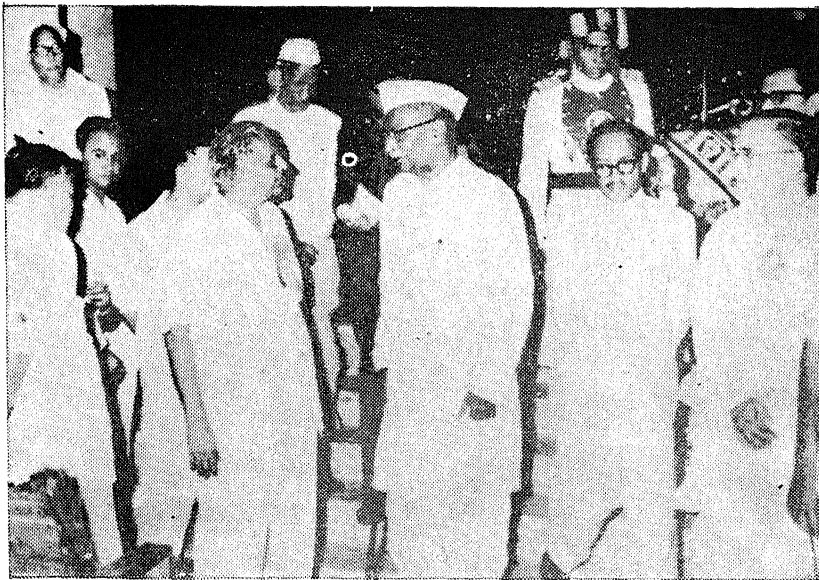
डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० विश्वनाथ प्रसाद, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ० नगेन्द्र आदि हिन्दी के मान्य विद्वानों के बीच स्वर्गीय डॉ० राजेन्द्र प्रसाद से वार्ता करते हुए

प्रयाग विश्वविद्यालय में डॉ० रामकुमार जी के निर्देशन में सम्पन्न शोधकार्य

डी० लिट्० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबंध—

●

१. बीसवीं शताब्दी में हिन्दी साहित्य की संस्कृतिक पृष्ठभूमि—डॉ० भोलानाथ 'भ्रमर'—सन् १९६६

२. कृष्णकाव्य में रसानुभूति और सौन्दर्यबोध—(परीक्षार्थ प्रस्तुत) डॉ० कुमारी मीरा-श्रीवास्तव

डी० फिल० की उपाधि के लिए शोध स्वीकृत प्रबंध—

१. हिन्दी काव्य में रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ (१६७५ ई० तक)—डॉ० ब्रजमोहन गुप्त, सन् १९४६ ई०

२. हिन्दी साहित्य के भक्ति एवं रीतिकाल में प्रकृति और काव्य—डॉ० रघुवंश, सन् १९४८ ई०

३. हिन्दी का अंग्रेजी भाषा और साहित्य पर प्रभाव—डॉ० विश्वनाथ मिश्र, सन् १९५० ई०

४. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का निवास—डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल, सन् १९५२ ई०

५. हिन्दी नीति साहित्य—डॉ० भोलानाथ तिवारी, सन् १९५६ ई०

६. हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद—डॉ० वीरेन्द्रसिंह, सन् १९६० ई०

७. मध्यकालीन हिन्दी सन्त साहित्य की साधना पद्धति—डॉ० केशनीप्रसाद चौरसिया, सन् १९६१ ई०

८. मध्ययुगीन कृष्ण भक्तिधारा और चैतन्य सम्प्रदाय—डॉ० मीरा श्रीवास्तव, १९६१ ई०

९. हिन्दी सगुण और निर्गुण भक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० आशागुप्त, सन् १९६२ ई०

१०. रामचरित मानस तथा भानुभक्त की रामायण का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० सूर्यदेव सिंह प्रभाकर सन् १९६४ ई०

११. हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य (१७००—१९०० ई०)—डॉ० राजेन्द्रकुमार, सन् १९६५ ई०

१२. हिन्दी नाटकों में हास्यतत्त्व—डॉ० शान्तारानी, सन् १९६५ ई०

१३. भारतेंदुयुगीन हिन्दी साहित्य में लोकतत्त्व—डॉ० विमलेश कान्ति, सन् १९६५ ई०

१४. हिन्दी महाकाव्यों में नायक का विकास— डॉ० चन्द्रमोहिनी—(स्वीकृत)

डॉ० वर्मा के वर्तमान शोध छात्र

डी० लिट् की उपाधि के लिए—

१. हिन्दी के तत्त्वदर्शी कवियों की विचारधाराओं का आलोचनात्मक अध्ययन— श्री योगध्यान आहूजा

२. हिन्दी की मध्यकालीन काव्य-भाषा —डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी

३. नाथ-दर्शन —डॉ० केशवचंद्र सिन्हा

४. दादू : व्यक्तित्व और कृतित्व —डॉ० केशनीप्रसाद चौरसिया

५. लीलातत्त्व और मध्ययुगीन हिन्दी भक्तिकाव्य —डॉ० राजेन्द्र कुमार

६. मैथिली शरण गुप्त —डॉ० शशि अग्रवाल

७. कृष्ण-काव्य का प्रतीक दर्शन —डॉ० वीरेन्द्र सिंह

८. हिन्दी काव्य में देवी-देवताओं का संदर्भ— और स्वरूप विकास —डॉ० विमलेश कान्ति

डी० फिल० की उपाधि के लिए—

१. मीरा : जीवन और कृतित्व का अध्ययन— हरेन्द्रप्रताप सिन्हा

२. गरीबदास : जीवन और कृतित्व का अध्ययन—प्रह्लाददास अग्रवाल

३. संस्कृत महाकाव्यों का हिन्दी महाकाव्यों पर प्रभाव—कु० कान्ति खरे

४. नाथ सम्प्रदाय और हिन्दी भक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन—गंगाप्रसाद श्रीवास्तव

५. हिन्दी नाटच शिल्प का विकास—इन्द्रसेन वर्मा

६. संत सुन्दरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन—शान्तिस्वरूप शर्मा

७. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—कु० आशा शर्मा

८. उन्नीसवीं शताब्दी का हिन्दी उपन्यास साहित्य—शरतचन्द्र अग्रवाल

९. आधुनिक हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि—रामदास गुप्त

१०. हिन्दी काव्य में व्यंजना वृति का विवेचन—अविनाशचन्द्र श्रीवास्तव

११. अष्टछाप की गोपियों का मनोवैज्ञानिक तथा साहित्यिक अध्ययन—श्रीमती शान्ति निगम

१२. संस्कृत और आधुनिक हिन्दी नाटच शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन—रामचंद्र श्रीवास्तव

१३. हिन्दी और बंगला नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन—कन्हैयालाल श्रीवास्तव

१४. आधुनिक हिन्दी काव्य में नवीन प्रवृत्तियाँ—ऐगन्स कोवास्का

१५. हिन्दी उपन्यास में मध्यवर्ग शान्तिकांत अग्रवाल

१६. प्रेमचंद साहित्य में व्यक्ति और समाज —कु० रक्षा भल्ला

१७. युग के संदर्भ में माधव शुक्ल के जीवन और कृतित्व का अध्ययन—कु० मधु शुक्ल

१८. हिन्दी रंगमंच का अध्ययन (सन् १८५०-१९५० ई०)—यज्ञदत्त शर्मा

१९. हिन्दी और उर्दू कविता का तुलनात्मक अध्ययन—त्रिलोकीनाथ

२०. मध्ययुगीन भक्ति साहित्य के संदर्भ में नाम साधना का तात्विक अध्ययन—मालती तिवारी

२१. हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों का शिल्प विधान—हर्षवर्धन

२२. आधुनिक हिन्दी काव्य में क्रान्ति की विचारधाराएँ (१८५०-१९५० ई०)— कु० उर्मिला जैन

२३. प्रेमचंद के साहित्य में भारतीय ग्राम और उनकी समस्याएँ—कु० इभा गुप्त

२४. संत कबीर और तेलुगु संतकवि वेमन एक तुलनात्मक अध्ययन––कोटेश्वर राव
२५. आधुनिक गीतिकाव्य की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि (१९ से १९५० ई० तक)––
कु० कान्ति भार्गव
२६. आधुनिक हिन्दी खड़ी बोली काव्य में ऐतिहासिक संदर्भों का अध्ययन (१९००––१९६० तक) ––श्रीमती निर्मल
२७. द्विवेदीयुगीन खड़ी बोली और हिन्दी काव्य धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन––
रोशनलाल आइमा
२८. प्रसाद साहित्य में सांस्कृतिक तत्त्व–– जगदीश नारायण श्रीवास्तव
२९. मैथिलीशरण गुप्त की काव्यभाषा का अध्ययन––राधा देवी श्रीवास्तव
३०. वाल्मीकि, कम्ब और तुलसी के दार्शनिक तत्त्वों––
का तुलनात्मक अध्ययन बी० एस० रंगनाथन
३१. अभिनेयता की दृष्टि से हिन्दी नाटकों का अध्ययन ––अवधेशचंद्र अवस्थी
३२. सामाजिक परिवर्तन और उसका आधुनिक हिन्दी साहित्य पर प्रभाव––
विश्वनाथ प्रसाद खत्री

प्रयाग विश्व विद्यालय के अतिरिक्त मास्को, आगरा, राजस्थान, बिहार, पटना, भागलपुर, सागर, राँची, ग्वालियर, इंदौर, रायपुर, आदि विश्वविद्यालयों के अनेक छात्र डॉ० रामकुमार वर्मा के निर्देशन में डी० लिट्, डी० फिल्० और पी-एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त कर चुके हैं तथा अनेक छात्र उपाधि प्राप्त के लिए अनुसंधान कार्य कर रहे हैं। पूर्ण सूचनाओं के अभाव में हम तत्सम्बंधी विवरण नहीं दे पा रहे हैं।

• • •

डॉ० रामकुमार वर्मा की कृतियों का क्रम-विकास

●

रचना काल	कृति का नाम	रचना शैली
१९२२	सुखद सम्मिलन	गल्प
१९२३	वीर हमीर	खंड काव्य
१९२७	कुल ललना	कविता
१९२९	चित्तौड़ की चिता	खंड काव्य
१९३०	अभिशाप	कविता
”	अजंलि	कविता
”	साहित्य समालोचना	आलोचना
१९३१	चितवन	कविता
”	कबीर का रहस्यवाद	शोध निबन्ध
१९३२	निशीथ	खंड काव्य
”	हिन्दी गीति काव्य	संग्रह
”	कबीर पदावली	संग्रह
१९३३	रुपराशि	कविता
१९३५	चित्ररेखा	कविता
१९३६	पृथ्वीराज की आँखें	एकांकी नाटक (६)
१९३७	चन्द्र किरण	कविता
१९३८ ”	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	शोध प्रबन्ध
१९३९	आधुनिक कवि भाग ३	कविता
”	आधुनिक हिन्दी काव्य संग्रह	”
१९४१	हिमहास	गद्य-काव्य
”	रेशमी टाई	एकांकी नाटक
१९४२	चारुमित्र	एकांकी नाटक
”	गद्य परिचय	संग्रह
१९४५	शिवाजी	एकांकी नाटक
”	जौहर	कविता

रचना काल	कृति का नाम	रचना शैली
१९४७	विभूति	एकांकी नाटक
"	सप्त किरण	एकांकी नाटक
"	साहित्य-दर्शन	आलोचना
"	हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक—	शोध निबन्ध
"	अनुशीलन	
"	संत कबीर	शोध पाठ और प्रबन्ध
"	संत कबीर	संग्रह
"	सरस एकांकी नाटक	संग्रह
सन् १९४०	सरस एकांकी नाटक	संग्रह
१९४८	रूप रंग	एकांकी नाटक
"	संकेत	कविता
१९४९	आकाश गंगा	कविता
"	कौमुदी महोत्सव	एकांकी नाटक
"	आधुनिक काव्य संग्रह	संग्रह
१९५०	ध्रुवतारिका	एकांकी नाटक
"	रम्य रास	एकांकी संग्रह
"	काव्य कलश	संग्रह
"	हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	आलोचना
१९५१	ऋतुराज	एकांकी नाटक
१९५२	रजत रश्मि	एकांकी नाटक
"	एकांकी कला	आलोचना
१९५३	दीप दान	एकांकी नाटक
१९५४	सत्य का स्वप्न	चित्र रुपअ
१९५५	रिमझिम	एकांकी नाटक
"	बापू	एकांकी नाटक
"	इन्द्रधनुष	एकांकी नाटक
"	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आलोचना
"	काव्याञ्जलि	संग्रह
"	गद्य गौरव	संग्रह
१९५६	साहित्य शास्त्र	खोज निबन्ध
"	काव्य कुसुम	संग्रह
१९५७	अनुशीलन	आलोचना
"	विजय पर्व	नाटक
"	पांचजन्य	एकांकी संग्रह (५)
१९५८	कला और कृपाण	नाटक

रचना काल	कृति का नाम	रचना शैली
"	साहित्यिक एकांकी	एकांकी नाटक (८)
"	एकलव्य	महाकाव्य
१९६४	कलाकाल	इतिहास (प्रेम में)
१९६५	मयूर पंख	एकांकी संग्रह
१९६५	साहित्य चिंतन	निबंध संग्रह
१९६६	ये गजरे तारों वाले	काव्य-संग्रह प्रथम खंड प्रकाशित तथा द्वितीय (प्रेस में)

●●●

संकलन

निबंध

'जिसे विज्ञान नहीं छू सका'

कवि की करुणा

●

जब भगवान वामन ने विराट रूप धारण कर दो चरणों से समस्त भू-मंडल और स्वर्ग नाप लिया तो तीसरे चरण के लिए स्थान नहीं रहा। दानवीर महाराज बलि ने भगवान का तीसरा चरण अपने मस्तक पर धारण किया। विषम परिस्थितियों में भी वे अपने सत्य में स्थिर रहे। भगवान ने उन्हें स्वर्ग-लोक से भी श्रेष्ठ विश्वकर्मा के बनाए हुए सुतल लोक का अधिपति बनाया और स्वयं द्वारपाल बनकर रहे। विजय भगवान की नहीं महाराजा बलि की रही। भगवान याचक बने और द्वारपाल भी किन्तु महाराजा बलि महाराजा ही बने रहे। दानवीरता और सत्य उनका आज भी स्थिर है। इसी प्रकार विज्ञान आज वामन से विराट वन गया है। उसने अपने दो चरणों से भूमण्डल और अंतरिक्ष नाप लिया है। एक चन्द्र राकेट चन्द्रमा में पहुँच गया है और दूसरा शुक्र की ओर अग्रसर हो रहा है। विराट् विज्ञान का तीसरा चरण मानवता के मस्तक पर स्थिर होने जा रहा है। किन्तु मानवता या मानस आज भी अपनी दानवीरता और सत्य में दृढ़ है। उसका हृदय आज भी मानव कल्याण की भावनाओं से सिक्त है। उदारता और करुणा उसके क्रोड़ में उसी प्रकार निवास करती है। फूल भले ही मुरझा जाय लेकिन सुगन्धि जब तक वायु में वर्तमान है वह कभी नहीं मुरझाती। सुरभि के खंड नहीं हो सकते इसी भाँति करुणा भी टुकड़ों में नहीं बाँटी जा सकती। वह अखंड है, अमर है।

मानव-संस्कृति का विकास शताब्दियों से दो शक्तियों से प्रेरित रहा है। बुद्धितत्त्व और भावना तत्व। मानव ने बुद्धितत्व से जीवन को उपयोगितावाद के तराजू से तौला है। उसके द्वारा उसने विज्ञान की नींव डाली। प्रकृति पर विजय प्राप्त कर अनेकानेक आविष्कार किये, जिनसे मानव जीवन सुख और समृद्धि का उपभोग कर सके। जीवन के स्वाभाविक विकास में यंत्रों द्वारा सहायता ली गई और जीवन जैसे कृत्रिम यन्त्रों का सहोदर बनकर काल और परिस्थिति का शासक बनने का स्वप्न देखने लगा। शासक बनने के मोह में स्वार्थ और तृष्णा का जीवन पर आधिपत्य हुआ और नीति और सिद्धान्त के मस्तिष्क दो यंत्र के रूप में परिणत कर दिया हमारे साहित्य ने जब जीवन से साक्षात्कार किया तब हमने वेदों की वाणी सुनी।

विविध प्रकार के जीवन और जीवनगत विचारों ने ऋक् यजुर साम और अथर्व की सृष्टि की किन्तु जब हमने अपने मस्तिष्क को सक्रिय किया तब उपवेदों की सृष्टि हुई, ऋक् से आयुर्वेद, यजुर से धनुर्वेद, साम से गान्धर्व वेद और अथर्व से स्थापत्य वेद की सृष्टि हुई।

विवेक, वितर्क और विश्लेषण ने हमारे चिंतन पक्ष को इतनी शान्ति प्रदान की कि प्रकृति के समस्त रहस्य अपने तत्त्वों की निधि लेकर हमारे समक्ष उपस्थित हो गए। इन सबमें हमारी बुद्धि का वैभव ही प्रधान रहा है। उसी बुद्धि का प्रतीक विज्ञान आज हमारे समक्ष मछुए के घड़े से धुएँ के रूप में निकले हुए दानव की भाँति निरंकुश होकर हमारे अस्तित्व को भी समाप्त कर देना चाहता है। वह प्रतिक्षण भयानक से भयानकतर बनता जा रहा है। महाभारत युग में उसने केवल अठारह दिनों में मानव सभ्यता को निगल लिया। वर्तमान युग में अणु विस्फोटों से वह विकराल विनाश में संसार को अठारह घंटे भी नहीं देना चाहता। ऐसे विज्ञान को अशक्त वृद्धों और अबोध शिशुओं की निरीहता का ज्ञान कहाँ है ? मानवता को करुणा के आँसुओं से सींचने वाली मातृ-जाति की पवित्रता के प्रति उसमें कितनी श्रद्धा है ? कहते हैं कि विज्ञान को मानव जाति के सुख, समृद्धि और शान्तिपूर्ण कार्यों में नियोजित होना चाहिए। अवश्य होना चाहिए , किंतु जिस सिंह को मानवता के रक्त का आस्वाद मिल चुका है, वह शाकाहारी कैसे बन सकेगा ? उसे तो केवल सरकस के लिए पकड़कर केवल पिंजड़े में बंद कर रखते हैं। यदि आप बंद कर सकें तो कृपया बंद कर दीजिए। संसार के सब देश शान्ति चाहते हैं, अस्त्रों पर प्रतिबन्ध लगाने की बात कहते हैं, किन्तु आज निःशस्त्रीकरण का प्रस्ताव प्रस्ताव ही है, घटना नहीं। सम्भव है विज्ञान की विनाशशीलता पर वैज्ञानिक नीरो बन कर गीत गाए और मानवता की करुणा का दृश्य देखे। वह मानवता की करुणा को आत्मसात करने के लिए आगे बढ़े। किन्तु जब विज्ञान और करुणा में वही संबंध होगा जो रावण सीता में संबंध था। रावण ने बलपूर्वक सीता को अपने रथ में बिठा तो लिया किन्तु क्या जीवन भर सीता का स्पर्श कर सका ? इसी प्रकार विज्ञान क्या करुणा का स्पर्श कर सकेगा। मैं महाकवि केशवदास के शब्दों में कहना चाहता हूँ कि पाखंडी जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त करना चाहता है, मठाधिपति एकादशी की पवित्रता ग्रहण करना चाहता है, स्वपच राजा चाण्डाल जिस भाँति पवित्र सामवेद की शाखा कंठस्थ करना चाहता है, उसी भाँति विज्ञान भी करुणा की पवित्रता स्पर्श करने का यत्न करेगा। किंतु प्राचीनकाल से आज तक ऐसा सम्भव नहीं हो सका। और कभी सम्भव भी नहीं सकेगा।

मानव संस्कृति के विकास का दूसरा तत्त्व भावना तत्त्व है। इस भावना तत्त्व ने मानव को सहृदयता प्रदान की। इस सहृदयता से उसने काव्य, संगीत, नृत्य, नाट्य, चित्र और मूर्ति तथा अनेकानेक भावना प्रवण शिल्पों का निर्माण किया। इनसे मानव ने रागात्मक संबंधों का विकास किया। मानवता की समृद्धि प्रेम और सौंदर्य के आधार पर हुई है। इन्हीं गुणों ने उसे त्याग और तपस्या के लिए प्रेरित किया। भिन्न भिन्न जाति और वर्ण के मानवों में परस्पर सहानुभूति और करुणा का प्रसार हुआ।

यह सहानुभूति और करुणा केवल मानवों के बीच ही नहीं रही वरन मानव ने मानवेतर प्राणियों में भी इसका संचार किया। यदि ऐसा न होता तो क्रौंच मिथुन में से एक के वध होने पर महर्षि बाल्मीकि के नेत्रों से अश्रुधारा न बही होती। उनके रागात्मक उद्‌गार ने काव्य की प्रथम पंक्ति उच्चरित की। इस प्रकार प्रथम कविता का संबंध करुणा से हो गया। आगे चलकर तो महाकवि भवभूति ने 'एको रसः करुण एव' कहकर एकमात्र करुण को ही रस की संज्ञा दे दी। हालाँकि, यही करुणा समस्त चेतना पुंजों में एकसूत्रता स्थापित करती है, यही विश्वबंधुत्व का मंगलाचरण है। यही कारण है कि भगवान बुद्ध ने करुणा को ही आधार

मानकर चार सत्यों की प्रतिष्ठा की थी। दुःख, दुःख समुदय, दुःख निरोध और दुःख-निरोध गामिनी प्रतिपदा। इन चार आर्य सत्यों ने करुणा के सहारे भारत के सिवाय मध्य और पूर्व एशिया में भी मानवता के विकास की श्री उत्पन्ना की। अतः यह स्पष्ट है कि विज्ञान के विविध देशों के बीच विद्वेष, सन्देह और घृणा के बीज बोए और मानवीय सहृदयता और करुणा ने विविध देशों को प्रेम और बंधुत्व के सहारे एक दूसरे के समीप ला दिया। बुद्धि और भावना का मनोवैज्ञानिक तत्व की अलग अलग कृतियों से परिचालित हैं। अतः विज्ञान करुणा के समकक्ष कभी नहीं हो सकेगा, यह निर्विवाद सत्य है।

साकेत के नवम सर्ग में मैथिलीशरण गुप्त ने दो पंक्तियाँ करुणा को सम्बोधित करते हुए लिखी हैं :—

करुणे, क्यों रोती है ? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई
मेरी विभूति है जो उसको 'भवभूति' क्यों कहे कोई ?

महाकवि भवभूति ने 'उत्तर रामचरित' में तो करुणा की विभूति को विभूति ही रक्खा किन्तु अपनी सहानुभूति में आज वह करुणा भवभूति-संसार की विभूति बन गई है।

विज्ञान के विशेषज्ञ सोवियत संघ की एक कविता अभी उसी दिन मैंने मास्को में सुनी थी। जब जर्मनी और रूस के बीच युद्ध छिड़ा था और विज्ञान के भयानक अस्त्रों से सुसज्जित होकर दोनों दिशों की सेनाएं एक दूसरे के विनाश के लिए तत्पर थीं, तथा युद्ध भूमि में जाने वाले एक रूसी युवक की पत्नी ने नेत्रों से अश्रु के दो बूंद ढुलक गए

वह अपने पति को युद्ध-भूमि में जाने से नहीं रोक सकती थी। उसने नगर की सीमा पर आकर अपने पति को तरल नेत्रों से विदा दी। उस समय उसके सौभाग्य सूर्य की भाँति पश्चिम में सूर्यास्त हो रहा था। उसने विदा होते पति को अनिमेष दृष्टि से देखा। जब उसका पति उसकी दृष्टि से ओझल हो गया तो उसने अस्त्त होते हुए सूर्य को भरे कंठ से सम्बोधित करते हुए कहा—ऐ मेरे प्रिय सूर्य ! तुम अस्त से हो रहे हो। कल रण क्षेत्र में जब मेरे प्रिय अपनी मातृभूमि की रक्षा हेतु शत्रु से युद्ध करने के लिए उमंग से खड़े होंगे तब तुम भी उस रण-क्षेत्र में उदय होगे। मैं तो वहाँ नहीं रहूँगी, किन्तु तुम अपनी किरणों से उसके शरीर का स्पर्श करोगे। अस्त्र होने के पूर्व तुम अपनी किरणों के साथ मेरी मंगलकामनाएं समेट लो। कल तुम मेरी इन मंगलकामनाओं के सुनहले हार को अपनी किरणों के साथ मेरे प्रियतम को पहिना देना। ये मंगल कामनाएं उनके शरीर में कवच की भाँति सुदृढ़ हो जावेगी और वे शत्रुओं के अधिकार में पड़ी हमारी मातृ-भूमि को मुक्त कर लेंगे।

विज्ञान के युद्ध क्षेत्र में करुणा की ये मंगल कामनाएँ ही रूस को विजय दिला सकीं और मेरा विश्वास है कि साहित्य क्षेत्र में ही नहीं, मानवता के क्षेत्र में भी इसी करुणा के साम्राज्य को विज्ञान का निरंकुश हाथ कभी छू नहीं सकेगा।

●●●

प्रस्तुतीकरण

•

इधर पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी-भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अनुसंधान की प्रवृत्ति बढ़ी है। यह प्रवृत्ति आशाप्रद तो है, सन्तोषप्रद नहीं है। अनुसंधान के अधिकतर जो प्रयत्न हो रहे हैं, वे स्नातकोत्तर विद्यार्थियों की भविष्य लालसा के प्रयत्नमात्र हैं। अभिलषित सीमा तक पहुँच कर वे समाप्त हो जाते हैं। हिन्दी के कुछ ख्यातिप्राप्त विद्वान् हैं; वे प्रारम्भ में नई मान्यताएँ स्थापित करते हैं और कुछ नये तथ्य प्रकाश में लाते हैं। पुराने निष्कर्ष नई कसौटियों पर कसे जाते हैं, और एक स्वस्थ दृष्टि सामने आती है। लेकिन एक बार विवाह के 'ध्रुव-दर्शन' के उपरान्त वह दृष्टि बहुत कम ऊपर उठती है। अनुसंधान तो एक विज्ञान है। वह अन्ध मान्यताओं के प्रति एक असंतोष है। वह एक जिज्ञासा है जो ज्ञान के अन्तराल में विश्लेषणमयी प्रवृत्ति के साथ प्रवेश करती है। जिस भाँति तलवार पर पानी चढ़ाया जाता है, उसी भाँति दृष्टि पर प्रश्न चिह्न अंकित होता है। प्रवृत्ति जिज्ञासा में ढलती है और भावना, कल्पना और आग्रह की अपेक्षा संतुलन, तर्क और विश्लेषण की प्रतिभा उद्बुद्ध होती है। इसके लिए चिन्तन और वितर्क की आवश्यकता है। यह अभ्यास-सापेक्ष्य है।
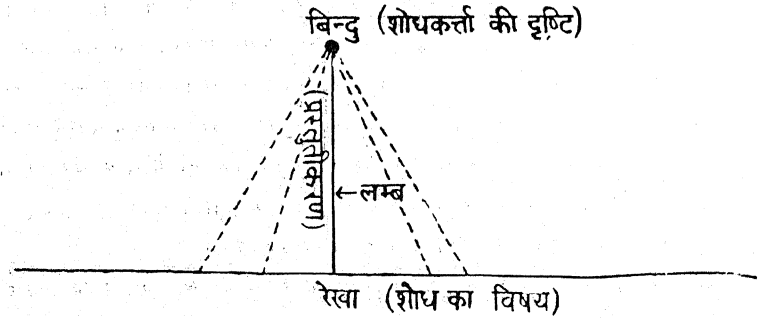
शोध की समस्या में प्रस्तुतीकरण का विशेष महत्त्व है। शोध का जो लक्ष्य है, उसकी प्राप्ति के लिए ऐसी सामग्री प्रस्तुत की जाय जो समस्या के हल का अनिवार्य अंग हो। रेखा-गणित का यह सिद्धांत है कि किसी बिन्दु से एक सीधी रेखा पर खींचा गया लम्ब (Perpendicular) ही 'निकटतम दूरी' का प्रतीक है। समझ लीजिए कि बिन्दु ही हमारी दृष्टि है और सीधी रेखा ही हमारी शोध का विषय है। उस बिन्दु से खींचा गया 'लम्ब' ही प्रस्तुतीकरण-विज्ञान है जिसकी दूरी निकटतम होनी चाहिए। अन्य रेखाएँ जो उस बिन्दु से सीधी रेखा पर खींची जावेंगी, वे 'लम्ब' की अपेक्षा अधिक लम्बी होंगी।

इस भांति यह स्पष्ट है कि शोध विषय के लिए प्रस्तुटीकरण एक ऐसा नैकटच है–एक ऐसा उपगमन है जिसके सहारे समस्या से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। अतः शोध के अन्तर्गत 'प्रस्तुतीकरण' एक विशिष्ट अर्थ के साथ प्रयुक्त होता है।

प्रस्तुतीकरण में कठिनाइयाँ

(१) सबसे पहली कठिनाई विषय के निर्वाचन की है। देखा यह जाता है कि शोध का वास्तविक स्वरूप शोध-कर्त्ता के समक्ष स्पष्ट नहीं रहता। जो विषय सामान्य निबन्ध का होता है, उसे ही शोध का शीर्षक बना लिया जाता है। कभी-कभी सामान्य समालोचना की प्रवृत्ति ही शोध के विषय में कार्य करती हुई दृष्टिगत होती है। शोध का महत्त्व तो उसकी समस्या में है। भाषा और साहित्य के क्षेत्र में जो ऊँचे ऊँचे टीले नज़र आते क्या है, उनके भीतर कोई पुरातत्त्व के महत्त्व की वस्तु है? जो गहरी खाइयाँ हैं, क्या उनमें स्वर्ण-रजत की खानें हैं? उपाधि-लोलुप विद्यार्थी तो अपने चिन्तन का 'पीयूष स्रोत' 'लेकर जीवन के सुन्दर समतल' में शोध का कार्य करने के लिए अग्रसर होते हैं। वे पहाड़ों और टीलों पर नहीं चढ़ना चाहते हैं। शोध के गूढ़ विषय नहीं चुनना चाहते। कोई समस्या (Problem) नहीं लेते और जब समस्या नहीं है तो उसका प्रस्तुतीकरण कैसे निर्धारित किया जा सकेगा? साधारणतः विद्यार्थी-वर्ग 'लेमन ड्राप' की तरह विषय लेते हैं—'प्रेमचन्द-उपन्यास', 'प्रसाद का कथा-शिल्प', 'ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा', 'हिन्दी के जासूसी उपन्यास', 'निबन्ध साहित्य का उद्भव और विकास' आदि आदि। इन विषयों की गोलियाँ चूसते हुए ये छोटे-मोटे पुस्तकालयों से सामग्री एकत्र करते हैं और फुटनोट्स देकर थीसिस प्रस्तुत कर देते हैं। इन प्रबन्धों में प्रस्तुतीकरण ऐसा ही है जैसे किसी विदूषक को राजसिंहासन पर बिठला दिया है। ऐसे विद्यार्थियों द्वारा शोध सुविधापूर्वक होती है और पहले के कुछ शोध प्रबन्धों तथा कुछ प्रकाशित आलोचनात्मक पुस्तकों की सामग्री को उलट-फेर कर दूसरे शब्दों में कह कर थीसिस का रूप तैयार हो जाता है। बढ़िया कपड़े की जिल्द और सुनहरी टाइप में शीर्षक और निर्देशक का नाम छपा कर सौंदर्य-संभार किया जाता है और उसके बाद शोध का कार्य समाप्त हो जाता है। थीसिस की क्या उपलब्धियाँ हैं, क्या निष्कर्ष हैं, कितने नये संदर्भों की खो हुई है, इसका कोई पता नहीं चलता। जब प्रस्तुतीकरण की शैली से ही शोध-कर्त्ता अपरिचित है, तो उसे न तो विषय-निर्वाचन की दृष्टि प्राप्त होगी और न तत्सम्बन्धी उपलब्धि।

(२) दूसरी कठिनाई विषय के विवेचन की है। जो भी विषय चुना जाएगा उसकी पृष्ठभूमि अवश्य दी जाएगी। किन्तु यह पृष्ठभूमि विषय-विवेचन की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तार ले लेगी। यह पृष्ठभूमि सुदूर अतीत तक चली जावेगी, चाहे उसकी आवश्यकता हो या न हो। आज की ग्राम-समस्याओं का इतिहास ऋग्वेद में भी खोजा जायगा और रघुराज सिंह के 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक के लिए अरस्तू का काव्य-शास्त्र मथा जायगा। हमारे विद्यार्थियों को संदर्भ-ज्ञान नहीं के बराबर है। कबीर के अनुभव ज्ञान के सूत्र छांदोग्य उपनिषद् में ढूंढे जायंगे, यद्यपि कबीर ने स्वयं कहा—

> कबीर संसार दूर करु, कागद देइ बहाइ।
> बावन आखर सोधि कै, हरि चरनों चितु लाइ ॥७३॥ संत कबीर।

किन्तु शोध-कर्त्ता अपने समस्त पाण्डित्य का बोझ शास्त्रीय ज्ञान पर विश्वास न करने

वाले भक्त कवि के सिर पर अवश्य ही लाद देगा। जिस विषय का स्पष्टीकरण हम दस पृष्ठों में कर सकते हैं, उसके लिए पचास पृष्ठ लिखे जाते हैं। पृष्ठभूमि की विवेचना वहीं तक अभीष्ट है जहाँ तक शोध-विषय के साथ उसका सीधा सम्बन्ध है।

विषय का विवेचन भी अत्यन्त अव्यवस्थित होता है। ग्रन्थों की प्रामाणिकता सिद्ध किए बिना ही उन पर आलोचना होती है। तिथियों की खोज ही नहीं होती। यदि तिथि प्राप्त भी हो जाती है तो उसकी ऐतिहासिक संगति नहीं बिठलाई जाती। आलोचना में विविध विद्वानों के मत उद्धृत कर दिये जाते हैं। उनके आधार पर ही निष्कर्ष निकल आता है। अपना मत देने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। जनश्रुतियाँ और किम्वदन्तियों को ही अनेक स्थानों पर प्रामाणिक मान लिया जाता है। चिन्ता-धारा प्रवाहित होने के बजाय किसी गहरे गढ़े में है। अधिकांश पुरानी बातें ही विशेष पिष्टपेषण के साथ सामने आती हैं अथवा यदि कोई नई बात कही भी जाती है तो उसकी सामाणिकता कमजोर या संदिग्ध रह जाती है।

(३) तीसरी कठिनाई सामञ्जस्य की है। विवेच्य विषय के सूत्र या तो दृष्टिगत नहीं होते अथवा होते भी हैं तो उनका संग्रथन उचित ढंग से नहीं होता। शोध के अध्याय ढाक के तीन पात की तरह अलग अलग ही दिखलाई देते हैं। जो निष्कर्ष पूर्ववर्ती अध्यायों में निकले हैं क्या उनके आधार पर परवर्ती अध्यायों की सामग्री का संचयन और संयोजन किया गया है? यदि ऐसा नहीं होता तो समस्त शोध प्रबन्ध स्वच्छन्द आलोचना का रूप ले लेता है। एक-एक अध्याय समुद्र में बिखरे हुए टापुओं की तरह दृष्टिगत होता है। शोध प्रबन्ध में जिस समस्या पर विचार किया जा रहा है, सके ऊपरी आवरणों को निकाल कर उसके वास्तविक रूप की परीक्षा की जानी चाहिए। वह परिथितियों से उद्भूत हुई है, अथवा व्यक्ति से? उन व्यक्तियों और परिस्थितियों के संघर्ष या संपर्क से उस पर क्या प्रतिक्रिया हुई है? उस प्रतिक्रिया का प्रतिफल किस-किस रूप में हुआ है। उन रूपों में क्या एकरूपता है और उनका हल किस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। ये सब विचार एक ही वृत्त से उत्पन्न होने वाले पल्लव-समूह हैं। उनके बीच से ही निष्कर्ष का पुष्प प्रस्फुटित होगा। इस प्रकार जब तक समस्त विवेचन में एक सामञ्जस्य नहीं होता तब तक उपलब्धियों का रूप स्पष्ट नहीं होगा।

प्रस्तुतीकरण की विधा

किसी भी शोध विषय के प्रस्तुतीकरण की शैली किसी दूसरे विषय के प्रस्तुतीकरण की शैली से भिन्न हो सकती है। प्रत्येक विषय अपने संदर्भ के अनुसार अपनी प्रस्तुतीकरण की शैली का निर्धारण कर लेता है। इस शैली में दृष्टिकोंण का भी विशेष हाथ रहता है। यही कारण है कि किसी विषय विशेष पर प्रस्तुत प्रबन्ध अपने दृष्टिकोण के अनुसार विशिष्ट पक्षों पर बलाघात (Synopsis) देते हुए अपना प्रतिपाद्य अलग स्थिर कर सकते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि दृष्टिकोंण की विशिष्टता प्रस्तुतीकरण की विधा की विधायिका है। जिस प्रकार एक फोटोग्राफ़र चित्र लेते समय वस्तु का अधिक से अधिक प्रभावमय चित्र लेने के लिए वस्तु को चारों ओर से देख कर अपना विशिष्ट कोण निर्धारित करता है, उसी प्रकार शोधकर्त्ता भी प्रतिपाद्य विषय को समझ कर उसकी समस्या कोसुलझाने के लिए एक विशिष्ट दृष्टिकोंण निर्धारित करता है। इस दृष्टिकोंण से जहाँ समस्या अपने सर्वांगरूप में उपस्थित होती है, वहाँ शोधकर्ता की चिन्ता-धारा से उसका सीधा सम्बन्ध हो जाता है।

इस प्रस्तुतीकरण की विधा के अनेक अंग हैं। वे निम्न प्रकार से हो सकते हैं—

(१) प्रत्यक्षीकरण

(२) जिज्ञासा और तर्क द्वारा विश्लेषण

(३) सानुपातिक महत्त्व और सन्तुलन

(४) प्रमुख तत्त्व और निष्कर्ष

(५) संक्षिप्त नियोजन

इन पर अलग अलग विचार करने की आवश्यकता है—

(१) प्रत्यक्षीकरण

प्रस्तुतीकरण तब तक सम्भव नहीं है जब तक शोध-विषय का प्रत्यक्षीकरण न हो। हमें शोध विषय किसी समस्या के रूप में रखना चाहिए। यदि समस्या न बन सके तो विषय का रूप इस प्रकार होना चाहिए कि उससे जिज्ञासा और तर्क सहज ही जागरित हो सकें। समस्या अथवा जिज्ञासा एवं तर्क विषय की ऐसी रूप-रेखा बना देंगे जो मन और बुद्धि के द्वारा सहज ही ग्रहण की जा सकती है। वस्तुतः हमारे गन्तव्य का रूप निराकार से साकार होना चाहिए।

पश्चिम के शोध-विशारदों ने जिस विषय पर शोध की किरण डाली, उसे जीवित कर दिया। वह जीवित विषय उसी प्रकार अपनी समस्याएँ आपके सामने रखेगा जिस प्रकार एक बीमार आदमी डाक्टर से अपनी तकलीफें बतलाने लगता है। खाँसी है, छाती में दर्द है, साँस फूलती है। यदि विषय को अपनी तर्क और अनुशीलन की शक्ति से संजीवित कर दिया गया तो उसके सभी अंग आपके सामने आप से आप स्पष्ट हो जायँगे। जिस प्रकार कोई बीज मृत या प्रसुप्त रहता है लेकिन जब वह भूमि में बोया जाता है तो वह जीवित हो जाता है। वह एक ओर तो जड़ फेंकता है, दूसरी ओर अंकुर, अंकुर से छोटे छोटे पल्लव निकलते हैं। पल्लवों के बाद पुष्प और पुष्प के बाद फल। उसी भाँति किसी चिंता-धारा में जब कोई विषय पड़ता है तो वह जीवत हो जाता है। एक ओर वह समस्या की जड़ फेंकता है, दूसरी ओर उसके हल के रूप में पल्लव और निष्कर्ष के रूप में फूल या फल आ जाता है। इस प्रकार शोध के विषय को जीवित करने की आवश्यकता है। उसके अंग-प्रत्यंग स्पष्ट हो जाने चाहिए। कौन सा अंग अर्द्ध विकसित है, कौन सा अति विकसित। यदि अर्द्ध विकसित है तो किस कारण से उसका विकास रुका, किन राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिक परिस्थितियों का आक्रोश उसे सहन करना पड़ा, किस व्यक्ति या समाज ने उसे विकास की अवस्था में ही नोंच कर फेंक दिया। यदि अति विकसित है तो यह किसकी उच्छृंखलता है, किस समाज की अतिरंजित प्रवृत्ति ने उसे इतना स्थूल रूप दे दिया। इस प्रकार विषय के विविध अंग रंगमंच पर एकत्र हुए पात्रों की भाँति स्वयं अपना परिचय देने लगेंगे और तब अपने विषय के विस्तार पर आपको सहज ही अधिकार हो जायगा। आप स्वयं अपने विषय के क्रोड़ में प्रवेश कर उसका योजना-सूत्र (Synopsis) बना सकते हैं।

जिज्ञासा और तर्क द्वारा विश्लेषण

विषय के अंगों के स्पष्ट होते ही जिज्ञासा और तर्क स्वयं ही दो संदेश वाहकों की भाँति सामने आ खड़े होते हैं। शोध-कार्य में जिज्ञासा और तर्क अन्योन्याश्रित होते हैं। जिज्ञासा से यदि आप में तर्क की प्रवृत्ति जाग्रत होगी तो तर्क पुनः दूसरी जिज्ञासा को जन्म देगा। इस भांति

तर्क और जिज्ञासा से एकावली अलंकार की तरह एक विस्तृत शृंखला आपके सामने उपस्थित हो जायगी। यह जिज्ञासा और तर्क विविध तथ्यों के बीच उनके विशिष्ट लक्षणों के आधार पर विभाजक रेखाएँ खींचने लगेंगे और समस्त विषय छोटे-छोटे तथ्यों के रूप में आपके सामने स्पष्ट हो जायेंगे। यही विश्लेषण का रूप है। इस विश्लेषण से प्रत्येक भाग अपनी प्रभावान्विति में आपके सामने स्पष्ट हो जायगा। यदि विश्लेषण ठीक नहीं हुआ तो यह सम्भव है कि विषय का कोई भाग छूट जाय अथवा जिस परोक्ष कारण से प्रत्यक्ष साध्य हुआ है, वह विपक्ष में पड़ कर आँख से ओझल हो जाय। इस सन्दर्भ में विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' में 'वादी' के सम्बन्ध में जो कहा है, वह दृष्टव्य है—

> रहत साध्य सों अन्वित अरु विलसत नित पच्छहिं,
> सोई साधन साधक जो नहिं छुवत विपच्छहिं।
> जो पुनि आप असिद्ध सपच्छ विपच्छहुँ में सम
> कछु कहुँ नहिं निज पच्छ माँहि जाको है संगम।
> नरपति ऐसे साधनन कों अनुचित अंगीकार करि।
> सब भाँति पराजित होत हैं, बादी लौं बहु विधि बिगरि॥

इस प्रकार इस विश्लेषण में पक्ष और विपक्ष के चिन्तन का पूरा ध्यान रखना आवश्यक है। यदि पक्ष का समर्थन करना है तो विपक्ष के प्रतिकूल सबल तर्क का प्रमाण देना आवश्यक है और यदि विपक्ष का समर्थन करना है तो पक्ष को नष्ट कर देना ही अभिप्रेत है। वस्तुतः बिना विश्लेषण के प्रस्तुतीकरण की विधा साध्य नहीं होगी।

सानुपातिक महत्त्व और संतुलन

विश्लेषण का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि विषय के सभी अंगों का सानुपातिक महत्त्व ज्ञात हो जायगा। इसी सानुपातिक महत्त्व से हमें अपने निष्कर्ष निकालने में सहायता मिलेगी। विषय का कौन-सा अंग निष्कर्ष निकालने में सहायक हो सकेगा, यह भी स्पष्ट होगा। विषय के अलग अलग अंग किस प्रकार एक-दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं, यह जानना अत्यन्त आवश्यक है। वे किस प्रकार और किस दिशा से एक दूसरे से जोड़े जा सकते हैं और उसमें किस प्रकार एकसूत्रता स्थापित हो सकती है, इसका निर्णय करना विषय की एकरूपता प्रस्तुत करने में सहायक होगा। आपने 'कामायनी' में पढ़ा होगा कि इच्छा, क्रिया और ज्ञान के तीन लोक मनु को अलग-अलग दिखलाई दिए। वे जीवन को कोई सन्देश न दे सकते, यदि श्रद्धा की स्मिति-रेखा उन्हें परस्पर एकसूत्र में ग्रथित न कर देती। यह समरसता का सिद्धान्त ही सानुपातिक महत्त्व में काम करता है।

सन्तुलन में हमें गुण-दोषों की विवेचना में निष्पक्ष और विवेक-सम्पन्न रहना है। यह देखा जाता है कि गुणों की प्रशंसा इतने अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से की जाती है कि ज्ञात होता है कि शोधकर्ता किसी राजसभा में विरुदावली का गायक है। निंदा इतनी कटुता से की जाती है जैसे आलोच्य विषय का लेखक हमारा जन्मजात शत्रु है। इन अतिशयोक्तियों से शोध-कर्त्ता को बचने की आवश्यकता है। शोध तर्क और विवेक का क्षेत्र है। इसमें कल्पना और भावना का अतिरेक कभी अभीष्ट गन्तव्य की ओर नहीं ले जा सकता। अतः यह आवश्यक है कि शोध-कर्त्ता किसी न्यायाधीश की भाँति पक्ष और विपक्ष पर गंभीरता के साथ विवेचन करने

के उपरान्त अपना निर्णय दे । आलोचनात्मक विश्लेषण से जहाँ हमें तथ्य की सानुपातिक महत्ता ज्ञात होती है, वहीं सन्तुलन से हमें किसी निर्णय पर पहुँचने में सहायता मिलती है ।

प्रमुख तत्व और निष्कर्ष

संतुलन का एक बहुत बड़ा लाभ यह होगा कि विवेच्य विषय के प्रमुख तत्त्व की पहिचान हमें सहज ही हो जायगी । यह प्रमुख तत्त्व सहायक तत्त्वों के सहयोग से किसी निश्चित निष्कर्ष की ओर अग्रसर होता है । जिस प्रकार सहायक नदियों की जलराशि से विस्तृत होकर नदी की प्रमुख धारा महासागर में गिरती है उसी प्रकार गौण तत्त्वों से सहायता पाकर प्रमुख तत्त्व निष्कर्ष की ओर अग्रसर होता है ।

निष्कर्ष किसी भी शोध का अन्तिम लक्ष्य है । यह निष्कर्ष विवेचना के प्रत्येक तत्त्व से प्रेरित होकर विषय की परिणति से सम्बन्ध रखता है । यह संभव है कि एक ही विषय के प्रतिपादन में भिन्न भिन्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं । इसीलिए दृष्टिकोंण और निष्कर्ष में अप्रतिहत सम्बन्ध है । यदि दृष्टिकोंण और विवेचना-पद्धति किसी नवीन सामग्री से सम्बन्धित है जो खोज के परिणामस्वरूप उपलब्ध हुई है तो निष्कर्ष में अन्तर आ जायगा । तुलसीदास के दार्शनिक सिद्धांतों को कोई अद्वैतवाद के आधार पर निरूपित करता है, कोई विशिष्टाद्वैत के दृष्टिकोंण से । सही दृष्टिकोंण उसका होगा जो अकाट्य सामग्री के आधार पर अपने दृष्टिकोंण का निरूपण करेगा । मैंने अपने 'आलोचनात्मक इतिहास' में निर्दिष्ट किया है कि यों तो

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल करि मानें ।
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ।।

लिखकर आत्मबोध के समक्ष समस्त दार्शनिक सिद्धांतों को 'भ्रम' ही कह दिया है किन्तु भक्त जब उल्लास में अपने आराध्य का आविर्भाव 'भये प्रकट कृपाला दीन दयाला कौसल्या हितकारी' की पंक्तियों में लिखता है तो वह अपने प्रभु का रूप पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामिन् और अर्चावतार के रूप में करके स्पष्टतः विशिष्टाद्वैत का ही समर्थन करता है । इस संदर्भ का कहीं उल्लेख नहीं हुआ, अतः यदि यह नवीन सामग्री अकाट्य है तो तुलसीदास विशिष्टाद्वैतवादी ही थे ।

किसी भी शोध प्रबन्ध में निष्कर्ष आवश्यक है । यह शोध-कर्त्ता के समस्त चिन्तन का प्रतिफलन है । कथा-शिल्प में जो चरम सीमा का महत्त्व है, शोध शिल्प में वही महत्त्व निष्कर्ष का है । वस्तु विश्लेषण के अनन्तर तर्क की जो स्वस्थ और चेतन प्रवृत्ति आगे चलकर किसी उपलब्धि के बिन्दु पर केन्द्रीभूत होती है, वही निष्कर्ष है । निष्कर्ष अभी तक की मान्यता पर एक नवीन आलोक विकीर्णित करता है । ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत होता है और नये तथ्यों का आकलन होता है । संक्षेप में जिज्ञासा का विश्राम-स्थल ही निष्कर्ष है । प्रस्तुतीकरण की विधा जितनी अधिक वैज्ञानिक होगी, निष्कर्ष उतना ही शक्तिशाली होगा ।

उपर्युक्त समस्त वैचारिक प्रक्रियाएँ जो प्रस्तुतीकरण में अपेक्षित हैं, उनका रेखा-चित्र निम्न प्रकार से दिया जा सकता है—
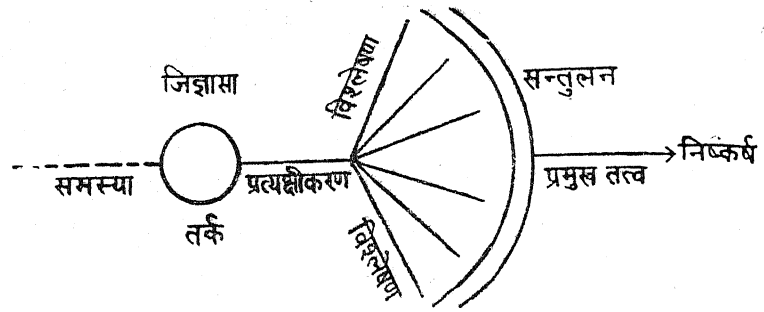
संक्षिप्त नियोजन

प्रस्तुतीकरण का सौन्दर्य संक्षिप्त नियोजन में दृष्टिगत होता है। केवल उन्हीं तत्त्वों का आकलन किया जाय जो निष्कर्ष निकालने के लिए आवश्यक हैं। देखा यह जाता है कि बहुत से हिन्दी शोध-निर्देशक इस बात पर ध्यान ही नहीं देते। वे विद्यार्थी को रेस-कोर्स का घोड़ा समझते हैं। लाइब्रेरियाँ हरे-हरे घास के मैदान हैं। उन मैदानों में वह घोड़ा आगे-पीछे बड़ी दूर तक चरता चला जाता है। कुछ पुष्ट भी होता है, लेकिन किस तरह दौड़ना चाहिए, इसकी ट्रेनिंग उसे नहीं मिलती। बेचारा विद्यार्थी रिसर्च का नाम सुनता रहा है, किन्तु रिसर्च किस प्रकार होती है, यह नहीं जानता। लिखना किस प्रकार आरंभ करना चाहिए, वह नहीं जानता। योजना-सूत्र बनाने की कल्पना वह कर ही नहीं सकता। अपने निर्देशक से प्रार्थना करता है—निर्देशक टाल देते हैं। कहते हैं—अभी पढ़ो—बिबलियोग्राफ़ी बनाओ। बेचारा बिना किसी निर्देश के पढ़ता है। अपनी शोभा और मर्यादा के लिए 'ईगल' फ़ाइल हरे या चाकलेट रंग की रखता है। कहीं कहीं उसमें वह लिखता चलता है। आवश्यक-अनावश्यक सब बातें वह भानमती के कुनबे की तरह इकट्ठी करता है। एक वर्ष के बाद वह कुछ स्वीकृत शोध-प्रबन्धों को समझने के योग्य होता है और तब अपने एक वर्ष के अध्ययन के आधार पर यह कहना सीख जाता है—अरे, वह शोध-प्रबन्ध! उसे तो मैं एम० ए० प्रथम वर्ष में ही लिख लेता! क्या लिखा है—बिलकुल भरती खानापूरी और उद्धरणों के ढेर! यदि उसे किसी इंटरमीडिएट कालेज या डिग्री कालेज में नौकरी नहीं मिली और उसे रिसर्च की चक्की पीसने के लिए बाध्य होना पड़ा तो निर्देशक के अल्प अवकाश में देखे गए प्रबन्ध का कलेवर पाँच सौ से एक हजार पृष्ठों तक होना स्वाभाविक है। इतने बड़े प्रबन्ध का कलेवर लिखने और टाइप कराने के लिए उसे कम से कम तीन बार अधिकारियों से समय बढ़ाने की प्रार्थना करनी पड़ती है। प्रबन्ध जब परीक्षक के पास जाता है तो वह एक हज़ार पृष्ठों का प्रबन्ध देख-कर एक हज़ार बार कराहता है और शोध के प्रस्तुतीकरण को देखकर हैरान हो जाता है। संगत और असंगत, आवश्यक और अनावश्यक, बड़े बड़े लम्बे उद्धरणों और अवतरणों के मगर-मच्छ उसमें तैरते-उतराते हैं, और उनके बीच में परीक्षक को यह महासागर पार करना पड़ता है।

यह प्रस्तुतीकरण ऐसा होना यह चाहिए कि निर्देशक विषय को रत्न के पहलों की भाँति तराश दे। जिस जिस दिशा में जिस दूरी तक उस रत्न की किरण जाती है, उनकी सीमाएँ नाप ले और उससे सम्बन्ध रखने वाली समस्त सामग्री को संग्रह-त्याग की तुला पर तौल

कर नीर-क्षीर विवेक की भाँति—'संत-हंस गुन पय गहहिं, परिहरि वारि-विकार।' की नीति शोध-विद्यार्थी को समझा दे। अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी स्वयं अपनी चिन्तन-शक्ति को क्रियाशील बनावे और योजना-सूत्र पूर्ण विश्लेषण और संतुलन से बनाकर अपने निर्देशक को दिखलावे। निर्देशक प्रत्येक अंग पर विद्यार्थी से विचार-विनिमय कर योजना-सूत्र को ठीक कर दे। उसके आधार पर विद्यार्थी आवश्यक सामग्री का संचय करे। प्रत्येक सप्ताह अपने निर्देशक से मिलकर उसे अपने कार्य की प्रगति से सूचित करे। सामग्री में डूब कर उसे अपने चिन्तन का भाग बनाकर अपने ही शब्दों में अपने विषय का प्रतिपादन करे। प्रत्येक अध्याय पर निर्देशक की सम्मति ले। यदि निर्देशक अधिकांश अध्याय काट दे तो उसे दुःख न हो। योजना-सूत्र में समय-समय पर जो संशोधन हो, उसे समझे और अपने शोध-प्रबन्ध का एक कच्चा रूप बना ले। उस कच्चे रूप का पुनर्निरीक्षण हो। छूटे हुए अंश जोड़ दिए जायँ, बढ़े हुए अंश काट दिए जायँ और आराध्य की प्रतिमा की भाँति शोध-प्रबंध टंकित हो जाय।

प्रत्येक आवश्यक अंश का उपयुक्त भाषा में नियोजन हो। विद्यार्थी भाषा लिखने की कला का विकास करे। 'अरथ अमित अति आखर थोरे' के अनुसार संक्षिप्त शैली का ही नियोजन करे। कम से कम शब्द और अधिक से अधिक अर्थ का आदर्श उसके सामने हो। लम्बे अवतरण जब तक अत्यन्त आवश्यक न हों तब तक उन्हें लेने का लालच न करे। जितना आवश्यक अथवा अनिवार्य है, उसे ही अपनी थीसिस में स्थान दे, क्योंकि थीसिस शोध-कर्त्ता का साधना-मन्दिर है। उसमें उच्छिष्ट पदार्थों को लाने का प्रयत्न न हो।

अपनी समस्त सामग्री को उपर्युक्त प्रस्तुतीकरण की विधा से यदि शोधकर्त्ता प्रस्तुत करे तो हिन्दी में शोध-कार्य का वास्तविक महत्त्व होगा। यह कार्य आशाप्रद ही नहीं, संतोष-प्रद भी होगा।

●●●

काव्य :—

ये गजरे तारों वाले

●

इस सोते संसार बीच,
जग कर सजकर रजनी वाले !
कहाँ बेचने ले जाती हो,
ये गजरे तारों वाले ?
मोल करेगा कौन,
सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी।
मत कुम्हलाने दो,
सूनेपन में अपनी निधियाँ न्यारी।
निर्झर के निर्मल जल में,
ये प्रतिविम्बित गजरें धोना।
लहर हहर कर यदि चूमे तो,
किंचित् विचलित मत होना।
होने दो प्रतिविम्ब विचुम्बित,
लहरों में ही लहराना।
लो मेरे तारों के गजरे,
निर्झर स्वर में यह गाना।
यदि प्रभात तक कोई आकर,
तुमसे हाय न मोल करे।
तो फूलों पर ओस-रूप में,
बिखरा देना सब गजरे।
(अंजलि से)

• • •

विराट् रूप

मेरी जीवन तंत्री में कितनी आहों के तार लगे ।
मेरे रोम रोम में कितने ही दुख के संसार लगे ।
मेरी अंतर-बहिर् प्रकृति में प्रबल हार के हार लगे ।
मेरे जीवन-नभ को दुख-दामिनि के चपल प्रहार लगे ।
ज्ञान-कोष में आँसू के कितने ही हैं भंडार लगे ।
मेरे मानस में छल करने वाले कितने प्यार लगे ।
मेरे हँसने से ही शशि, किरणों का उज्ज्वल हास हुआ ।
मेरे आँसू की संख्या से तारों का उपहास हुआ ।
मेरे दुख के अंधकार से रजनी का शृंगार हुआ
मेरे बिखरे भावों से बिखरा-सा यह संसार हुआ
मेरे सुख से ही जग में सुख का है कुछ आभास हुआ ।
मेरे जीवन में ही मानव जीवन का इतिहास हुआ ।
(अंजलि से)

ओ प्रेयसि ! रूप तुम्हारा—

नव बसंत के दर्पण में—
अंकित स्मिति है सारा !
कोकिल ने तुम्हें पुकारा !!
मृदु समीर से सेवक ने—
मेरा स्वर भार उतारा !
मैंने जब तुम्हें पुकारा !!
तुम्हे देख शशि भस्म लगा—
दुर्बल हो गगन सिधारा !
तारों ने तुम्हें पुकारा !!
हँसकर फूल गया बुद्बुद्
सरिता-शिशु सरस दुलारा !
कहता था, अन्त तुम्हारा !!
ओ प्रेयसि रूप तुम्हारा ।
(रूपराशि से)

रूपराशि

●

(पश्चिम आकाश में संध्या)
कुछ तारक कलिकाएँ ? वे भी हैं सुगन्धि से हीन।
रजनी तेरे आँगन में सब कुछ है स्तब्ध, मलीन।
नभ नीला है. तेरा तन भी. . .(बस ! न रहूँगी और।
मेरी रूपराशि कहती है नभ से कथा नवीन।
(रजनी का प्रवेश)
यह नवीन संध्या ? जिसमें रंगों का क्षणिक प्रवाह—
भूले भटके बादल के टेढ़े मुख का है ग्रास ! !
मेरा नभ नीला है मेरा रतन भी. . .(कह दूँ). . .श्याम !
करती हूँ रवि—सदृश विश्व-शासन तम से सविलास।
(प्रस्थान) (रूपराशि से)

मैं खोज रहा हूँ कोकिल स्वर !

●

बतला दो मेरे नील व्योम !
मैं इस संसृति से हूँ कातर ॥
कितने तरु का उर सज्जित कर
मधु-माधव का मन में मधु भर
वह बोल उठी वंशी ध्वनि-सी—
हो गए एक अवनी अम्बर ॥
प्रिय पीड़ा को भी कर सुखकर
पथहीन व्योम में रहा विचर
ऐसे कोकिल स्वर के पाने को
व्याकुल है मेरा अन्तर
मैं खोज रहा हूँ कोकिल स्वर
(चित्ररेखा से)

गाओ मधु-प्रिय गान

*

सुनने को यह नभ नीरव है
गाओ मधु-प्रिय गान ॥
नव तरु ने अपना हृदय आज
पल्लव-पल्लव कर दिया आह ?
जिससे वह छूले एक बार
सु-मधुर सु-राग का सु-प्रवाह
यह अनिल बना है अंगहीन
छिपकर छूने की हुई चाह,
करने को नव छबि प्रतिविम्बित
यह सरिता है, उज्ज्वल अथाह
मेरे जीवन के शतदल में,
भर दो सुरभि महान !!
गाओ मधु-प्रिय गान !

(चित्ररेखा से)

साधना

*

यह तुम्हारी साधना ।
सृष्टि का प्रत्येक स्वर
संवाद सुख का है बना ।
इस विरह के एक क्षण में
मिलन का संदेश है;
किस तरह अपनी बताओ–
मैं करूँ आराधना ?
मौन हूँ मैं, किन्तु वह तो
शांति की है मूर्छना ;
मैं तुम्हीं में लीन, मुझको
साँस में मत बाँधना !

(चन्द्रकिरण से)

किरण-कण

*

एक दीपक-किरण-कण हूँ ।
धूम्र जिसके क्रोड में है, उस अनल का हास्य हूँ मैं ।
नव प्रभा लेकर चला हूँ, पर जलन के साथ हूँ मैं ।
सिद्धि पाकर भी तपस्या-साधना का ज्वलित क्षण हूँ ।
एक दीपक किरण-कण हूँ ।
व्योम के उर में अगाध भरा हुआ है जो अँधेरा ।
और जिसने विश्व चुपचाप कितनी बार घेरा ।
उस तिमिर का नाश करने के लिए मैं अखिल प्रण हूँ ।
एक दीपक किरण कण हूँ ।
शलभ को अमरत्व देकर प्रेम पर मरना सिखाया;
सूर्य का संदेश लेकर रात्रि के उर में समाया ।
पर तुम्हारा स्नेह खोकर मैं तुम्हारी ही शरण हूँ ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ ।

(चन्द्रकिरण से)

दीपक से

*

तुम्हें बुझाने का साहस क्यों करे अरे, सासों की धारा;
तुम दीपक हो, जलना ही तो जग में है अस्तित्व तुम्हारा ।
यह तो है संसार, यहाँ पर जल-जलकर ही मर जाना है;
स-तम बना अपना भविष्य, जग को प्रकाशमय कर जाना है ।
आओ हम दोनों जलकर
छोटा-सा क्षण आलोकित कर दें ।
अपनी पीड़ा के प्रकाश से
जग को क्रीड़ा का अवसर दें ।

(चन्द्रकिरण से)

मैं और तुम

●

मैं और तुम
मैं तुम्हारे पास हूँ !
तुम सुमन हो, मैं तुम्हारी
मन्द मुग्ध सुवास हूँ ।
चन्द्रिका का ज्योति में जब
व्योम हँसता है अहा !
तब तुम्हारे वायु स्वर में,
मैं प्रकृति की साँस हूँ ।
सो रहा संसार जब,
निज साँस की शय्या बना
तव सजग रह तारिका सी,
ज्योति में उल्लास हूँ ।
इस जगत में मौन रहना,
मृत्यु का संवाद है
सुख तथा आनन्द के
अधिवास में मधुमास हूँ ।

(चन्दकिरण से)

काली घटा

●

यह घटा काली उठी !
किस अधर के चूमने को छलक यह प्याली उठी ।
प्रेम की-सी भ्रान्ति धुंधली
छा गई नभ के किनारे,
और चातक का करुण स्वर
शून्य में किसको पुकारे ?
आज विद्युत की हँसी में सिहर हरियाली उठी ।
अब न पल भर सह सकूँगा,
बोलने की ध्वनित दूरी ।
पास तुमको खींच लूँगा,
बात रह जाये अधूरी
लो तुम्हीं बरसो. समझ लूँ घटा घुँघराली उठी ।
यह घटा काली उठी ।

(आकाश गंगा से)

साधना-संगीत

●

आज मेरी गति तुम्हारी आरती बन जाय !
आरती घूमे कि खिंचता जाय
रंजित क्षितिज-घेरा,
धूम सा जलकर भटकता,
उड़ चले सारा अँधेरा
हो शिखा स्थिर, प्राण के—
प्रण की अचल निष्कंप रेखा,
हृदय की ज्वाला, हँसी में
दीप्ति की हो चित्र-रेखा ।
साँस ही मेरी विनय की भारती बन जाय !
आज मेरी गति तुम्हारी आरती बन जाय !
यह हँसी मन्दिर बने !
मुस्कान क्षण हों द्वार मेरे,
तुम मिलो या मैं मिलूँ
ये मिलन-पूजा हार मेरे ।
आज बन्धन ही बनेंगे,
मुक्ति के अधिकार मेरे
क्यों न मुझसे अवतरित,
होकर रहो स्वरकार मेरे
आज वंशी प्रेम की हो चिर व्रती बन जाय !
आज मेरी गति तुम्हारी आरती बन जाय !

(आकाश गंगा से)

आमुख

•

वाणी दो, हे नीलकंठ ! हे किरात कार्मुकी !
गूँज उठे व्योम, वन, प्रान्त, गिरि कन्दरा ।
शब्द वेध की अलक्ष्य लक्ष-लक्ष ध्वनि में,
नृत्य करे काव्य और काव्य में वसुन्धरा ।।

पूर्व काल की कथा का कठिन कोदंड है,
उसमें प्रत्यंचा चढ़े मेरे महागीत की ।
मेरे प्रभु ! वीर एकलव्य तीक्ष्ण तीर है,
जो भविष्य बेधता है शक्ति ले अतीत की

हे किरातराज ! मैं किरात-गीत गाऊँ जो,
'जटाटवी गलज्जल-प्रवाह' मान हों ।
'अइउण्' 'हल्' जैसे डमरुनिनाद-सूत्र
काव्य-पुष्प लेके मेरे एकलव्य -गान हों ।।

और हे किरातकर्मी आदिकवि वाल्मीकि !
मेरी दृष्टि में सदा तुम्हारे श्रीचरण हैं ।
एक अश्रु-वाक्य में ही क्रौंचि यश पा गई
मेरे काव्यगान भी तुम्हारी ही शरण है ।।

एक बार 'मा निषाद्......' कह कर तुमने,
रोकी थी 'सुगति' एक निदर्य निषाद की ।
आज दूसरे निषाद के सुकीर्ति गान में,
चाहता सुमति मैं हूँ काव्य के प्रसाद की ।।

प्रभु ! एकलव्य ऐसा बीज है कि जिसने,
साधना-शिला के बीच अग्नि रस पाया है ।
और शुष्कता में भी हरीतिमा को जन्म दे
जीवन का सत्य, शून्य नभ में सजाया है ।।

एकलव्य ! मैंने आज ऐसे शब्द पाए हैं,
जो तुम्हारे शब्द-वेधी वाणों से प्रचंड है।
झंझना उठी हैं ये दिशाएँ एक बार ही,
पक्षपाती भावनाएँ खंड शत खंड हैं ।।

शब्द बाण ऐसे शब्द-बाण जो दिगन्त में,
रवि-किरणों की भाँति छूटते हैं क्षण में।
भरता है व्योम का विशाल मुख निःक्षत,
एक-एक विश्व मौन एक-एक कण में।

देख जावें द्रोण, यह साधना तुम्हारी है,
मृत्तिका की मूर्ति-बीच साधना है स्फूर्ति की।
जड़ में भी चेतन की सृष्टि करती है जो
प्राण के कृपाण में है धार प्रण-पूर्ति की ।।

देखूं, कौन है जो रोके या कि रुद्ध करे,
यह निषाद-नाद जो स्वरान्त है गीत में।
किन्तु अवरोध में जो अग्रगण्य गेय है,
वर्तमान में सजीव, चाहे हो अतीत में ।।

—एकलव्य से

नाटक :—

दीप-दान

पात्र-परिचय

(प्रवेशानुसार)

कुँवर उदयसिंह : चित्तौड़ के स्वर्गीय महाराणा साँगा का सबसे छोटा पुत्र । राज्य का उत्तराधिकारी । आयु १४ वर्ष ।

पन्ना (धाय माँ) : खीची जाति की राजपूतानी । कुँवर उदयसिंह का संरक्षण करनेवाली धाय । आयु ३० वर्ष ।

सोना : रावल सरूपसिंह की लड़की । अत्यन्त रूपवती और नटखट । कुँवर उदयसिंह के साथ खेलनेवाली । आयु १६ वर्ष ।

चन्दन : धाय माँ का पुत्र । साहस और स्नेह का प्रतीक, आयु १३ वर्ष ।

सामली : अन्तःपुर की परिचारिका । आयु २८ वर्ष ।

कीरत : जूठी पत्तल उठानेवाला बारी । आयु ४० वर्ष ।

बनवीर : महाराणा साँगा के भाई पृथ्वीराज का दासी-पुत्र । क्रूर और विलासी । आयु ३२ वर्ष ।

●

काल : सन् १५३६ ई०
समय : रात्रि का दूसरा प्रहर ।
स्थान : कुँवर उदयसिंह का कक्ष ।
निर्देश : पूरी सजावट है । दरवाजों पर रेशमी परदे पड़े हैं । एक पार्श्व में उदयसिंह की शैया है । सिरहाने पन्ना (धाय माँ) के बैठने का स्थान है ।

[नेपथ्य में नारियों की सम्मिलित नृत्य-ध्वनि । मृदंग और कड़खे की रमक । फिर नारियों का सम्मिलित कण्ठ से गान ।]

कंकण बंधन रण चड़ण, पुत्र बधाई चाव ।
तीन दहाड़ा त्याग रा, काँई रंक कांई राव ॥
काँई रंक काँई राव ॥
काँई रंक काँई राव ॥

[फिर नृत्य की ध्वनि]

घर जाताँ ध्रम पलटताँ, त्रिया पडंता ताव ।
एक तीनहु दिन मंरण रा, काँई रंक काँई राव ॥
काँई रंक काँई राव ॥
काँई रंक काँई राव ॥

[यह संगीत नेपथ्य में धीरे-धीरे हलका सुनाई पड़ता है ।]

उदयसिंह : (दौड़ता हुआ आता है, पुकारता है) धाय माँ, धाय माँ ! (कोई उत्तर नहीं मिलता। अपने-आप) धाय माँ कहाँ हैं ! (फिर पुकार कर) धाय माँ !

पन्ना : (भीतर से आती हुई) क्या है कुँवर ! (देखकर) अरे, साँझ हो गई, और तुमने अभी तक अपनी तलवार म्यान में नहीं रक्खी ?

उदयसिंह : धाय माँ, देखो न कितनी सुन्दर-सुन्दर लड़कियाँ नाच रही हैं। गीत गाती हुई तुलजा भवानी के सामने नाच रही हैं। चलो न । देखो न !

पन्ना : मैं नहीं देख सकूँगी, लाल !

उदयसिंह : नहीं धाय माँ, चलो न । थोड़ी देर के लिए चलो न ।

पन्ना : नहीं कुँवर, मुझे इस समय नाच देखना अच्छा नहीं लगता ।

उदयसिंह : क्यों नहीं अच्छा लगता ? मैं तो उन्हें बड़ी देर तक देखता रहा । और वे भी . . . वे भी तो मुझे बड़ी देर तक देखती रहीं, धाय माँ ! मैं कितना अच्छा हूँ, धाय माँ !

पन्ना : बहुत अच्छे हो । तुम तो चित्तौड़ के सूरज हो । महाराणा साँगा जी के छोटे कुँवर । सूरज की तरह तुम्हारा उदय हुआ है । तभी तो तुम्हारा नाम कुँवर उदयसिंह रक्खा गया है ।

उदयसिंह : (हँसकर) अच्छा । यह बात है । पर क्या रात में भी सूरज का उदय होता है । मैं तो रात में भी हँसता खेलता रहता हूँ ।

पन्ना : दिन में तो तुम चित्तौड़ के सूरज हो, कुँवर ! और रात में तुम राजवंश के दीपक हो । महाराणा साँगा के कुल दीपक ।

उदयसिंह : कुल-दीपक ! कहीं तुम मुझे दान न कर देना, धाय माँ ! वे नाचने वाली लड़कियाँ तुलजा भवानी की पूजा में दीपदान करके ही नाच रही हैं । वे दीपक छोटे-से कुंड में कैसे नाचते हैं, धाय माँ ! (मचले हुए स्वर में) चलो न, धाय माँ ! तुम उनका दीप-दान देख लो । जिस तरह उनके दीपक नाचते हैं उसी तरह वे भी नाच रही हैं ।

पन्ना : मैं इस समय कुछ नहीं देखूँगी, कुँवर !

उदयसिंह : (रूठ कर) तो जाओ, मैं भी नहीं देखूँगा । मैं उदयसिंह भी नहीं बनूँगा, और कुल-दीपक भी नहीं । कुछ नहीं बनूँगा ।

पन्ना : रूठ गये । कुँवर, रूठने से राजवंश नहीं चलते, जाओ ! विश्राम करो । देखो, तुम्हारे कपड़ों पर धूल छा रही है । दिन भर तुम तलवार का खेल खेलते रहे, थक गये होगे । जाओ, शैया पर सो जाओ । मैं तुम्हारी तलवार अलग रख दूँगी ।

उदयसिंह : (रूठे हुए स्वर में) तब तो मैं तलवार के साथ ही सो जाऊँगा ।

पन्ना : अभी वह समय नहीं आया, कुँवर ! चित्तौड़ की रक्षा में तुम्हें कई दिनों तक तलवार के साथ ही सोना पड़ेगा ।

उदयसिंह : (रूखे स्वर में) तुम्हें तलवार से डर लगता है ? जो बार बार तलवार रखने को कहती हो ?

पन्ना : तलवार से डर ! चित्तौड़ में तलवार से कोई नहीं डरता, कुँवर ! जैसे लता में फूल खिलते हैं न, वैसे ही यहाँ वीरों के हाथों में तलवार खिलती है. . . .तलवार चमकती है ।

उदयसिंह : (उसी तरह रूखे स्वर में) अब मेरा मन बहलाने लगी ! तुम नाच देखने नहीं चलती तो मैं ही अकेला चला जाऊँगा। मैं जाता हूँ। (जाने को उद्यत होता है)

पन्ना : नहीं कुँवर ! तुम कभी रात में अकेले नहीं जाओगे । चारों तरफ जहरीले सर्प घूम रहे हैं । किसी समय भी तुम्हें डँस सकते हैं ।

उदयसिंह : सर्प ! कैसे सर्प ?

पन्ना : तुम नहीं समझोगे, कुँवर ! जाकर सो जाओ । थक गये होगे । भोजन के लिए मैं जगा लूँगी ।

उदयसिंह : नहीं माँ, आज नहीं भोजन करूँगा और न अपनी शैया पर ही सोऊँगा । (प्रस्थान के लिए उद्यत)

पन्ना : (रोकते हुए) सुनो, सुनो कुँवर ?

[उदयसिंह का प्रस्थान]

पन्ना : चले गये । कुंवर का रूठना भी मुझे अच्छा लगता है । मना लूँ । नाच, गान, दीप-दान ! इसी से चित्तौड़ की रक्षा होगी ? चित्तौड़ में यह बहुत हो चका । और अब तो बनवीर का राज्य है ।

[नूपुर-नाद करते हुए एक किशोरी का प्रवेश]

किशोरी : :धाय माँ को प्रणाम ।

पन्ना : कौन ?

किशोरी : मैं हूँ, सोना ! रावल सरूप सिंह की लड़की । कुँवर जी कहाँ हैं !

पन्ना : वे थक गये हैं । सोना चाहते हैं ।

सोना : सोना चाहते हैं । तो मैं भी तो सोना हूँ !

[अट्टहास]

पन्ना : चुप रह सोना ! कुँवर जी रूठ कर सोने चले गये हैं । तुम लोग कुँवर को नाच-गाने की ओर खींचना चाहती हो !

सोना : क्या तुलजा भवानी के सामने नाचना कोई बुरी बात है ? आज हम लोगों ने दीप-दान किया और मनभर कर नाचा । यों (नाचती है।) कुँवर जी भी तो बड़ी देर तक हमारा नाच देखते रहे ! मैं भी उनको देख कर बहुत नाची। उनको हमारा नाच पहुत अच्छा लगा । बहुत अच्छा ! देखो, पैरों की यह ताल (नूपुर की झनकार)

पन्ना : बस बस, सोना ! अगर तू रावल जी की लड़की न होती तो. . . .

सोना : कटार भोंक देतीं ! कटार ! (अट्टहास करती है।) धाय माँ, तुमने उदयसिंह के सामने तो अपने पुत्र चन्दन को भी भुला दिया । तुम्हारे मातृत्व में उदयसिंह ऐसे समाये हैं, जैसे कटार को अपने हृदय में रखने के लिए म्यान ने अपना हृदय खोखला कर दिया हो ! (हँसती है) खोखला !!

पन्ना : यह कविता रहने दो ! जानती नहीं बनवीर का राज्य है ?

सोना : ओहो, बनवीर ! उन्हें श्री महाराजा बनवीर कहो। बागड़ के इलाके से वे हाथी-घोड़ों की झूल लाये थे. . .हाँ, झूल ! इतनी बड़ी । हमारे लिए भी तो वे एक रेशम की झूल लाये थे । उन्हें सिर से ओढ़ कर नाचने से ऐसा लगता था, ऐसा लगता था, जैसे मकड़ी के जाले के आर-पार चन्द्रमा की किरणें थिरक रही हैं। हाँ . . . .

पन्ना : बहुत नाचती हो, बनवीर की तुम पर बड़ी कृपा है !

सोना : द्रौपदी के चीर की तरह ! आज प्रातःकाल उन्होंने मुझे बुलाया और कहा. . . धाय माँ ! तुम बुरा तो नहीं मानोगी ?

पन्ना : मैं क्यों बुरा मानूँगी ?

सोना : उन्होंने कहा, महल में धाय माँ अरावली पहाड़ बन कर बैठ गई है । अरावली पहाड़ । (हँसती है ।) तो तुम लोग बनास नदी बन कर बहो न ! खूब नाचो, गाओ । यों आज कोई उत्सव का दिन नहीं था, फिर भी उन्होंने कहा, मेरे बनवाये हुए मयूर पक्ष कुंड में दीप-दान करो। मालूम हो, जैसे भवसागर में आत्माएँ तैर रही हों, या जैसे मेघ पानी-पानी हो गये हों और बिजलियाँ टुकड़े-टुकड़े हो गई हों !

पन्ना : बड़ी उमंग में हो आज ?

सोना—दीपकों के साथ उमंगें भी लौ देने लगी हैं, धाय माँ ! सारा जीवन ही एक दीपावली का त्योहार बन गया है ।

पन्ना : तो यही त्यौहार मना रही हो तुम ?

सोना : मैं ही क्या, सारे नगर-निवासी यह त्योहार मना रहे हैं। नहीं मना रही हो, तो तुम ! धाय माँ, तुम !! पहाड़ बनने से क्या होगा ? राजमहल पर बोझ बन कर रह जाओगी, बोझ ! और नदी बनो तो तुम्हारा बहता हुआ बोझ, पत्थर भी अपने सिर पर धारण करेंगे, पत्थर भी ! आनन्द और मंगल तुम्हारे किनारे होंगे, जीवन का प्रवाह होगा, उमंगों की लहरें होंगी जो उठने में गीत गायेंगी, गिरने में नाच नाचेंगी। गीत और नाच, धाय माँ ! गीत और नाच !! जैसे सुख और सुहाग एक साथ हँस रहा हो ! और जब दीप-दान का दीपक अपने मस्तक पर लेकर चलोगी, धाय माँ, तो ज्ञात होगा, धाय माँ, जैसे शुक्र तारे को मस्तक पर रखकर उषा आ रही है।

पन्ना : बनवीर के अनुग्रह ने तुम्हें पागल बना दिया है, सोना !

सोना : धाय माँ ! पागल कौन नहीं है ? महाराणा विक्रमादित्य अपने सात हजार पहलवानों के साथ पागल हैं। मल्ल-क्रीड़ा ही तो उनका पागलपन है ! महाराज बनवीर, महाराणा विक्रमादित्य की आत्मीयता से पागल हैं। वे विक्रमादिय के अन्त:पुर में प्रलाप करते हैं। यह आनन्द ही उनका पागलपन है ! सारा नगर आज के त्यौहार में पागल है। तुम कुँवर उदयसिंह के स्नेह में पागल हो और मैं ? (हँसकर) मेरी कुछ न पूछो, धाय माँ ! मैं तो इन सबके पागलपन में पागल हूँ ! तुम चाहे जो कहो ! हाँ, तो कुँवर उदयसिंह कहाँ हैं ?

पन्ना : कुँवर उदयसिंह को छोड़ो, सोना ! वे बहुत थक गये हैं। अब सो रहे होंगे। तुम जाओ। यहाँ कहीं तुम्हारा पागलपन कम न हो जाय !

सोना : मेरा पागलपन ? धाय माँ, पागलपन कहीं कम होता है ? पहाड़ बढ़ कर कभी छोटे हुए हैं ? नदियाँ आगे बढ़ कर कभी लौटी हैं ? फूल खिलने के बाद कभी कली बने हैं ? सब आगे बढ़ते हैं। नहीं बढ़ती हो तो सिर्फ तुम। सदा एक-सी। तुम्हारा पागलपन भी सदा एक-सा। मैं रावल की बेटी हूँ, शायद सामन्त की बेटी बनूँ। शायद महाराज की बेटी बनूँ ! कुछ बढ़ कर ही बनूँगी। और तुम धाय माँ ? सिर्फ धाय माँ ही रहोगी !

पन्ना : सोना ! मुझे किसी से ईर्ष्या नहीं है। मैं जैसी हूँ अच्छी हूँ। राजसेवा में जीवन जा रहा है—यही मेरे भाग्य की बात है।

सोना : भाग्य ! भाग्य तो सबके होता है, धाय माँ ! ये नूपुर मेरे पैरों में पड़े हैं तो इनका भी भाग्य है। मेरे पैरों की गति में गीत गाते हैं, तो वह भी इनका भाग्य है। मेरे आगमन का संदेश पहले ही पहुँचा देते हैं, तो वह भी इनका भाग्य है। और जब मेरे पैर रुक जाते हैं, तो ये मौन हो जाते हैं। वह भी इनका भाग्य है। भाग्य तो सबके होता है, धाय माँ ! तुम नगर के उत्सव में भाग नहीं ले रही हो, न लो। महाराज बनवीर का साथ नहीं दे रही हो, न दो ! मैं कौन होती हूँ बीच में बोलने वाली !

पन्ना : तो क्या मेरे उत्सव में जाने और न जाने का सम्बन्ध बनवीर की इच्छा से है ?

सोना : फूल कुछ कहता है ? अपनी सुगन्धि भेज देता है। दीपक कोई संदेश भेजता है ? पतंगे आप-से-आप आ जाते हैं।

पन्ना : मैं जानती हूँ इस दीपक की आग में मैं जल जाऊँगी

सोना : तो कुँवर को भेज देतीं। उनको तो कोई आग न छू सकती ?

पन्ना : कैसे भेज देती ? इतने आदमियों के बीच उसे कैसे भेज देती ? महाराज साँगा के वंश के एक वही तो उजाले हैं। महाराणा रतनसिंह तीन ही वर्ष राज करके सूर्य-लोक चले गये। विक्रमादित्य भी बनवीर की कूटनीति से अधिक दिनों तक. . . .

सोना : धाय माँ, तुम विद्रोह की बातें करती हो।

पन्ना : आँधी में आग की लपट तेज ही होती है, सोना ! तुम भी उसी आँधी में लड़खड़ा-कर गिरोगी। तुम्हारे ये सारे नूपुर बिखर जायेंगे। न जाने किस हवा का झोंका तुम्हारे इन गीत की लहरों को निगल जायेगा। यह सुख और सुहाग पास-पास उठे हुए दो बुलबुलों की तरह बिना सूचना दिये फूट जायेगा। चित्तौड़ राग-रंग की भूमि नहीं है, जौहर की भूमि है। यहाँ आग की लपटें नाचती हैं ,सोना जैसी रावल की लड़कियाँ नहीं !

सोना : (क्रोध से चीख कर) धाय माँ !

पन्ना : तोड़ो ये नूपुर ! बनवीर की आग की कलियो ! तुम्हारे पीछे काली राख है—यह मत भूल जाना। ये अतृप्त इच्छाओं की चिनगारियाँ अधजली होकर चिटकेंगी और चित्तौड़ की आँखों में किरकिरी बनकर कसकेंगी। यह आग की ज्वाला हवनकुंड को भी जला देगी, सोना ! इसे बुझा दो। तुम्हारे इस त्यौहार से चित्तौड़ परिचित नहीं है। यहाँ का त्यौहार आत्मबलिदान है। यहाँ का गीत मातृभूमि की वन्दना को गीत है। उसे सुनो और समझो।

सोना : (शान्त स्वर में) समझ लिया, धाय माँ !

पन्ना : तो यहाँ से जाओ। देखना, इस त्यौहार के पीछे कोई कूटनीति न हो। बनवीर से पूछना, इस रास-रंग का क्या अर्थ है ?

सोना : वह मेरी समझ में नहीं आवेगा, धाय माँ !

पन्ना : तो जाओ, दिशाओं की तरह उसकी हँसी में डूबी रहो। तुमसे प्रतिध्वनि भी न निकल सके।

[सोना का धीरे-धीरे प्रस्थान। उसके नूपुर धीरे-धीरे बजते हुए दूर तक सुन पड़ते हैं।]

पन्ना : अँधेरी रात ! यह रास-रंग !! नगर के सब लोगों का जमाव !! कुँवर उदयसिंह के लिए बुलावा !!! यह सब क्या है ?

[चन्दन का प्रवेश]

चन्दन : (दूर से पुकारते हुए) माँ ! माँ !

पन्ना : क्या, मेरे लाल ?

चन्दन : माँ ! इतनी कविता बनाने वाली, इतने गीत गाने वाली, इतना नाचने वाली सोना धीरे-धीरे कैसे जा रही थी ? गुम-सुम, जैसे किसी ने साँप का जहर खींच लिया हो !

पन्ना : साँप का जहर ?

चन्दन : हाँ ज़हरीली तो है ही । जब बोलती है तो बातों की ऐसी चोट करती है कि कुछ कहते ही नहीं बनता । वह तो हमेशा उछलती-कूदती जाती थी । आज तो जैसे उसके पैर में मोच आ गई हो ।

पन्ना : आई थी कुँवर को बुलाने, अपना नाच दिखलाने । मैंने कुँवर को नहीं जाने दिया तो बुरा मान गई !

चन्दन : हाँ, माँ, कुछ दिनों से कुँवर हमार साथ नहीं खेलते, इसी के यहाँ चले जाते हैं । मैं भी उनके पीछे जाता हूँ । वह कुँवर की ओर देखती है और कुँवर उसकी ओर देखते हैं । कहते तो कुछ नहीं, बस देखते हैं । पता नहीं इस तरह देखने से क्या होता है । देखने से क्या होता है, माँ !

पन्ना : कुछ नहीं, लोग देवता के दर्शन करते हैं न । तो उन्हें आनन्द मिलता है । मैं कुँवर से कह दूंगी कि वे भी देवता की तरफ देखा करें, सोना की तरफ नहीं ।

चन्दन : तो सोना बुरा न मान जायगी, माँ !

पन्ना : लोगों को बुरा मानने से क्या होता है ! भगवान् को बुरा नहीं मानना चाहिए । तुम तो किसी को नहीं देखते, चन्दन ?

चन्दन : देखता हूँ माँ ! पहाड़ी खरगोश को । ओह, कैसी छलाँग भरता है माँ । जैसे उसमें बिजली भरी हो । पलक मारते ही पहाड़ की इस चोटी से उस चोटी पर पहुँच जाता है ! पहाड़ी खरगोश से बढ़ कर और कौन-सी चीज है, माँ ! उसे देखकर फिर किसी को देखने की इच्छा नहीं होती !

पन्ना : पहाड़ी खरगोश का क्या कहना है . चन्दन उसी तरह वीरों को भी धावा करना चाहिए ।

चन्दन : हाँ, मैं भी उतनी ही तेजी से दौड़ सकूँगा । जमीन से आसमान तक ।

पन्ना : ज़मीन से आसमान तक कोई नहीं दौड़ता । हाँ, तू नाच देखने तो नहीं गया था ?

चन्दन : माँ, धावा करने वाले कहीं नाच देखते हैं ! मुझे तो वह अच्छा नहीं लगता ! हाँ, कुँवर को अच्छा लगता है ! कुँवर कहाँ है, माँ !

पन्ना : रूठ कर सो गये हैं ।

चन्दन : क्यों, भोजन करने में ! उन्होंने भोजन कर लिया ?

पन्ना : नहीं । पर कुँवर तुम्हारी उठाने से न उठेंगे । तुम भोजन कर लो । मैं थोड़ी देर बाद उन्हें उठा कर, बहला कर भोजन करा दूँगी ।

चन्दन : मुझे अकेले भोजन करना अच्छा न लगेगा, माँ ।

पन्ना : भोजन कर लो, मेरे चन्दन ! मेरे लाल ! सज्जा ने तुम्हारे लिए अच्छा भोजन बनाया है । वह तुम्हें अच्छी-अच्छी बातें सुनाती हुई भोजन करा देगी । मैं भी अभी आती हूँ । तुम्हारी माला टूट गई थी, उसी को ठीक कर रही हूँ । बस, थोड़े दाने और रह गये हैं ।

चन्दन : माँ, कल कुँवर की माला भी ठीक कर देना । वह भी टूट रही है । सोना ने उसे पकड़ कर खींच दिया था ।

पन्ना : अच्छा चन्दन ! वह भी ठीक कर दूंगी ।

[चन्दन का प्रस्थान]

पन्ना : (सोचते हुए) मेरा भोला लाल । जब पूछा कि तुम तो किसी को नहीं देखते तो कहता है देखता हूँ, माँ ! पहाड़ी खरगोश को । (हँसते हुए) पहाड़ी खरगोश को ! वाह रे मेरे चन्दन ! कहता है, धावा करनेवाले कहीं नाच देखते हैं ! वह तो दौड़ते हैं जमीन से आसमान तक. . . जमीन से आसमान तक ।

[एकाएक घर की कुछ चीज़ों के गिरने की धमक । शीघ्रता से सामली का प्रवेश]

सामली : (चीखकर पुकारती हुई) धाय माँ ! धाय, माँ !

पन्ना : कौन, कौन सामली ?

सामली : (बिलखते हुए) धाय माँ, धाय माँ । कुँवर कहाँ हैं ? कुँवरजी कहाँ हैं ?

पन्ना : क्यों, कुँवरजी को क्या हुआ ?

सामली : उनका जीवन संकट में है ।

पन्ना : कहाँ ! कैसे ? यह तुम क्या कह रही हो ?

सामली : उनका जीवन बचाओ । धाय माँ !

पन्ना : (चीख कर) सामली । कहाँ हैं कुँवरजी ।

[अन्दर की तरफ भागती है ।]

सामली : (बिलखते हुए) हाय ! सर्वनाश हो रहा है ! क्या मेवाड़ को ऐसे ही दिन देखने थे ? क्या चित्तौड़ के साके का यही फल होना था ? हाय ! क्या हो रहा है ! तुलजा भवानी ! तुम चित्तौड़ की देवी हो । कैसे कहूँ कि तुम्हारे त्रिशूल में अब शक्ति नहीं रही । मेवाड़ का भाग्य. . . .

पन्ना : (फिर प्रवेश कर) सो रहा है । मेरा कुँवर सो रहा है । कहीं तो कुछ नहीं हुआ । कुँवरजी रूठ गये थे, वे तलवार लिये हुए भूमि पर ही सो गये । तलवार उनके हाथों से खिसक गई है पर वे तो शान्ति से सो रहे हैं । मेरे कुँवर को कुछ नहीं हुआ ।

सामली : कुँवर अच्छे हैं । तुलजा भवानी कुशल करें ! पर धाय माँ ! महाराणा विक्रमादित्यजी की हत्या हो गई !

पन्ना : (चीखकर) महाराणा की हत्या हो गई ? किसने की ?

सामली : बनवीर ने । महाराणा सो रहे थे । उसने अवसर पाकर उनकी छाती में तलवार भोंक दी ।

पन्ना : (चीखकर) हाय ! महाराणा विक्रमादित्यजी ! यह मैं पहले ही जानती थी (सिसकने लगती है ।)

सामली : बनवीर ने नगर भर में आज नाच-गान का त्योहार मनवाया जिससे नगर-निवासियों का ध्यान नाच-रंग में ही रहे । मौका देखकर वह राजमहल गया । अन्तःपुर में वह आता-जाता था । किसी ने रोका नहीं । उसने महाराणा के कमरे में जाकर उनकी हत्या कर दी ! (सिसकियाँ लेने लगती हैं ।)

पन्ना : (स्थिर होकर) आज कुसमय नाच-रंग की बात सुनकर मेरे मन में शंका हुई थी । इसीलिये मैंने कुँवर को वहाँ जाने से रोक दिया था । संभव था कि कुँवर वहाँ जाते और बनवीर अपने सहायकों से कोई कांड रच देता ।

सामली : इसीलिए मैं दौड़ आयी हूँ, धाय माँ ! लोगों ने बनवीर को कहते सुना है कि वह कुँवर उदयसिंह को भी सिंहासन का अधिकारी समझ कर जीवित रहने नहीं देगा। वह निष्कंटक राज्य करेगा। धाय माँ !

पन्ना : विलासी और अत्याचारी राजा कभी निष्कंटक राज्य नहीं कर सकता।

सामली : लेकिन रक्त से भीगी तलवार लेकर वह सीना ताने हुए अपने महल में गया है।

पन्ना : लोगों ने उसे पकड़ा नहीं ? सैनिक चुपचाप देखते ही रहे ?

सामली : सैनिकों को उसने अपनी तरफ मिला लिया है। लोग उससे डरते हैं। महाराणा विक्रमादित्य का राज्य भी तो ऐसा नहीं था कि लोग उनसे प्रेम रखते ? उनके पहलवानों की सहायता से राज्य नहीं चल सकता। सभी सामन्त महाराणा से असन्तुष्ट थे।

पन्ना : अब क्या होगा ?

सामली : थोड़ी देर बाद ही वह कुँवरजी को मारने आयेगा। आज की रात बहुत अँधेरी है। आज की रात में ही वह अपने को पूरा महाराणा बना लेना चाहता है। किसी तरह से हो कुँवरजी की रक्षा होनी चाहिए धाय माँ।

पन्ना : कुंवर जी की रक्षा. . . (सोचते हुए) कुँवरजी की रक्षा ! अवश्य होगी. . . अवश्य होगी। अब मेवाड़ का उत्तराधिकारी एक यही तो राजपूत-रक्त है। दासी-पुत्र बनवीर को चित्तौड़ सहन नहीं कर सकेगा।

सामली : यह तो आगे की बात है पर तुम कुँवरजी की रक्षा किस तरह करोगी ?

पन्ना : मैं ? मैं इस अँधेरी रात में ही उसे लेकर कुंमलगढ़ भाग जाऊँगी।

सामली : और चन्दन कहाँ रहेगा ?

पन्ना : जहाँ भगवती तुलजा उसे रक्खेंगी। मेरे महाराणा का नमक मेरे रक्त से भी महान् है। नमक से रक्त बनता है, रक्त से नमक नहीं।

सामली : धन्य हो, धाय माँ। पर तुम अँधेरी रात में नहीं भाग सकोगी ?

पन्ना : क्यों ? अँधेरी रात में मुझे कौन जानेगा ? कौन पहिचानेगा ?

सामली : तुम महलों से निकल भी न सकोगी। आते समय मैंने देखा था कि बनवीर के सैनिक तुम्हारा महल घेरने को आ रहे थे। एक ओर से तो तुम्हारा महल घिर ही चुका था।

पन्ना : हा ! भगवान् एकलिंग ! अब क्या होगा ?

सामली : जैसे भी हो कुँवरजी की रक्षा तुम्हें करनी ही है।

पन्ना : मुझे सैनिकों की सहायता नहीं मिल सकती ?

सामली : सैनिक तो उसके हैं, धाय माँ।

पन्ना : और सामन्त ।

सामली : उनमें अभी इतना साहस नहीं है।

पन्ना : तब मैं स्वयं तलवार लेकर कुँवर की रक्षा करूँगी। भैरवी बन कर युद्ध करूँगी। मरते-मरते मैं उसकी तलवार के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगी। उसके और मेरे कुँवर के बीच में मेरे खून का समुद्र लहराएगा जिसे वह इस जीवन में पार भी न कर सकेगा।

सामली : उसके साथ सैनिक भी हो सकते हैं, धाय माँ ! युद्ध में तुम्हारे प्राण जायेंगे और कुँवरजी भी न बचेंगे ।

पन्ना : तो फिर क्या करूँ। सामली ! घुटने टेककर कुँवर की जीवन-भिक्षा माँगूँगी। बनवीर मनुष्य हैं । उसके मन में कुछ तो दया होगी ।

सामली : राजा की हत्या करने के बाद दासी-पुत्र मनुष्य है ? वह जंगली पशु से भी गया-बीता है ।

पन्ना : फिर मेरे कुँवर कैसे बचेंगे ? कैसे बचेंगे मेरे कुँवर !

[सिसकी]

सामली : इसका उपाय मैं क्या बताऊँ, धाय माँ ! मैं तो महल की एक परिचारिका हुँ ! मैं क्या कहूँ ! पर इतना कहे जाती हूँ कि वह क्रूर और अत्याचारी बनवीर आता ही होगा । सर्प की तरह उसकी भी दो जीभें हैं जो एक रक्त से नहीं बुझेंगी । उसे दूसरा रक्त भी चाहिए । और वह कुँवर का. . . तुम कुछ बोल नहीं रही हो धाय ! आँखें बन्द कर क्या सोच रही हो ?

पन्ना : भगवती तुलजा का ध्यान कर रही हुँ कि वे मुझे शक्ति दें कि मैं कुँवर की रक्षा कर सकूँ ।

सामली : इस समय कुँवर की रक्षा शक्ति से नहीं हो सकेगी । कोई युक्ति ही काम दे सकती है (चौंक कर) कौन आ रहा है ?

पन्ना : (जोर से) दरवाजे पर कौन है ?

[कीरत बारी का प्रवेश]

कीरत : अन्नदाता ! कीरत बारी हौं । धाय माँ के चरन लागों ।

पन्ना : कीरत ! तुम हो ? आ गये ? बाहर तो कोई नहीं है ?

कीरत : अन्नदाता ! बाहर सिपाहियों का डेरा लग रहा है । जान नहीं पड़ता अन्नदाता कै आधी रात कौ जे का हो रहा है । पैंडें में किसी का भी पैसारा नहीं हो पाता । मैं तो बारी हौं इससे कोई कुछ बोला नहीं ।

पन्ना : तो तुम बेखटके चले आये ?

कीरत : अन्नदाता ! मैं तो जूठी पत्तल उठाता हूँ । कोई मालमता तो मेरे पास है नहीं । टोकनी है और उसमें पत्ते हैं । कुंवर जू ने ब्यारू करली धाय माँ ? मैं जूठन पा लूँ ।

पन्ना : नहीं ।

कीरत : कुंवर जू जुग-जुग जिएँ धाय माँ ! जब से कुँवर जू बूंदी से आये हैं तब से सगर महल में उजियारा फैल गया है। राना विक्रमाजीत जब हर भजन करेंगे तो धाय माँ, अपना चौंर छतर कुंवर जू को ही तो सौंपेंगे । और जब कुंवर जू राना होयेंगे तो सगर जहान उनको बन्दगी करने आयेगा । सच जानो धाय माँ ! कुंवर जू के सरूप दर्शन दाखिल हैं । मैं तो उनके लिए अपनी जान तक हाजिर कर सकता हूँ । (ठहर कर) धाय माँ, कुछ सोच रही हैं ?

पन्ना : (चौंककर) एँ ! हाँ, मैं सोच रही हूँ (सामली से) तुम बाहर जाके देखो सिपाही कहाँ-कहाँ खड़े हैं और कितने सिपाही हैं ।

सामली : बहुत अच्छा । धाय माँ ! मैं जाती हूँ । (प्रस्थान)

पन्ना : तो कीरत ! तुम कुंवरजी को बहुत प्यार करते हो ?

कीरत : अन्नदाता ! प्यार कहने में जबान पर कैसे आवे ? वो तो दिल की बात है । मौके पै ही देखा जाता है । और कहने को तो मैं कही चुका हूँ कि उनके लिए अपनी जान तक हाजिर कर सकता हौं !

पन्ना : जान तक हाजिर कर सकते हो ?

कीरत : ऐसी बातों में तिन तीर बाचा नई हराते, धाय माँ ! मौके पै ही देखा जाता है ।

पन्ना : तो वह मौका आ गया है, कीरत !

कीरत : मौका ! कैसा मौका ?

पन्ना : कुंवरजी को बचाने का ।

कीरत : कौन के सिर पै भैरू बाबा की आँख चढ़ी है जो कुंवरजी का बाल भी बाँका कर सके ? और कीरत के रहते ? धाय माँ, हँसी तो नहीं कर रही हैं ? अन्नदाता !

पन्ना : नहीं कीरत, हँसी का समय नहीं है । कुंवरजी के प्राण संकट में हैं ।

कीरत : कौन है जिसने सूरज पै धूर उछाली है ?

पन्ना : बनवीर ।

कीरत : अरे, वो बनबीर जो महाराना विक्रमाजीत के दरबार में बन्दर सरीखा नाचता है ?

पन्ना : बहुत बातों का समय नहीं है, कीरत ! बोलो कुंवरजी को बचाओगे ?

कीरत : तो मैं तलवार ले आऊँ !

पन्ना : तलवार लाने का समय नहीं है । इस समय लड़ने से काम नहीं चलेगा । एक तरकीब करना होगा ।

कीरत : हुकुम दें, अन्नदाता !

पन्ना : भवानी तुलजा ने मेरे मन में सब उपाय सुझा दिये हैं ।

कीरत : हाँ, ध्यान तो कर रही थीं आँख मूँद के ! तो भवानी ने कौन सा हुक्म करा ?

पन्ना : उसे मानोगे ?

कीरत : अन्नदाता, सिर माथे । सिर चढ़ा के मानूंगा ।

पन्ना : अच्छा, तो सुनो । तुम बारी हो । तुम्हें बाहर जाने से कोई नहीं रोकेगा । तुम टोकरी में तो जूठी पत्तल उठा के जाते ही हो ।

कीरत : ठीक कहती हैं, अन्नदाता ! आते वक्त भी किसी ने नहीं रोका ।

पन्ना : तो तुम कुंवर जी को टोकरी में लिटाकर उन पर गीली पत्तलें डाल कर महल से बाहर निकल जाओ ।

कीरत : वाह ! अन्नदाता ने खूब सोचा ! खूब सोचा ! मैं ऐसे निकल जाऊँगा कि सिपाही लोग मुंह देखते ही रह जायेंगे । तो कुंवर जी कहाँ हैं ?

पन्ना : सो रहे हैं । आज भूमि पर ही सो गये । उन्हें धीरे से उठाकर अपनी टोकरी में सुला लेना । वे जागने न पावें ।

कीरत : अन्नदाता ! उनको पता भी नहीं चलेगा कि वे कहाँ से कहाँ सो रहे हैं ।

पन्ना : (गहरी साँस लेकर) चित्तौड़ का राजकुमार पत्तल ओढ़ के सोयेगा । कौन जानता था !

कीरत : यह सब भाग की बात है, अन्नदाता ! आज पत्तल ओढ़ के सोयेंगे कल साल-दुशाला ओढ़ेंगे ।

पन्ना : तो तुम जाओ, जल्दी करो ।

कीरत : बहुत अच्छा, अन्नदाता ! कुँवरजी कहाँ है ?

पन्ना : मेरे कमरे में नीचे ही सो गये हैं। तुम उन्हें उठा के तो ले जा सकोगे

कीरत : अन्नदाता ! अगर हुकुम दें तो बनवीर तक को सिर पै उठा के ले जा सकता हूँ ।

पन्ना : ठीक है । तुम्हारी टोकरी तो काफी बड़ी है ।

कीरत : अन्नदाता! आपके जस ने ही तो मेरी टोकरी बड़ी कर दी है । सारे राजमहल की पत्तलें छोटी टोकरी में कैसे आ सकती है ? और अन्नदाता ! आज तो बनवीर के साथ बहुत सामन्तों ने खाया है । मैंने भी सोचा आज बड़ी टोकरी ले चलूं । सो वो ही लाया हूँ ।

पन्ना : तो चलो, मैं तुम्हारी मदद कर दूँ !

कीरत : अन्नदाता ! आप तकलीफ न उठायें । मैं सब कर लूँगा ।

पन्ना : और हाँ,कुंवरजी को लेकर तुम बेरिस नदी के किनारे मिलना । वहाँ जहाँ श्मशान है।

कीरत : ठीक है, अन्नदाता ! वहीं मिलूँगा । वहाँ मुझ पै किसी भी आदमी की नजर न पड़ेगी।

पन्ना : तो जाओ कीरत ! आज तुम जैसे एक छोटे आदमी ने चित्तौड़ के मुकुट को सम्हाला है । एक तिनके ने राजसिंहासन को सहारा दिया है । तुम धन्य हो !

कीरत : अन्नदाता ! धन्य तो आप हैं कि मुझको आपने ऐसी सेवा करने का काम सौंपा है । तो मैं चलूँ ?

[सामली का प्रवेश]

सामली : धाय माँ ! महल चारों तरफ सिपाहियों से घिर गया ! उत्तर की तरफ सात सिपाही हैं, बाकी तीनों तरफ बीस-बीस सिपाही पहरा दे रहे हैं । शायद उत्तर की तरफ के सिपाही बनवीर को लेने गये हैं ।

पन्ना : कोई चिन्ता की बात नहीं । सामली ! तुम यहीं ठहरना मैं अभी आती हूँ ।

सामली : देख के क्या करोगी ? मैं तो देख आयी हूँ । कुंवर को बचाने का कोई उपाय सोचो ।

पन्ना : मैं अभी आती हूँ । (कीरत से) चलो कीरत !

[दोनों का प्रस्थान]

सामली : न जाने धाय माँ क्या सोच रही हैं ! कीरत बारी भी तब से यहीं बना है । क्या होगा ? हाय ! बनवीर ने महाराणा को रक्त में नहला दिया । दुष्ट बनवीर ! ....तुझे नर्क में भी चैन न मिलेगा । कुँवर उदयसिंह पर आँख लगाई है । भवानी ! कुँवर की रक्षा करो ! रक्षा करो. . .

[पन्ना का प्रवेश]

पन्ना : अब ठीक है । कुँवर की रक्षा हो गयी ।

सामली : (प्रसन्नता से) हो गयी ! हो गयी । हो गयी ! कैसे ?

पन्ना : कीरत ने अपनी टोकरी में कुँवर को सुला दिया । ऊपर से पत्तलें ढक लीं और उन पर पानी छिड़क दिया । वह उन्हें लेकर बेखटके महल से बाहर हो जायगा ।

कोई उससे कुछ पूछेगा भी नहीं। कुँवर जी बच गये ! कुँवर जी बच गये !

सामली : वाह, वाह, धाय माँ ! बहुत अच्छा सोचा, बहुत अच्छा सोचा। सिपाही समझेंगे कि कीरत बारी जूठी पत्तलें ले जा रहा है। कोई इससे कुछ पूछेगा भी नहीं। कुँवर जी बच गये !

पन्ना : चित्तौड़ के भाग्य से ही वे बचेंगे।

सामली : जरूर बचेंगे। पर धाय माँ ! यह सब तुम्हें किसने सुझाया ?

पन्ना : भवानी ने। मैंने आँख बन्द कर उनका ध्यान किया। उसी समय कीरत बारी आया। उसने कहा. . .मैं तो जूठी पत्तल उठाता हूँ। कोई माल-मता तो मेरे पास है नहीं। टोकरी है और उसमें पत्ते हैं। बस, भवानी ने यही बात मुझे सुझा दी।

सामली : पर एक बात है, धाय माँ !

पन्ना : क्या ?

सामली : बनवीर यहाँ जरूर आयेंगे। वे तुम्हारे महल में कुँवर जी की खोज करेंगे। जब वे कुँवर जी को न पावेंगे और तुमसे पूछेंगे तो तुम क्या उत्तर दोगी ?

पन्ना : कह दूँगी कि मैं नहीं जानती।

सामली : इससे वे नहीं मानेंगे। क्रोध में आकर अगर उन्होंने तुम्हारे ऊपर तलवार चला दी तो कुँवर जी तुम्हारे बिना कैसे जिएँगे ?

पन्ना : मैं अपने प्राणों की भिक्षा माँगूंगी जो चित्तौड़ की किसी नारी ने नहीं माँगी। ऐसी विचित्र भिक्षा वे अवश्य दे देंगे।

सामली : बनवीर के सिर पर खून चढ़ गया है। वह दैत्य बन गया है। कुँवर जी को न पाकर वह तुम्हें जरूर मार डालेगा।

पन्ना : मुझे उसकी चिन्ता नहीं है, सामली !

सामली : पर चिन्ता कुँवर जी की है। तुम्हारे बिना वे भी तो जीवित नहीं रहेंगे। फिर तुम्हारा बलिदान चित्तौड़ के किस काम आयेगा। कुँवर जी को तो जीना ही चाहिए।

पन्ना : सचमुच कुँवर जी मेरे बिना नहीं जियेंगे। थोड़ी-सी बात पर तो रूठ जाते हैं। मुझे न पाकर उनका क्या हाल होगा !

सामली : किसी तरह बनवीर को धोखा नहीं दे सकतीं ?

पन्ना : दे सकती हूँ।

सामली : किस तरह ?

पन्ना : कुँवर जी की शैया पर किसी और को सुला दूँगी। वह क्रोध में अन्धा रहेगा ही। पहिचान भी नहीं सकेगा कि यह कौन सोया है।

सामली : तो कुँवर जी की शैया पर किसे सुला दोगी ?

पन्ना : किसे सुला दूँगी। (सोच कर) सामली ! मेरे हृदय पर वज्र गिर रहा है। मेरी आँखों में प्रलय का बादल घुमड़ रहा है। मेरे शरीर के एक-एक रोम पर बिजली तड़प रही है !

सामली : धाय माँ ! सम्भल जाओ। ऐसी बातें न कहो। कुँवर की शैया पर. .

पन्ना : सुला दूँगी। उसी को ! उसी को सुला दूँगी जो मेरी आँखों का तारा है. . . चन्दन !

. . . चन्दन को सुला दूँगी, सामली (सिसकियाँ) चन्दन को सुला दूँगी। उस नन्हें से लाल को हत्यारे की तलवार के नीचे रख दूँगी। कह दूँगी कि इसके नन्हें-से कलेजे पर हलकी-सी चोट करना। बेचारा अभी बालक है! भीषण प्रहार से मेरा लाल चौंक उठेगा।

सामली : धाय माँ! धाय माँ! ऐसा मत कहो. . . ऐसा मत कहो। ऐसा मैं नहीं सुन सकूँगी। महल के किसी कोने में छिप रहूँगी। हाय! तुम क्या कह रही हो! ऐसा मत करना, धाय माँ! ऐसा मत करना. . .। मैं जाती हूँ! ऐसा मैं नहीं सुन सकूँगी ऐसा मैं नहीं सुन सकूँगी (प्रस्थान)।

पन्ना : चली गई। कहती है, ऐसा मैं नहीं सुन सकूँगी। जो मुझे करना है, वह सामली सुन न सकेगी। भवानी! तुमने मेरे हृदय को कैसा कर दिया! मुझे बल दो कि मैं राजवंश की रक्षा में अपना रक्त दे सकूँ। अपने लाल को दे सकूँ। यही राजपूतनी का व्रत है। यही राजपूतनी की मर्यादा है। यही राजपूतनी का धर्म है। मेरा हृदय वज्र का बना दो! माता के हृदय के स्थान पर पत्थर रख दो जिससे ममता का स्रोत बन्द हो जाये! भवानी! मैं चित्तौड़ की सच्ची नारी बनूँ। खीची राजपूतनी अपने रक्त से मंगल-तिलक करे। (नेपथ्य में चन्दन का स्वर) माँ! . . . माँ! . . . माँ!

[चन्दन का प्रवेश]

चन्दन : माँ! देखो, मेरे पैर में चोट लग गई। यह रक्त निकल रहा है।

पन्ना : कहाँ रक्त निकल रहा है? लाओ, देखूँ मेरे लाल! ओहो! अँगूठे में यह चोट कैसे लगी? रक्त निकल रहा है। कितना रक्त निकल रहा है। लाओ। इसे बाँध दूँ। (अपनी साड़ी से कपड़े का टुकड़ा फाड़ती है।) सीधा पैर करो! हाँ ठीक. . . इसे बाँध देती हूँ। (बाँधते हुए) यह चोट कैसे लगी, लाल!

चन्दन : मैं जैसे ही भोजन कर के उठा माँ! सज्जा ने कहा कि महल के चारों तरफ सिपाही इकट्ठे हो रहे हैं। मैं देखने के लिए ऊपर के झरोखे में चढ़ पया। अँधेरे में कुछ दिखाई नहीं दिया। जैसे ही मैं नीचे कूदा एक टूटा हुआ शीशा अँगूठे में चुभ गया। कोई बात नहीं है, माँ! रक्त तो निकला ही करता है। पर ये सिपाही महल के चारों तरफ क्यों इकट्ठे हो रहे हैं?

पन्ना : आज नाच-रंग का दिन है न? वही सब देखने के लिए आये होंगे। या फिर सोना ने उन्हें बुलाया होगा। वह नीचे नाच रही होगी।

चन्दन : माँ! सोना अच्छी लड़की नहीं है। मैं कल उससे कहूँगा माँ, कि कुंवर जी को अपना नाच न दिखाया करे। उनका मन आखेट करने में नहीं लगता।

पन्ना : मैं भी उसे समझा दूँगी, चन्दन!

चन्दन : कुँवरजी कहाँ हैं, माँ! आज भोजन में भी साथ नहीं चले।

पन्ना : कहीं सो रहे होंगे।

चन्दन : तब से वे सो ही रहे हैं? माँ. कुँवर जी को ज्यादा नींद क्यों आती है? मैं देखूँ, कहाँ सो रहे हैं।

पन्ना : बुरा मान कर कहीं सो रहे होंगे।

चन्दन : सोना ने ही उन्हें बुरा मानना सिखला दिया, माँ ! नहीं तो कुँवर जी पहले कभी बुरा नहीं मानते थे । खेल-खेल में भी बुरा नहीं मानते थे । साथ खेलते थे, साथ खाते थे । आज अकेले कुछ खाया भी नहीं गया, माँ ।

पन्ना : तो चलो चन्दन ! मैं तुम्हें जी भर के खिला दूं !

चन्दन : अब कुँवर जी के साथ कल खाऊँगा, माँ । कल हम दोनों साथ बैठेंगे . . . तुम प्रेम से परोस-परोस कर खिलाना । कल खूब खाऊँगा, माँ ! कुँवर जी से भी ज्यादा । कहते हैं कि मैं चन्दन से ज्यादा खाता हूँ । अब कल से यह कहना भूल जायेंगे । (हँसता है ।) क्यों न माँ !

पन्ना : ठीक है, लाल !

चन्दन : माँ ! अच्छी तरह से क्यों नहीं बोलती ? और तुम्हारी आँखें. . . तुम्हारी आँखों में पानी कैसा ? माँ ! एँ. . . .तुम्हारी आँखों में. . .

पन्ना : कहाँ चन्दन ! पानी कहाँ ? और तुम्हारे अँगूठे से रक्त की धार बहे, मेरी आँखों से एक बूंद पानी भी न निकले ?

चन्दन : ओह ! माँ, तुम तो बातें करने में बड़ी अच्छी हो । जब मैं बड़ा होकर बहुत-सी जागीरें जीतूंगा, माँ ! तो मैं तुम्हारे लिए एक मन्दिर बनवाऊँगा । देवी के स्थान पर तुमको बिठलाऊंगा । और तुम्हारी पूजा करूंगा । तुम अपनी पूजा करने दोगी ?

पन्ना : तुझसे मुझे ऐसी ही आशा है, चन्दन !

चन्दन : यह मत समझना माँ ! कि मैं जागीरें नहीं जीत सकता । उस जंगली खरगोश की तरह तेजी से दौड़ सकता हूँ। आसमान तक धावा बोल सकता हूँ ।

पन्ना : अब बहुत बातें न करो, चन्दन ! रात अधिक हो रही है, सो जाओ ।

[कुछ आहट होती है ।]

चन्दन : माँ. . माँ, देखो, उस दरवाजे से कौन झाँक रहा है ?

पन्ना : कीरत बारी होगा । तुम्हारा भोजन उठाने आया होगा । मैं देखती हूँ ।(उठकर देखती है ।)

चन्दन : कोई और हो तो मैं अपनी तलवार लाऊँ !

पन्ना : (लौटती हुई) कोई नहीं है । महल में किसका डर है ? लाल ! तुम सो जाओ !

चन्दन : कहाँ सोऊँ ! सज्जा तो अभी रसोई-घर में ही होगी । मेरी शैया ठीक न की होगी ।

पन्ना : तो. . . तो. . . तो तुम कुंवरजी की शैया पर सो जाओ । शैया ठीक होने पर तुम्हें उस पर लिटा दूंगी ।

चन्दन : और कुंवर जी बुरा मान गये तो ?

पन्ना : मैं कुँवरजी को समझा दूंगी । तुम्हारे लेटने से कुंवरजी की शैया मैली तो हो न जायगी ।

चन्दन : तुम बहुत अच्छी हो, माँ ! आज कुँवर जी की शैया पर लेट कर देखूँ ! अब तो मैं भी राजकुमार हो गया ! (एकाएक स्मरण कर) पर मेरी माला ! राजकुमार के गले में माला होती है न ! तुमने मेरी टूटी माला गूँथ दी !

पन्ना : नहीं गूंथ पाई लाल ! सामली आ गई थी ।

चन्दन : कल गूंथ देना। भूलना नहीं, माँ । (शय्या पर लेटता है।) आहा माँ ! कितनी नरम शय्या है ! जी होता है, सदा इसी पर सोता रहूं।

पन्ना : (चीखकर) चन्दन !

चन्दन : क्या हुआ, माँ !

पन्ना : कुछ नहीं . . .कुछ नहीं. . .। आज मेरा जी कुछ अच्छा नहीं है। कभी-कभी कलेजे में शूल-सी उठती है। तुम सो जाओ तो मैं भी सो जाऊँगी।

चन्दन : मैं किसी वैद के यहाँ जाऊँ, माँ !

पन्ना : नहीं वैद्य के पास इसकी दवा नहीं है। यह आप-से-आप उठती है और आप-से-आप शान्त हो जाती है। तुम सो जाओ . . . मैं भी कुंवर को खिला कर सो जाऊँगी।

चन्दन : अच्छा माँ ! तुम्हारी आज्ञा नहीं टालूंगा। लो मैं आँखें बन्द कर लेता हूँ।

पन्ना : सो जाओ ! चित्तौड़ की अच्छी कहानियों को सोचते-सोचते सो जाओ ! अपनी मातृभूमि में कितने बड़े-बड़े वीर हुए हैं। बापा रावल जिन्हें हारीत ऋषि ने दर्शन दिये, जिन्होंने मेवाड़ की नींव डाल कर विदेशों पर चढ़ाई की और उन्हें जीता। इन्होंने ही पहले पहल अपने आराध्य देव एकलिंग का मन्दिर बनवाया। राजा नरवाहन जिन्होंने अपनी अकेली शक्ति से अनेक शत्रुओं को पराजित किया। राजा हंसपाल जिन्होंने अनेक राज्य जीत कर अपने राज्य में मिलाये। रावल सामन्त सिंह जिन्होंने गुजरात के सोलंकी राजा उदयपाल को युद्ध में पराजित किया। रावल जय सिंह, रावल समर सिंह. .

चन्दन : (चौंककर) माँ, मैं आँखें बन्द कर तुम्हारी बातें सुन रहा था, कि एक काली छाया मेरे सिर के पास आई और उसने मुझे मारने को तलवार उठाई !. . माँ . . वह काली छाया. . . काली छाया !

पन्ना : मैं तो तुम्हारे पास बैठी हूँ लाल ! यहाँ कौन-सी काली छाया आयेगी ?

चन्दन : कोई छाया नहीं आयेगी माँ ! पर न जाने क्यों नींद नहीं आ रही है। तुम मुझे कोई गीत सुना दो तो सुनते-सुनते सो जाऊँ।

पन्ना : अच्छी बात है, मेरे लाल ! मैं गीत ही गाऊँगी। अपने लाल को सुला दूँ !

[करुण स्वर में गीत गुनगुनाती है।]

उड़ जा रे पँखेरुआ, साँझ पड़ी।
चार पहर बाटड़ली जोही
मेडचाँ खड़ी ए खड़ी।
उड़ जा रे पँखेरुआ, साँझ पड़ी॥
डबडब भरिया नैन दिरिघड़ा
लग रयी झड़ी ए झड़ी।
उड़ जा रे पँखेरुआ, साँझ पड़ी !!
तेरी फिकर हूँ भयी दिवानी।
मुसकल घड़ी ए घड़ी। उड़ जा रे पँखेरुआ. . .

[धीरे-धीरे गान समाप्त होता है ।]

पन्ना : (फिर पुकारती है) चन्दन !

[चन्दन के न बोलने पर पन्ना अलग हट कर जोर से सिसकी लेती है ।]

पन्ना : मेरा लाल सो गया ! मैंने अपने लाल को ऐसी निद्रा में सुला दिया कि अब यह न उठेगा । (सिसकियाँ लेती है।) ओह पन्ना ! तूने अपने भोले बच्चे के साथ कपट किया है ! तूने अंगारों की सेज पर अपने फूल-से लाल को सुला दिया है । तू सर्पिणी है । सर्पिणी जो अपने ही बच्चे को खा डालती है । जान-बूझ कर अपने पुत्र की हत्या कराने जा रही है। हाय ! अभागिनी माँ ! संसार में तेरा भी जन्म होने को था ? (सिसकियाँ लेती है । फिर चन्दन को संबोधित करते हुए) लाल ! तुम्हारी माला मैं नहीं गूँथ सकी । तुम्हारा जीवन अधूरा होने जा रहा है तो माला कैसे पूरी होती ? (सिसकियाँ) आज तुम भूखे ही रह गये, मेरे लाल ! आज अन्तिम दिन मैं तुम्हें अपने हाथों से भोजन भी न करा सकी ! तुम क्या जानो कि कल तुम और कुँवर साथ-साथ कैसे भोजन करोगे ! कहते थे. . .कल तुम परोस कर खिलाना । मैं अब किसे खिलाऊँगी, चन्दन ! (सिसकियाँ) तुम बड़ी-बड़ी जागीरें जीतोगे, मन्दिर बनवाओगे, देवी के स्थान पर मुझे बिठलाओगे और मेरी पूजा करोगे । मैं ऐसी देवी हूँ कि अपने भक्त को ही खा रही हूँ । (सिसकियाँ) तुम्हारे अँगूठे से रक्त की धारा बही । अब हृदय से रक्त की धारा बहेगी तो मैं कैसे रोक सकूँगी । मेरे लाल ! मेरे चन्दन ! जाओ यह रक्तधारा अपनी मातृभूमि पर चढ़ा दो ! आज मैंने भी दीप-दान किया है । दीप-दान ! अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है । ऐसा दीप-दान भी किसी ने किया है ! एक बार तुम्हारा मुख देख लूँ । कैसा सुन्दर और भोला मुख है ! (सिसकियाँ लेती है ।)

[एकाएक भड़भड़ाहट की आवाज होती है । हाथ में तलवार लिये बनवीर आता है।]

बनवीर : (मद्य पीने से उसके शब्द लड़खड़ा रहे हैं ।) पन्ना !

पन्ना : महाराज बनवीर !

बनवीर : सारे राजपूताने में एक ही धाय माँ है पन्ना ! ! सबसे अच्छी ! मैं ऐसी धाय माँ को प्रणाम करने आया हूँ । (रुककर) ऐं, धाय माँ की आँखों में आँसू !

पन्ना : नहीं. . . आँसू नहीं है । आज मेरे कुँवर बिना भोजन किये ही सो गये ।

बनवीर : आज के दिन भोजन नहीं किया ? अरे, आज तो उत्सव का दिन है । आनन्द का दिन है । (अट्टहास करता है ।) मेरे महल में तीन सौ सामन्तों ने भोजन किया । आज कीरत बारी की टोकरी देखती ! भोजन उठाते-उठाते वह जिन्दगी भर के लिए थक गया होगा । (हँसता है) जिन्दगी भर के लिए ! तो कहाँ हैं कुँवर उदयसिंह ? मैं उन्हें अपने हाथ से भोजन करा दूँ !

पन्ना : कुँवर सो गये हैं । वे किसी के हाथ से भोजन नहीं करते, मैं ही उन्हें खिला दूँगी ।

बनवीर : धाय माँ हो न ! आज पन्ना ! आज तुमने सोना का नाच नहीं देखा ! ओह ! कितना अच्छा नाचती है ! मैंने उससे कह दिया था कि वह कुँवर उदयसिंह को और धाय माँ को अपना नाच दिखला दे ।

पन्ना : वह आई थी। शायद तुम्हीं ने उसे भेजा था, पर कुँवरजी का जी अच्छा नहीं था, इसीलिये मैंने उन्हें नहीं भेजा।

बनवीर : जी अच्छा नहीं था, और आज का दीप-दान भी तुमने नहीं देखा ?

पन्ना : मेरे लिए दीप-दान देखने की बात नहीं है, करने की बात है !

बनवीर : ठीक है, धाय माँ तो मंगल-कामनाओं की देवी हैं। वे दीप-दान करके चित्तौड़ का कल्याण करेंगी। मैं भी चित्तौड़ का कल्याण करूँगा। एक बात कहूँ, पन्ना ! मैं तुम्हें मारवाड़ में एक जागीर देना चाहता हूँ। वहाँ तुम्हारे लिए तुलजा भवानी का मन्दिर बनेगा। मन्दिर ! सारे लोग तुम्हें इतनी श्रद्धा से देखेंगे कि तुलजा भवानी में और तुम में कोई अन्तर भी न होगा। तुम्हीं देवी के उस मन्दिर में रहोगी। लोग तुम्हारी पूजा करेंगे।

पन्ना : (चीखकर) बनवीर ?

बनवीर : (अट्टहास कर) महाराज बनवीर नहीं कहा ? मेरे कहने भर से तुम देवी हो गई ! महाराज बनवीर को बनवीर कहने लगी ! (हँसता है) देवी को प्रणाम ! देखा, अब तुम्हें मोह-ममता से दूर रहना होगा। तुम कुँवर उदयसिंह को मुझे दे दोगी। और मैं उसे यह तलवार दूँगा। (तलवार खींच लेते हैं)।

पन्ना : एँ, यह तलवार ! इस पर रक्त क्यों लगा है !

बनवीर : रक्त तो तलवार की शोभा है. पन्ना ! वह अनन्त सुहाग से भरी है। यह तो उसके सिन्दूर की रेखा है। बिना रक्त के तलवार भी कभी तलवार कहला सकती है।

पन्ना : यह तलवार म्यान में रख लो। महाराज !

बनवीर : क्या तुम्हें भय लगता है ! चित्तौड़ में तलवार से किसी को भय नहीं लगता। धाय माँ होने पर तुममें इतनी ममता भर गई कि तलवार नहीं देख सकती ? पन्ना तलवारें आसानी से म्यान के भीतर नहीं जातीं। जब म्यान में राज्यश्री भर जाती है तो तलवार बाहर निकल आती है।

पन्ना : आधी रात हो चुकी है. महाराज बनवीर ! विश्राम करो।

बनवीर : विश्राम मैं करूं ? बनवीर ! जिसे राजलक्ष्मी को पाने के लिए दूर तक की यात्रा करनी है। मैं अपने साथ कुंवर उदयसिंह को भी ले जाना चाहता हूँ।

पन्ना : यह नहीं होगा. . .यह नहीं होगा, महाराज बनवीर !

बनवीर : जागीर नहीं चाहती ?

पन्ना : नहीं।

बनवीर : तो उदयसिंह के बदले जो माँगो वह दिया जायगा।

पन्ना : राजपूतनी व्यापार नहीं करती, महाराज ! वह या तो रणभूमि पर चढ़ती है या चिता पर।

बनवीर : दो में से किसी पर भी तुम नहीं चढ़ सकोगी। तुम्हारा महल सैनिकों से घिरा है।

पन्ना : सैनिकों को किसने आज्ञा दी ? महाराज विक्रमादित्य. . .

बनवीर : (बीच ही में) वे अब इस संसार में नहीं हैं। पन्ना ! उन्होंने रक्त की नदी पार करली है। उसी रक्त की लहर मेरी तलवार पर है।

पन्ना : ओह बनवीर ! हत्यारा बनवीर !

बनवीर : महाराणा बनवीर को हत्यारा बनवीर नहीं कह सकती, पन्ना ! हत्यारा बनवीर कहने वाली जीभ काट दी जायगी ।

पन्ना : तो लो मेरी जीभ काट लो । और यहाँ से चले जाओ । महाराणा विक्रमादित्य. . . .

बनवीर : बार-बार विक्रमादित्य का नाम क्यों लेती है ? प्रेतों और पिशाचों को वह नाम लेने दो । यदि मेरा नाम लेना है तो जयकार के साथ नाम लो ।

पन्ना : धिक्कार है, बनवीर ! तुम्हारी माँ ने तुम्हें जन्म देते ही क्यों न मार डाला ।

बनवीर : चुप रह धाय ! बच्चे की पालनेवाली, लोरियाँ सुनानेवाली एक साधारण दासी महाराणा से बात करती है ? कहाँ है उदयसिंह ?

पन्ना : तू उदयसिंह को छू भी नहीं सकता । नीच नारकी ! महाराणा विक्रमादित्य की हत्या के बाद तू उदयसिंह को देख भी नहीं सकता ।

बनवीर : मैं नहीं देखूँगा, मेरी तलवार देखेगी । विक्रम के रक्त में सनी हुई तलवार अब उदयसिंह के रक्त से धोई जायगी ।

पन्ना : ओह क्रूर बनवीर ! तुम तो उदयसिंह के संरक्षक थे । रक्षा के बदले क्या तुम उसकी हत्या करोगे । नहीं-नहीं यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकता । महाराणा बनवीर तुम राज्य करो, चित्तौड़ पर, मेवाड़ पर, सारे राजपूताने पर राज्य करो । पर कुँवर उदयसिंह को छोड़ दो । मैं उसे लेकर संन्यासिनी हो जाऊँगी। तीर्थों में बास करूँगी । तुम्हारा मुकुट तुम्हारे माथे पर रहे, पर मेरा कुंवर भी मेरी गोद में रहे । बनवीर ! महाराणा बनवीर, मुझे यह भिक्षा दे दो ।

बनवीर : दूर हट दासी ! यह नाटक बहुत देख चुका हूँ । उदयसिंह की हत्या ही तो मेरे राजसिंहासन की सीढ़ी है । जब तक वह जीवित है तब तक सिंहासन मेरा नहीं होगा । तू मेरे सामने से हट जा !

पन्ना : मैं नहीं हटूँगी ! अपने कुँवर की शैया से दूर नहीं हटूंगी ।

बनवीर : उदयसिंह को सुला दिया है जिससे उसे मरने का कष्ट न हो । उसका मुख भी ढक दिया है ! वाह री धाय माँ ! बालक के मरने में भी ममता का ध्यान रखती है । (तीव्रता से) शैया से दूर हट, पन्ना ! मैं उसे चिर निद्रा में सुला दूँ

पन्ना : (साहस से) नहीं, ऐसा नहीं होगा, क्रूर नराधम, नारकी ! ले मेरी कटार का प्रसाद ले (आक्रमण करती है, उसकी चोट बनवीर की ढाल पर सुन पड़ती है ।)

बनवीर : (क्रूर अट्टहास करता है) ह ह ह ह ! दासी क्षत्राणी । कर लिया कटार का वार । यह कटार मेरे हाथ में है। अब किससे वार करेगी ? अब तुझे भी समाप्त कर दूँ ! लेकिन स्त्री पर हाथ नहीं उठाऊँगा ।

पन्ना : अबोध सोते हुए बालक पर हाथ उठाते हुए तेरा हृदय तुझे नहीं धिक्कारता पापी !

बनवीर : (शैया के समीप जाकर) यही है, यही है, मेरे मार्ग का कंटक । आज मेरे नगर में स्त्रियों ने दीप-दान किया है। मैं भी यमराज को इस दीपक का दान करूँगा । यमराज ! लो इस दीपक को । यह मेरा दीप-दान है ।

[तलवार से उदय के धोखे में चन्दन पर जोर से तलवार का प्रहार करता है । पन्ना जोर से चीख कर मूर्च्छित हो जाती है । कमरे में मन्द लौ से दीपक जलता रहता है !]

• • •

गद्य काव्य :

पुण्य ज्योति

नीलाकाश के शरीर से साँस-सी निकल कर यह चंद्रकिरण मेरी पृथ्वी में जीवन डाल रही है । हिम से धवल गिरि-शृंगों पर यह भक्तों के पवित्र मानस में बसी हुई पुण्य ज्योति के समान है ।

कश्मीर के पुष्प

कितना सौन्दर्य ! कितनी सुषमा !!

जहाँ देखो, इस उपत्यका में फूल ही फूल बिखरे हुए हैं । प्रत्येक स्थल पर फूलों की राशि अपनी ही विपुलता में बिखरी हुई है । यहाँ इतने फूल क्यों हैं ? सम्भव है, प्रकृति ने इतने फूल मेरे सामने रख कर कहा हो—

"मनुष्य ! विश्वात्मा कितना महान है । कितना शक्तिशाली हैं ! कितना सुंदर है । तू इतने पुष्पों से उसकी पूजा कर ! तब क्या विराट की पूजा के लिए ही प्रकृति ने कश्मीर में इतने पुष्प विकसित किए हैं ?

चंदनवाड़ी

दो पथिक थके हुए आ रहे थे ।' पहलगाम की सीमा पर उन्होंने रुक कर चश्मे से पानी पिया और तिरछे चिनार वृक्ष की छाया में बैठ गए । एक ने कहा-चन्दन वाड़ी वास्तव में प्रकृति का मनोहर क्रीड़ा क्षेत्र है । कितनी सुन्दर वृक्ष रात्रि, इतनी सुंदर नदी और इतनी सुंदर हवा ।

दूसरे व्यक्ति ने कहा—और हिम के वे तीन पर्वत '!!

प्रथम व्यक्ति ने उसी स्वर में कहा—और वे छोटे छोटे कुंज कितने शीतल और शांतिदायक हैं ! चंदन वाड़ी पृथ्वी नहीं स्वर्ग है ।

मैं यह प्रवास कथा सुन रहा था । मैंने उनकी बातों में अपनी बात डालते हुए कहा—तो आप स्वर्ग से क्यों चले आए ?

प्रथम व्यक्ति ने हँसते हुए कहा—हम सुरपुरवासी स्वर्ग से बहुत जल्दी ऊब जाते हैं । पृथ्वी पर आना चाहते हैं !

मैंने कहा—स्वर्ग से लौटे हुए देवता तब शांति कहाँ है ?

वन पुष्प

मेरी शैया के सिरहाने कितने प्रकार के वन-पुष्प विकसित हो उठे हैं ! ज्ञात होता है । मानो रात के सभी सुनहले स्वप्न एक बार मेरी आँखों में साकार होकर मेरे सिर के समीप ही बिखर गए हैं । जब मेरी आँख खुली तो मेरे समीप ही किसी पुष्प ने खिलकर अपनी सुगन्धि मेरे समीप भेजकर अपने अस्तित्व की सूचना देदी ।

मैंने सोचा—मेरे पार्थिव शरीर के समीप यह सौन्दर्य निधि क्यों अपना हृदय खोलकर हँस रही है ? सम्भवतः मुझे यह विश्वास दिलाने के लिए मेरे पार्थिव शरीर के समीप ईश्वर की अनंत शक्ति है ।

प्रतिबिम्ब

मानस बल के निर्मल जल में जब मैंने अपनी दृष्टि डाली तो नीचे की सभी वस्तुएँ स्पष्टता के साथ दीख पड़ीं। उसी समय आशा के समान विविध रंगों से रंजित एक पक्षी अपनी गति की रेखा में संगीत का रंग भरते हुए उड़ गया। उसका प्रतिबिम्ब जल के ऊपर एक रंगीन लहर बन कर निकल गया। नीचे और ऊपर के प्रतिबिम्बों ने मानस बल को एक संत के हृदय के समान बना दिया जिसमें निरंतर लौकिक और पारलौकिक भावनाओं का प्रतिबिम्ब पड़ा करता है।

निर्झर

कुंज में खिली हुई कलिका ने फूल से मुसकराते हुए कहा––
"मैं कृष्ण हूँ और तुम राधा!
फूल ने हँसकर कहा––और तुम्हारी मुरली कहाँ है?
कलिका ने समीप के निर्झर की ओर झुककर कहा––यह है।
निर्झर ने यह प्रेम का नाटक देखा––और सुना! उसने कलिका के द्वारा दिए
हुए गौरव के पाने के लिए अपना स्वर और भी मधुर करना चाहा।
जब स्वर मधुर न बन सका तो वह ईर्ष्या की हिंसा ने अपने में फूल
और कलिका दोनों को बहाकर जाने कहाँ ले गया।

शैल-शृंग

यह प्रेम की समाधि है!
यह पर्वत है जिसमें पृथ्वी अनंत शक्ति का स्पर्श करने पर हर्षोल्लास में थक कर
सो गई है। ज्ञात होता है कि अनंतकाल तक इसकी निद्रा भंग न होगी।
यह पर्वत है जिसमें पृथ्वी अनंत राशि का स्पर्श करने पर हर्षोल्लास में थक कर
सो गई है। ज्ञात होता है कि अनंतकाल तक इसकी निद्रा भंग न होगी।
यह पर्वत––मानो पृथ्वी संसार का वीभत्स कार्य-कलाप देख कर वनांत में सिकुड़ कर बैठी
हुई है। और अपने हृदय में वेदना का अंधकार लिए हुए है।
यह पर्वत मौन होकर भी कितना महान् है!
इस पर्वत की मूर्खता तो देखो––यह खड़ा होकर भी सोता है।
यह नीरस पर्वत सो रहा है। इसीलिए तो इसे असावधान पा कर इसका
सारा सौन्दर्य इसे छोड़कर भाग गया है।
पर्वत ने वृक्ष से कहा––कहाँ तक बढ़ते जाओगे?
वृक्ष ने उत्तर दिया––बहुत दूर!
पर्वत ने कहा––मुझसे बहुत दूर!
वृक्ष बोला––तुम्हारा गौरव बढ़ाने के लिए तुम से दूर हो जाऊँगा।
पर्वत ने कहा––तो फल और फूल तो मुझसे दूर ही लगेंगे। कितना अच्छा
होता यदि तुम अपने फल अपनी जड़ में ही उत्पन्न करो, वे मेरे पास
ही रहते।

कुछ दिन बाद वायु के वेग से वृक्ष गिर पड़ा। अब उसके फल और फूल पर्वत के निकट होने पर भी किसी काम के नहीं थे।

• • •

परिशिष्ट

डॉ० रामकुमार वर्मा के विचार उन्हीं के शब्दों में

प्रस्तुतकर्त्ता : राजकुमार शर्मा

●

अंकुर जो अनायास फूट आए

'मेरे घर के चारों ओर अपने आप जो छोटे-छोटे अंकुर जो अनायास फूट आए हैं, वे किसी वर्षा से पोषित नहीं हुए और न किसी व्यक्ति ने उन्हें सींचने की चेष्टा की। किन्तु कुछ दिन बढ़ने पर यह ज्ञात हुआ कि उन बहुत-से पेड़ों में एक-दो पेड़ ऐसे भी हैं, जो प्रयत्न करने पर भी बड़े-बड़े बागों में नहीं लगते, पर मेरे यहाँ अनायास ही निकल आए हैं। न जाने किस हवा के झोंकों ने उन अंकुरों के बीजों को कहाँ से ला कर डाल दिया और न जाने कहाँ से आर्द्रता प्राप्त कर वे भूमि पर उभर आए और बड़े सुन्दर पेड़ बन गए। कुछ इसी तरह की बात मेरे अन्तर-जगत की है। सामान्य अंकुरों की भाँति न जाने कितने भावनाओं के बीज मन में उद्-भूत हुए। किन्तु दो-एक बीज इस प्रकार अन्तस्तल में समा गए कि उन से कविता अंकुरित हो उठी और उस में अनेक प्रकार के पुष्प विकसित हो गए। कविता का यह अंकुर शैशव से ही पल्लवित हुआ। मेरे परिवार के व्यक्तियों ने मुझे बताया कि कविता हमारे कुल की परंपरागत सम्पत्ति है, किन्तु यह स्पष्ट है कि यह कविता हमारे वंश के व्यक्तियों में निरन्तर जागरूक नहीं रही। मेरे पितामह छत्रसाल जी कवि थे, किन्तु पितामह श्री शोभाराम जी काव्य-प्रेमी थे। ब्रज-भाषा में कुछ पंक्तियाँ जोड़ अवश्य देते थे। मेरे पिता जी लक्ष्मीप्रसाद जी भी काव्य-प्रेमी ही थे; किन्तु मेरे बड़े भाई श्री रघुवीर प्रसाद अच्छे कवि थे और मेरे और उन के बीच चार भाइयों को छोड़ कर मुझ में काव्य-प्रेरणा प्रस्फुटित हुई। मेरी माता श्रीमती राजरानी देवी एक कवयित्री थीं, और वह कभी-कभी 'वियोगिनी' उपनाम से कविताएँ लिखा करती थीं। मुझे स्मरण है कि संगीत-लहरी में उन का काव्य मेरे कानों में गूंजा करता था और हिन्दी-काव्य के प्रति उन की अत्यधिक रागवृत्ति मुझे निरन्तर इस क्षेत्र में अग्रसर होने को प्रेरणा दिया करती थी। मेरे बड़े भाई श्री रघुवीर प्रसाद जी का काव्य कुछ अधिक परि-ष्कृत रूप में मेरे भाव-जगत् के क्षितिज पर अवतरित हुआ। मेरे गुरू श्री विश्वम्भर प्रसाद गौतम की रचनाएँ भी मुझे आकर्षक ज्ञात हुईं और 'शिशु' तथा 'बालसखा' मासिक पत्रों का प्रकाशन मुझे काव्य-रचना का मौन निमन्त्रण देता रहा। इन परिस्थितियों में हिन्दी-काव्य-सृजन की अभिरुचि उत्पन्न होना स्वाभाविक था; किन्तु यह अंकुर आगे चल कर बढ़ेगा, इसमें मुझे सन्देह था।

सन् १९२१ में परिस्थिति परिवर्तित हुई। महात्मा गाँधी का असहयोग आन्दोलन अपने वेग पर था। डिप्टी कलक्टर का पुत्र होने के बावजूद मैंने स्कूल छोड़ कर विदेशी शासन से संघर्ष करना आरम्भ किया। प्रभात-फेरियों के गीत लिखने का आग्रह मेरे समक्ष था और इस प्रकार काव्य-जगत् में मेरा प्रवेश हुआ। मेरे काव्य-जीवन को सब से अधिक प्रोत्साहित करने वाली घटना 'खन्ना-पुरस्कार' की है। १७ वर्षीय बालक का अखिल भारतीय प्रतियोगिता में ५१ रु० का पुरस्कार मिलना कम गौरव की बात न थी! मेरी इस सफलता पर मेरी माता श्रीमती राजरानी देवी ने अपनी ओर से भी मुझे ५१ रु० का पुरस्कार दिया। यह घटना मेरे काव्य-जीवन की प्रवेशिका है।

काव्य-जीवन धीरे-धीरे अग्रसर हुआ। मेरे समक्ष श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय और श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी की रचनाएँ थीं। सब से अधिक बल मुझे गुप्त जी के 'जयद्रथ-बध' और 'हरिऔध' जी के 'प्रिय-प्रवास' से प्राप्त हुआ। मैंने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाएँ पास करना प्रारम्भ किया और इस प्रकार काव्य का शास्त्र-सम्मत ज्ञान अर्जित किया। उस समय मेरे काव्य-क्षितिज पर प्रसाद और पंत का उदय नहीं हुआ था। 'मतवाला' साप्ताहिक से 'निराला' की पंक्तियाँ पढ़ने को अवश्य मिल जाती थीं।

...और मैं गीत लिखने लगा

जब १९२५ में बी० ए० पढ़ने के लिए इलाहाबाद आया तब श्री सुमित्रानन्दन पंत से भेंट हुई और काशी में प्रेमचन्द्र जी के निवास-स्थान पर श्री जयशंकर प्रसाद की रचनाएँ सुनीं और अपनी सुनाईं। प्रयाग में कवि-सम्मेलनों का वातावरण अधिक प्रखर था और यहाँ आने पर मेरी कविता, जो प्रारम्भ में राष्ट्रीय और रीतिकालीन विषयों से सम्बन्धित थी, छायावाद का रंग ग्रहण करने लगी। यों तो प्रयाग आने से पहले 'वीर-हम्मीर' नामक ऐतिहासिक खंड-काव्य मैं लिख चुका था और चित्तौड़ की चिता' लिखने की ओर लेखनी चल पड़ी थी, किन्तु छायावादी युग ने मेरे मन में गीतों की प्रेरणा उत्पन्न कर दी और मैं अधिकतर गीतों की रचना करने लगा। इस क्षेत्र में प्रसाद जी के गीत मेरे लिए विशेष प्रेरक सिद्ध हुए। इन गीतों के संग्रह सन् १९३० में 'अंजली' के नाम से और सन् १९३१ में 'रूप-राशि' के नाम से प्रकाशित हुए। प्रसाद जी के सौम्य और मोहक व्यक्तित्व से मैं बहुत आकृष्ट हुआ। मैं अनेक बार काशी गया और प्रसाद जी के मुख से उन की रचनाएँ बड़ी श्रद्धा से सुनता रहा। यदि मैं यह कह सकूँ कि अंग्रेजी साहित्य के कीट्स और बायरन का सौन्दर्य-ग्रह और प्रसाद की गीतात्मक अनुभूति मेरे नवीन काव्य-संग्रह 'चित्ररेखा' के मूल में रही होगी, तो अनुचित नहीं। इस बीच मेरा काव्य अप्रतिहत गति से अग्रसर होता रहा। कबीर के काव्य में मेरी रुचि आसक्ति की सीमा तक पहुँच गई थी और मैं घंटों कबीर के पदों में निमग्न रहता था। सन् १९३५ में मैंने कश्मीर की यात्रा की और वहाँ की सौन्दर्य-राशि अपनी भावनाओं में समेट कर 'चित्ररेखा' की अनेक कविताएँ लिखीं। हिमशैल, निर्झर, झीलों के बड़े-बड़े विस्तार, फूलों की असंख्य राशियाँ—ऐसी अनुभूतियों को जन्म दे सकीं, जिनसे मेरा गीत-काव्य संवेदनामय हो उठा और जब इस काव्य-ग्रन्थ पर 'देव-पुरस्कार' प्राप्त हुआ, मैंने समझा कि काव्य-जगत ने मेरी कविताओं को अपनाया और उस की सराहना की। प्रयाग में रहते हुए अनेक व्यक्तियों से सम्पर्क हुआ। पुरानी पीढ़ी के कवियों में 'रत्नाकर', 'हरिऔध',

'सनेही' और गोपाल शरण सिंह से मुझे काव्य-क्षेत्र में बढ़ने की प्रेरणाएँ प्राप्त हुईं। एक बार मैं काशी विश्वविद्यालय में गया और वहाँ स्वर से कविताएँ पढ़ीं, तो उस विश्वविद्यालय के मराठी भाषा-भाषी प्रो० ए० वी० ध्रुव इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने मुझे एक स्वर्ण-पदक भेंट किया। एक अहिन्दी भाषा-भाषी की यह सराहना आगे चल कर मेरे लिए बहुत बड़ी सम्पत्ति बनी।

कविता एक दैवी अनुभूति है

कविता को मैं एक दैवी अनुभूति मानता हूँ। मैं किसी हल्के क्षण में कविता नहीं लिखता, अर्थात् कविता लिखने में प्रयत्न करना मेरे मन के प्रतिकूल है। यही कारण है कि महीनों निकल जाते हैं और मैं एक भी कविता नहीं लिख पाता। कभी एक महीने में आठ-दस कविताएँ लिख लेता हूँ और कभी आठ-दस महीनों में एक कविता भी नहीं। मेरा 'एकलव्य' महाकाव्य पूरे बारह वर्ष में पूर्ण हुआ। एक तो अध्यापक होने के नाते नाटक लिखना मेरी प्रवृत्ति का एक अंग बन गया है, दूसरे अध्यापन करते समय जो अनेक विषय मुझे सूझते हैं, उन पर अध्ययन करना मेरे अध्यापन जीवन का सब से बड़ा कर्तव्य है। ऐसी स्थिति में जब कविता मेरे समक्ष आकर जननी की भाँति खड़ी हो जाती है, और मुझे अपनी ओर आने का आग्रह करती है, तभी मैं काव्य-रचना में अग्रसर होता हूँ। 'आकाश-गंगा' मेरे ऐसे ही क्षणों में लिखे हुए गीतों का संग्रह है। आठ वर्षों के पचास के लगभग गीत उस में संग्रहीत हैं, जिस पर मुझे अनेक दिशाओं से पुरस्कार भी मिल चुके है। किन्तु कभी-कभी ऐसा लगता है कि आरम्भिक काव्य-जीवन में जहाँ पुरस्कार काव्य की प्ररणा को जगाते थे, वहाँ इस समय के पुरस्कार काव्य के लिए निरर्थक जान पड़ते हैं। अपनी प्रेम से संजोई हुई भावनाओं को अब प्रतियोगिता में रखने का मन नहीं होता। इस समय भी कविता लिखता हूँ, पर लोग कहते हैं कि रामकुमार वर्मा एकांकी नाटककार है या अच्छे समालोचक हैं। ये सारे विशेषण तो सहज ही किसी अध्यापक को प्राप्त हो सकते है, किन्तु 'कवि' संज्ञा सहज ही किसी अध्यापक को प्राप्त नहीं हो सकती। अतः कविता का प्रदर्शन करने की जो यशोलिप्सा मेरे जीवन में पहले प्रदर्शनी की भाँति सजी हुई थी, अब वह मेरे भीतर के प्रकाश से जगमगाना चाहती है। यह सत्य है कि इधर पिछले दस वर्षों में मैंने कविता की अपेक्षा एकांकी नाटक और समालोचना-ग्रन्थ ही अधिक लिखे हैं। किन्तु जब कभी भी एक कविता लिख लेता हूँ, मेरे हृदयाकाश में जैसे चन्द्रोदय हो उठता है और उस के समक्ष अन्य कृतियाँ तारों की भाँति निष्प्रभ हो उठती हैं।

प्रयोग तो खिलौने मात्र हैं

कविता के सम्बन्ध में मेरी अपनी मान्यताएँ हैं। मैं कविता का अस्तित्व तभी मानता हूँ, जब मेरी सौन्दर्य-भावना का धरातल शरीर की अपेक्षा मन अधिक हो और इस का अभिव्यक्तिकरण मैं भावपक्ष में ही नहीं, शैली-पक्ष में भी मानता हूँ। इसीलिए आज जब मैं प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की रचनाएँ देखता हूँ, तब मुझे उनकी प्रयोगशीलता पर प्रसन्नता तो होती है, पर उन की सौन्दर्य-क्षीणता पर क्षोभ भी होता है। कविता सदैव आगे बढ़ती है और उस में निरन्तर प्रयोग होते रहते हैं, किन्तु वे ही प्रयोग श्लाघ्य समझे जाने चाहिए, जिनसे कविता अपने रागात्मक क्षेत्र में अधिक शक्तिशालिनी सिद्ध हो सके। जो प्रयोग केवल सिद्धान्त को ले कर होते हैं या केवल नवीनता के लिए होते हैं, वे प्रयोग तो खिलौने मात्र हैं, जिन

की चमक-दमक स्थायी नहीं। इस लिए मैं प्रयोगवाद की भावना को अभिनन्दनीय समझता हूँ, किन्तु जिस ढंग से हिन्दी-काव्य का रूप प्रखर बनाने की चेष्टा की जा रही है, उस से मुझे संतोष नहीं। यह वास्तव में चिन्ताजनक है कि इधर काव्य की नगण्य धारा में कोई ऐसा कवि नहीं है जो प्रयोगवाद की सार्थकता को श्रद्धा की वस्तु बना दे। मैं अब भी छन्द और नाद को काव्य के लिए आवश्यक समझता हूँ और सम्भवतः जीवन में मेरे द्वारा एक भी ऐसी रचना प्रस्तुत न की जा सकेगी, जिस में किसी रूप में छन्द या नाद का आग्रह न होगा।

अपने कवि-जीवन में मुझे अनेक महाकवियों से सम्पर्क स्थापित करने के अवसर प्राप्त हुए हैं। सामान्य परिचय मैत्री में परिवर्तित हुआ और मैत्री आत्मीयता में, जैसे बीज अंकुर में और अंकुर पुष्पों में अपने अनुराग को व्यक्त करता है। यह सम्पर्क मेरे जीवन का अद्वितीय स्मृति-वैभव है।

'जै रामकुमार तो अपनई निकरै !'

एक बार श्री मैथिलीशरण गुप्त अपने छोटे भाई श्री सियारामशरण गुप्त के साथ मेरे यहाँ पधारे। मैं अपने अध्ययन-कक्ष में था। नौकर ने आकर खबर दी—'कौनों पंडित जी आए है। खद्दर के कुर्ता और गाँधी टोपी दैहिन है।' मैं ने कहा—'इस समय मुझे फुर्सत नहीं।' इसी समय मेरे कान में आवाज आयी—'क्या डॉ० रामकुमार वर्मा हैं ?' कुछ आत्मीयता का स्वर पहचान कर मैं बाहर निकल आया। मैंने देखा अत्यन्त सामान्य और सौम्य मुद्रा में श्री मैथिलीशरण गुप्त अपने भाई सियारामशरण गुप्त के साथ बरामदे में खड़े हैं। मैंने अत्यन्त प्रेम से उन्हें प्रणाम किया और अपने कमरे में ले आया। साधारण वार्त्तालाप और जल-पान के बाद उन्होंने मेरी बहुत-सी व्यक्तिगत बातें पूछीं और जब मैंने उन्हें बताया कि मेरा जन्म सागर में हुआ था और मेरा शैशव बुन्देलखण्ड में व्यतीत हुआ है, तब वह उल्लास से गद्‌गद् हो गए और उन्हों ने अपनी बुन्देली बोली में सियारामशरण जी से कहा—'भइया ! सियारामशरण ! जै रामकुमार तौ अपनई निकरै ! मुझ से कहने लगे—'भइया कौन खौ मालूम कि जै इतने बड़े डाक्टर जिन को नाम सुनि कै बलवौं की हिम्मत नई परै वे अपनई आय।' उन्होंने मुझे बरबस अपने हृदय से लगा लिया। मैं दद्दा के इस सरल, निश्छल और आत्मीयता के सद्भाव में जैसे बह गया और तब से आज तक मैं उन के प्रति वैसी ही श्रद्धा रखता हूँ, जैसी अपने परिवार के किसी पूज्य के प्रति है। जब मैथिलीशरण जी का नाम मेरे सामने आता है, तब मैं समझता हूँ कि मैं उनका हूँ और वह मेरे हैं।

भंग भवानी भी और कविता भी

प्रसाद जी से अधिक बार तो भेंट नहीं हुई किन्तु जब-जब उनसे मिला हूँ तब-तब उन का सौजन्य देख कर विमुग्ध हो गया हूँ। जब प्रेमचन्द जी के यहाँ मैंने प्रसाद जी को अपनी रचनाएँ सुनाईं, तब प्रसाद जी, जो मुझ से कुछ दूर बैठे थे, उठ कर मेरे समीप आ कर बैठ गए और मेरी पीठ पर हाथ रख कर मेरी कविता की प्रशंसा करते रहे। उन्होंने प्रेम से मुझे अपनी ओर खींच लिया और मेरे मधुर कंठ की सराहना करते हुए कहने लगे—'कौन कह सकता है कि विद्यार्थियों को लेक्चर देने वाला प्रोफेसर इतने मधुर कंठ से गा सकता है ?' मैंने उन्हें प्रणाम किया और कहा कि मेरी कविता में आप की गीतात्मकता है। प्रसाद जी से मैंने कुछ

गीत सुनाने की प्रार्थना की, तो कहने लगे कि इस समय तो जी चाहता है कि तुम्हारी ही कविताएँ सुनता रहूँ। अगर शाम तक रुक जाओ तो गंगा जी के किनारे अच्छी छने; और दिनों तो एक ही छानता था, आज डबल छनेगी। भंग भवानी भी और कविता भी।

पण्डित सुमित्रानन्दन पंत मेरे परम आत्मीय हैं। जिस समय विश्वविद्यालय में मैं बी० ए० का छात्र था, हालैण्ड के हाल में रहता था, जहाँ नाटकों के अभिनय की एक प्रशस्त परम्परा थी। नाटक-संगीत उस का एक विरोधी अंग था। उस की पूर्ति के लिए पंत जी हालैण्ड हाल में अद्वितीय थे। बड़े-बड़े घुंघराले बाल, कमर तक कोट और लम्बा तहमद लगा कर जब वह हालैंड हाल के बरामदे में चलते थे और उन के घुंघराले बाल उनके कंधों पर मस्तानी अदा से हिलते, तो ज्ञात होता था कि हालैंड हाल की शोभा बरामदे में विहार कर रही है। हालैंड के नाटकों में हारमोनियम बजाने वाले श्री नीलू बाबू बड़े लोकप्रिय थे। जब कभी कोई गाने की आवश्यकता पड़ती थी तो पंत जी तुरंत गाना लिख डालते थेऔर नीलू बाबू उसे हारमोनियम पर किसी मोहक राग में सजा लेते थे। एक बार एक स्त्री पात्र के लिए गाने की आवश्यकता हुई। पंत जी ने बड़ी सुन्दर रचना की, नीलू बाबू ने राग भी बहुत अच्छी जमाई। किन्तु उस स्त्री पात्र से गाते नहीं बना। पंत जी ने अपने कोमल कंठ से उसे अनेक बार गा-गा कर सिखलाने की व्यर्थ चेष्टा की। जब उस लड़के से गाते नहीं बना, तो मैंने पंत जी से कहा—'आप ही ऐसे गा दीजिएगा।' और तभी किसी ने चुटकी ली—'पंत जी को ड्रेस करने की जरूरत नहीं है। वह वैसे ही स्टेज पर आ कर गाना गा देंगे तो नाटक में चार चाँद लग जाएँगे।'

जब महादेवी जी कविता पढ़ते-पढ़ते हिचक गईं

सन् १९३० में जब मैं एलनगंज में रहता था, उस समय हम लोगों ने 'सुकवि समाज' की स्थापना की थी। एक कवि-गोष्ठी में एक विशेष अवसर पर जब 'सुकवि-समाज' की बैठक में श्रीमती सरोजनी नायडू भी गई थीं, महादेवी जी ने एक नई रचना लिखी थी। वह थी—'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।' महादेवी जी भी अपनी रचना सुनाना चाहती थीं। हम लोगों ने अपनी-अपनी रचनाएँ सुनाईं। भगवतीचरण वर्मा जी ने विशेष अभिनय से 'नूरजहाँ' पर रचना सुनाई। मैंने अपने सरस स्वर से 'रूपराशि' के कुछ गीत सुनाए। महादेवी जी सुनाने जा रही थीं, किन्तु उनके पास कंठ-स्वर नहीं है। वह कुछ उद्विग्नता-सी अनुभव कर रही थीं कि सब ने अपनी रचनाएँ गा कर सुनाई और वह नहीं गा सकती थीं, क्योंकि उस समय तो गा कर कविता पढ़ने का ही रंग था। कुछ क्षणों के लिए महादेवी जी ने हम लोगों की ओर देखा और फिर अपने सामान्य स्वर में कविता सुनाई कविता बहुत सुन्दर थी और हम सब लोगों ने उस की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की। महादेवी जी के मुख पर संतोष और प्रसन्नता की जो रेखाएँ उस समय अंकित हुई थीं, वे काव्य की रेखाओं से किसी प्रकार कम नहीं थीं। मेरे हृदय में उस समय यह भाव उत्पन्न हुआ कि यदि उस कविता के माधुर्य के साथ कहीं कंठ-माधुर्य भी सम्मिलित हो जाता, तो निस्संदेह उनकी काव्य-रचना में चार चांद लग जाते।

आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र से गत ३० वर्षों से मेरा निकटतम सम्पर्क रहा है, पर मास्को जाने के पूर्व अपने 'एकलव्य' महाकाव्य के रचना-कार्य को सम्पूर्ण करने के निमित्त आचार्य

मिश्र जी के साथ लगभग एक माह तक हरिद्वार रहने का शुभ अवसर मुझे प्राप्त हुआ। जैसे ही वर्षा की पहली बौछार ने हमारे आँगन में आगमन किया, हमारी लेखनी स्वयं सक्रिय हो उठी ! फिर तो जैसे माता सरस्वती स्वयं लेखनी पर आ विराजीं। कभी नील धारा के पावन तट पर, तो कभी दक्ष-प्रजापति के ऐतिहासिक घाट पर, हम दोनों दिन-दिन भर बैठे लिखते रहते। दोनों पास-पास बैठे रहते, पर जैसे किसी को एक-दूसरे की उपस्थिति का ज्ञान ही न रहता। 'एकलव्य' के सर्वाधिक लोकप्रिय नवम सर्ग से तेरहवें सर्ग तक की रचना उसी समय हुई। आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र की 'पंच-तत्व' और 'खाली-भरे हाथ' की अधिकांश लघु-कथाएँ तथा लघु बोध-कथाएँ इसी समय लिखी गईं।

● ● ●

श्री राजेन्द्र प्रसाद
उपसभापति, हिन्दी परिषद्
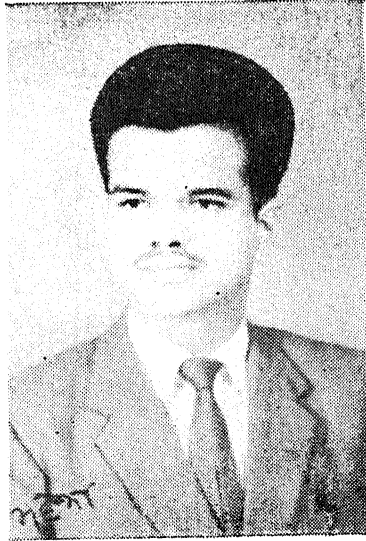
श्री महेशचन्द्र अग्रवाल
प्रधान मंत्री, हिन्दी परिषद्

हिन्दी परिषद्

वार्षिक विवरण १९६५-६६

•

नव सत्र का निर्वाचन श्रद्धेय डॉ० रामकुमार वर्मा की अध्यक्षता एवं श्री माताबदल जायसवाल की देखरेख में १८ अगस्त १९६५ को सम्पन्न हुआ। उपसभापति पद के लिये श्री राजेन्द्र प्रसाद तथा प्रधान मंत्री पद के लिए श्री महेश चन्द्र अग्रवाल निर्वाचित घोषित हुए गए। प्रधान मंत्री ने अपनी सुविधा के लिए कार्यकारिणी की सलाह से श्री कौशल प्रसाद तिवारी को परिषद का सहायक मंत्री मनोनीत किया।

उद्घाटन समारोह: हिन्दी परिषद् के ४४वें सत्र का उद्घाटन समारोह इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री रत्नकुमार नेहरू के द्वारा २२ अक्टूबर १९६५ को विभागाध्यक्ष डॉ० रामकुमार वर्मा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। माननीय उपकुलपति महोदय ने इस समारोह में भाषण देते हुए राष्ट्र भाषा हिन्दी को उच्च स्तर एवं महत्व प्रदान करने का परामर्श दिया।

तुलसी जयन्ती: श्रावण शुक्ल सप्तमी को होने वाली 'तुलसी जयन्ती' का समारोह देश की विषम संकटकालीन स्थिति के कारण नहीं मनाया गया।

सेठ गोविन्द दास का आगमन: नवम्बर १९६५ को सेठ जी का हिन्दी विभाग में भाषण हुआ। सेठ जी ने अपने कलात्मक भाषण द्वारा हिन्दी भाषा, साहित्य एवं राजनीति के संबंधों पर अपना मत व्यक्त किया। हिन्दी भाषा के विकास के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि हमें अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी भाषा के माध्यम से ही अपना कार्य करना चाहिए, तभी हिन्दी का विकास सम्भव होगा।

वाद-विवाद प्रतियोगिता: १५ फरवरी १९६६ को हिन्दी परिषद् के तत्वावधान में एक वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन श्री संगम लाल पाण्डेय की अध्यक्षता में हुआ। प्रतियोगिता का विषय "तटस्थता की नीति भारत के लिए हितकर रही है" था।

प्रतियोगिता का परिणाम इस प्रकार था:—

प्रथम—श्री वीरेन्द्र बहादुर लाल श्रीवास्तव ।

द्वितीय—श्री राधेश्याम त्रिपाठी ।

तृतीय—श्री रमेश तिवारी ।

विचार गोष्ठी: परिषद् के तत्त्वावधान में ८ दिसम्बर सन् १९६६ को एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसका सभापतित्व पं० उमाशंकर शुक्ल हिन्दी परिषद् के प्रधान उपसभापति ने किया। इस विचारगोष्ठी का आयोजन त्रिभाषा सूत्र की

व्यवहारिकता' पर विचार करने के लिए हुआ था। गोष्ठी के प्रमुख वक्ता श्री प्रकाश-चन्द्र गुप्त, श्री विजयदेव नारायण शाही, डॉ० रघुवंश और श्री रंगनाथन थे।

अन्य प्रतियोगिताएं : साहित्य एवं काव्य के प्रति सजगता उत्पन्न करने के उद्देश्य से परिषद् के तत्वावधान में विभिन्न साहित्यिक प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ जिसका परिणाम इस प्रकार था —

(१) एकांकी प्रतियोगिता :
प्रथम—श्री राधेश्याम त्रिपाठी।
द्वितीय—श्री प्रतापचन्द्र मिश्र।
तृतीय—श्री अनिल कुमार अग्रवाल।

(२) कहानी प्रतियोगिता :
प्रथम—श्री प्रतापचन्द्र मिश्र
द्वितीय—श्री चन्द्रमोहन
तृतीय—श्री रमेश तिवारी

(३) कविता प्रतियोगिता :
प्रथम—श्री रमेश तिवारी
अन्य रचनाएं निम्न स्तर की थीं अतः द्वितीय और तृतीय स्थान नहीं दिए जा सके।

(४) निबन्ध प्रतियोगिता :
प्रथम—कु० चरनजीत कौर
द्वितीय—कु० उषा अग्रवाल
तृतीय—श्री अनिल कुमार अग्रवाल

सांस्कृतिक समारोह : हिन्दी परिषद् का यह एक महत्वपूर्ण समारोह है, जिसका आयोजन इस वर्ष हमारे देश के प्रधान मंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री के आकस्मिक निधन के कारण नहीं किया जा सका।

अंत में मैं उन सभी साहित्यकारों और लेखकों का आभारी हूँ जिनकी रचनाएँ 'कौमुदी' के इस विशेषांक में साकार हो सकी हैं। साथ ही मैं विभाग के सभी गुरुजनों का भी आभारी हूँ, जिनके कुशल निर्देशन से इस वर्ष परिषद् के महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हो सके।

प्रस्तुतकर्त्ता—
महेश चन्द्र अग्रवाल
प्रधानमंत्री, हिन्दी परिषद्।

● ● ●

कला-संगम

●

विद्यार्थियों में काव्य, चित्र एवं अभिनयादि कलाओं की रचनात्मक प्रवृत्तियों के विकास एवं रुचि-संवर्द्धन के लिए सन् १९६२ में डॉ० रामकुमार वर्मा की संरक्षकता में हिन्दी-परिषद् के अन्तर्गत 'कला-संगम' की स्थापना की गई थी और उसके संचालन का भार डॉ० जगदीश गुप्त को सौंपा गया था। १९६५-६६ के पदाधिकारी इस प्रकार हैं।

संरक्षक
डॉ० रामकुमार वर्मा
संचालक
डॉ० जगदीश गुप्त
उपसंचालक
डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव
एवं
डॉ० शशि अग्रवाल
कोषाध्यक्ष
श्री माताबदल जयसवाल

छात्र संयोजक : श्री हरि शंकर श्रीवास्तव
छात्रा संयोजिका : कु० मीना खरे
सहायक : श्री कुञ्ज बिहारी मिश्र एवं श्रीमती नीता नाथ
पदेन सदस्य——श्री राजेन्द्र प्रसाद उपसभापति हिन्दी परिषद्
एवं
श्री महेशचन्द्र अग्रवाल (प्रधान मंत्री हिदी परिषद्)

कला संगम का उद्घाटन समारोह श्रीमती राजेन नेहरू द्वारा ११ नवम्बर १९६५ को डॉ० रामकुमार वर्मा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर कला संगम के सदस्यों ने संगीत के विभिन्न कार्यक्रम प्रस्तुत किए।

११ फरवरी १९६६ को कला संगम द्वारा प्रस्तुत भव्य चित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन चेक विद्वान डॉ० स्मेकेल द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर हिन्दी विभाग के प्रायः सभी गुरुजन उपस्थित थे। ११ फरवरी से १६ फरवरी तक चलने वाली इस प्रदर्शनी में २५ से अधिक प्रमुख चित्रकारों के चित्रों को प्रदर्शित किया गया था।

प्रमुख चित्रकारों में असित कुमार हलदार, क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार, महादेवी वर्मा, बी० डी० पाण्डे, रविशंकर रावल, उपेन्द्र महारथी, रामचन्द्र शुक्ल, आर० एन० देब, वीरेश्वर सेन, डॉ० जगदीश गुप्त, हरिशंकर श्रीवास्तव एवं महेशचन्द्र अग्रवाल के चित्रों से दर्शकगण अत्यधिक प्रभावित हुए।

प्रस्तुत कर्ता : हरिशंकर श्रीवास्तव